अ॰ वा॰ सहस्रबुद्धे
मंत्री, अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ,
वर्धा (बंबई राज्य)

मुद्रक :
बलदेव दास
संसार प्रेस
काशीपुरा, बनारस

पहली बार : ५
सितम्बर, १९५९
मूल्य : डेढ़ रुपया

प्राप्ति-स्थान
अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
नालवाड़ी, वर्धा
गांधी भवन, हैदराबाद

निवेदन

पू. विनोबाजी के गत पाँच वर्षों के प्रवचनों में से महत्त्वपूर्ण प्रवचन तथा कुछ प्रवचनों के महत्त्वपूर्ण अंश चुनकर यह संकलन तैयार किया गया है। संकलन के काम में पू. विनोबाजी का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है। पोचमपल्ली १८-४-'५१ से पोचमपल्ली १०-१-'५६ तक की यात्रा का काल उन्हींकी सलाह के अनुसार चुना गया है। गंगा तो सतत बहती ही रहेगी।

संकलन के लिए अधिक-से-अधिक सामग्री प्राप्त करने की चेष्टा की गयी है। फिर भी कुछ अंश अप्राप्य रहा।

भूदान-आरोहण का इतिहास, सर्वोदय-विचार के सभी पहलुओं का दर्शन तथा शंका-समाधान आदि दृष्टिकोण ध्यान में रखकर यह संकलन किया गया है। इसमें कहीं-कहीं पुनरुक्ति भी दिखेगी। किन्तु रस-हानि न हो, इस दृष्टि से उसे रखना पड़ा है।

संकलन का आकार सीमा से न बढ़े, इसकी ओर भी ध्यान देना पड़ा है। यद्यपि यह संकलन एक दृष्टि से पूर्ण माना जायगा, तथापि उसे परिपूर्ण बनाने के लिए जिज्ञासु पाठक को कुछ अन्य भूदान-साहित्य का भी अध्ययन करना पड़ेगा। सर्व सेवा-संघ की ओर से प्रकाशित १ कार्यकर्ता-पाथेय २ साहित्यिकों से ३ सर्वोदय का आधार ४ सम्पत्तिदान-यज्ञ ५ जीवन-दान ६ शिक्षण-विचार और सस्ता-साहित्य मण्डल की ओर से प्रकाशित १ सर्वोदय का घोषणा-पत्र २ सर्वोदय के सेवकों से जैसी पुस्तकों को इस संकलन का परिशिष्ट माना जा सकता है।

संकलन के कार्य में यद्यपि पू. विनोबाजी का सतत मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है, फिर भी विचार-समुद्र से मौक्तिक चुनने का काम जिसे करना पड़ा, वह इस कार्य के लिए सर्वथा अयोग्य थी। त्रुटियों के लिए क्षमा-याचना।

—निर्मला देशपांडे

अनुक्रम

१	दलनिरपेक्ष लोकशक्ति	१
२	मानव-सेवा—आज का युग धर्म	२१
३	बड़े उद्योगों का राष्ट्रीकरण हो	३३
४	भगवान् अहिंसक क्रान्ति चाहता है!	३५
५.	पुण्यमय साधनों से सामाजिक क्रान्ति	४१
६	पहले दिल जुड़ने दो, फिर जमीन	४८
७	माला और गुलदस्ते की संस्कृति	५३
८.	धर्म का सामाजीकरण	५५
९	गरीबों से दान क्यों?	६४
१०	अहिंसा का रहस्य	६९
११	जमींदार भूदान का लाभ उठायें	७२
१२	सद्विचार की अमोघ शक्ति	७८
१३	क्रान्ति विचार से ही होती है	८६
१४	'धन और धरती बँट के रहेंगी'	९२
१५.	अहिंसा सरल रेखा है	९३
१६	सर्वोदय का राजनैतिक विचार	९६
१७	सापेक्ष और निरपेक्ष नीति	१०६
१८.	धर्म चक्र-प्रवर्तन कब होता है?	१११
१९	नीति का अधिष्ठान खेती	११५
२०	भिक्षुक वृत्ति की आवश्यकता	१२१
२१	धनी-मानी की हत्या से क्रान्ति नहीं होती	१२७
२२	आज के युग में आत्मौपम्य	१२८
२३	पेट के रोग का मूलशोधन और उपाय	१३३
२४	शान्तिमय क्रान्ति का सत्याग्रह	१४१
२५.	भूदान यज्ञ : धर्म का एक नया पहलू	१४५
२६	नया अध्याय	१५०
२७	सर्वोदय का पूर्ण मंत्र	१५१

२८ धर्म प्रचार अहिंसा से ही सम्भव १५६
२९ अपरिग्रह में शक्ति भी है १६१
३० जनता की प्रत्यक्ष इच्छा से ही सरकार का राज १७०
३१ सबका भक्ति का जमाना आया है १७४
३२ मेवापुर का अन्तःकालीन आक्रोश १७६
३३ साम्ययोग का समग्र दर्शन १८१
३४ ज्ञान विज्ञान के योग से सामूहिक अहिंसा १८७
३५. युग के प्रधान गुण : निर्भयता समता और समग्र निष्ठा १९४
३६ वाणिज्य धर्म है, धन्धा नहीं २०४
३७ निर्वैर-प्रतिकार का युगधर्म २०८
३८. विज्ञान के आधार पर नया समाज शास्त्र २११
३९. सज्जन और सत्याग्रह २२२
४० पक्ष निरपेक्ष सेना २३३
४१ विज्ञान और अहिंसा का समन्वय २३७
४२ मन्दिर प्रवेश बन्दी से बढ़कर बड़ा गुनाह २४०
४३ भूदान-यज्ञ में अपना हिस्सा न देना देशद्रोह २४१
४४ जीवन दान २४२
४५. राजनीति का लोकनीति में परिवर्तन २४३
४६ अहिंसा के तीन आधार : संयम, अस्तेय, अपरिग्रह २५०
४७ चोरी और सजा २५४
४८. शान्ति का निरोध २५७
४९ गलती ने बहनों को बचाया है २६१
५० शान्ति के लिए सभी वैराग्य धारण करें २६३
५१ ईश्वर का यह काम पूरा होकर रहेगा २६७
५२ पवन ईश्वरीय, अपना शरीर २७०
५३ भारत की ग्रामनिष्ठा मजबूत है २७१
५४ महापुरुष की जड़ें हमारे ही जीवन में २८०
५५ अहिंसा के विकास में गोली और सत्याग्रह की गति २८४

बिहार

[जनवरी १९५३ से दिसम्बर १९५४]

भूदान-गंगा

(द्वितीय खण्ड)

पक्षनिरपेक्ष लोकशक्ति १ :

हम एक कार्यकर्ता-समाज हैं। यहाँ सम्मेलन में आते हैं तो कुछ बोल भी लेते हैं, लेकिन यह बोलना भी हमारा काम ही होता है। वह केवल वक्तृत्व नहीं बल्कि कर्तृत्व का ही हिस्सा होता है। हम लोग सालभर कुछ काम करके नारायण को वह समर्पण करने के लिए एकत्र होते और दूसरे साल के लिए कुछ उत्साह लेकर जाना चाहते हैं। ऐसे मौकों पर हम कुछ विचार विनिमय, विचारों का लेनदेन भी कर लेते हैं। आज हमें इसी दृष्टि से अपने काम के पीछे की भूमिका देख लेनी चाहिए, कार्य का जो संशोधन करना है, उस पर भी नजर डालनी चाहिए। 'कार्य-पद्धति' 'कार्यक्रम' और 'कार्य-रचना' इन तीनों पर हमें थोड़ा विचार कर लेना चाहिए।

दुनिया की मौजूदा स्थिति

हम दुनिया के किसी कोने में भी काम क्यों न करते हों, आज ऐसी हालत नहीं कि सारी दुनिया पर नजर डाले बगैर हमारा काम चलेगा। दुनिया में जो ताकतें काम कर रही हैं, जो नये प्रवाह शुरू हुए हैं, कल्पनाओं और भावनाओं का जो संस्कार और संघर्ष हो रहा है उसकी तरफ ध्यान देकर उस पर सतत नजर रखकर ही हम जो भी छोटा-सा कदम उठाना चाहें उठा सकते हैं। समुचित दृष्टि के बिना केवल कर्म अंधा हो जाता है। इसलिए दुनिया की हालत का खयाल करना पड़ता है। आज हम देख रहे हैं कि दुनिया की हालत बहुत चंचल है। इतना ही नहीं बहुत कुछ खतरनाक भी है। मानो उसमें कई ताकतों की

सम्भावना नहीं है और कह नहीं सकते कि किस समय उनमें से ज्वालामुखी का स्फोट होगा। मैं कुछ नाटक भयानक चित्र नहीं खींच रहा हूँ। इससे भयभीत होने का मेरा इरादा नहीं है और न आपको ही भयभीत बनाना चाहता हूँ बल्कि जो हालत है, उस ओर ध्यान खींचना चाहता हूँ। कहा नहीं जा सकता कि दुनिया में किस वक्त क्या होगा ऐसी अस्थिर मनःस्थिति और परिस्थिति आज बनी है।

एक दो महीने पहले की बात है। दिल्ली में कुछ ज्ञानी विद्वान् एकत्र हुए थे और उन्होंने अहिंसा के स्थान के बारे में कुछ चिन्तन मनन और विमर्श किया। वह अखबारों में आता रहा और हम पढ़ते रहे। उसमें हमारे पूज्य राजेन्द्रबाबू ने जिक्र किया था कि "आज कोई भी देश यह हिम्मत नहीं कर रहा है कि हम सेना के बगैर काम चलायेंगे। उन्होंने इस बात पर दुःख भी प्रकट किया कि आश्चर्य इसमें कि गांधीजी की शिक्षायें हमने उनके श्रीमुख से सीधी अपने कानों सुनी और उनके साथ कुछ काम भी किया है, हिन्दुस्तान भी आज ऐसी हिम्मत नहीं कर सक रहा है।" हमारे महान् नेता पण्डित नेहरू कई बार कह चुके हैं कि दुनिया का कोई मसला शस्त्र-बल से हल नहीं हो सकता। हमारे ये भाई, जो देश का नेतृत्व कर रहे हैं और जिन पर यह जिम्मेवारी देश ने डाली है अहिंसा को ठीक से मानते हैं। उनका हिंसा पर विश्वास नहीं है। फिर भी हालत यह है कि सेना को बनाने-बढ़ाने और उसे मजबूत करने की जिम्मेवारी उनको माननी पड़ती है। इस तरह विचित्र परिस्थिति में हम पड़े हैं।

बुद्धि और हृदय का भेद

स्थिति यह है कि हमें मालूम है श्रद्धा एक वस्तु पर है और क्रिया दूसरी ही करनी पड़ती है। हम चाहते तो यह हैं कि सारे हिन्दुस्तान में और दुनिया में अहिंसा चले। हम एक दूसरे से न डरें बल्कि एक-दूसरे को प्यार से जीतें। प्यार ही कामयाब हो सकता है और वही जीत सकता है ऐसा विश्वास दिल में भरा है। फिर भी एक दूसरी चीज हममें है जिसे 'बुद्धि' नाम दिया जाता है। वैसे यह भी हृदय का एक हिस्सा है और हृदय भी उसका एक हिस्सा है जो दोनों मिले-जुले हैं;

फिर भी हृदय कहता है कि हिंसा से कोई भी मसला हल नहीं होगा। एक मसला हल होता-सा दीखेगा तो उसमें से दूसरे दसों नये मसले पैदा होंगे। लेकिन बुद्धि तो तीन गुणों से भरी है। उसमें कुछ विचार की शक्ति है और कुछ आवरण भी; कुछ दर्शन है और कुछ अदर्शन भी। ऐसी हमारी सम्मिश्र बुद्धि हमें कहती है कि 'हम सेना को हटा नहीं सकते। जिस जनता के हम प्रतिनिधि हैं वह उतनी मजबूत नहीं है। उसमें वह योग्यता नहीं है। इसलिए उसके प्रतिनिधि के नाते हम पर यह जिम्मेवारी आती है कि हम बढ़कर सेनायें बनायें और उसे मजबूत करें। ऐसी आज हालत है।

आज दीखता है कि रचनात्मक काम करें पर यह सिर्फ दिल की इच्छा है। बुद्धि कहती है कि 'सेना बनानी होगी, इसलिए सेना-बल जिससे मजबूत बन सकेगा, ऐसे धंधों को स्थान देना होगा।' जिनकी श्रद्धा खादी पर कम है, उनकी बात छोड़ देता हूँ। लेकिन जिनकी खादी पर पूरी श्रद्धा है, उनसे जब यह सवाल पूछा जाता है कि क्या खादी और ग्रामोद्योग के जरिये आप युद्ध-बल मजबूत बना सकते या रक्षा कर सकते हैं? तो उनकी बुद्धि और हमारी भी बुद्धि—क्योंकि उनमें हम भी सम्मिलित हैं—कहती है कि नहीं, इन छोटे-छोटे उद्योगों के जरिये हम युद्ध-बल खड़ा नहीं कर सकते। 'कम्युनिटी प्रोजेक्ट' के बारे में सरकार की इच्छा यह रही है कि ये पाँच लाख देहातों में चलें। अभी तो वह थोड़े-से देहातों में आरम्भ हुआ है, लेकिन इच्छा यही है कि वह और व्यापक बने और उसके जरिये राष्ट्र समृद्ध एवं स्वयंपूर्ण हो जाये इत्यादि। पर अगर कल दुनिया में महायुद्ध छिड़ जाय, तो मैं कह नहीं सकता कि एक भी कम्युनिटी प्रोजेक्ट चलता रहेगा। जिन्होंने इस योजना का उपक्रम किया वे भी नहीं कह सकते कि वह बच रहेगा। तब कौन बुद्धि जोर करेगी और हृदय छिप जायगा। हृदय पर बुद्धि हावी हो जायगी और कहेगी कि अब तो युद्ध-प्रयत्न ही मुख्य वस्तु है।

यह मैं आत्मनिरीक्षण के तौर पर बोल रहा हूँ। जो आज यहाँ जिम्मेवारी के स्थान पर बैठे हुए हैं उनकी जगह अगर हम बैठें, तो हमको भी वे करने पड़ते हैं। उसमें कुछ सुधार जिसे हम चाहें, ऐसा नहीं है। यह स्थान ही वैसा है। यह जादू की कुर्सी है। उस पर जो आरूढ़ होगा उस पर एक मेस्मरिज्म, मोहिनी,

बने बनाये और पराधीन दायरे में सोचने की जिम्मेवारी आती है। ऐसे दायरे में, जिसे मैंने 'पराधीन' नाम दिया है, लाचारी से दुनिया का बोझ जिस दिशा में बढ़ता हुआ दीख पड़ता है, उसी दिशा में सोचने की जिम्मेवारी उन पर आती है। अमेरिका, रूस जैसे बड़े-बड़े राष्ट्र भी एक-दूसरे से डर रखते हैं और कम ताकतवर पाकिस्तान और हिन्दुस्तान जैसे राष्ट्र भी। इस तरह एक-दूसरों से डर रखते हुए 'शस्त्र-बल से, सैन्य-बल से कोई मसला हल नहीं हो सकता' ऐसा विश्वास रखते हुए भी हम शस्त्र-बल और सैन्य-बल पर ही आधार रखते हैं, उसका आधार नहीं छोड़ सकते।

आज हम ऐसी विचित्र परिस्थिति में हैं। हम पर अगर कोई हमें दांभिक या ढोंगी कहेगा, तो वह वैसा कहने का हकदार साबित होगा, यद्यपि उसका कथन सही नहीं है। यदि हमारे दिल में कोई दूसरी बात है और उसे हम छिपाते हैं तो हम जान-बूझकर ढोंगी हैं। लेकिन जहाँ दिल एक बात को कबूल करता है और परिस्थिति वश बुद्धि दूसरी बात कहती है, इसलिए लाचारी से कोई काम करनी पड़ती है तो वह दांभिकता की तो नहीं, बल्कि दयनीयता की स्थिति है। आज हम ऐसी दयनीय स्थिति में पड़े हैं।

अभी राजेन्द्रबाबू ने कहा कि सर्वोदय-समाज पर यह जिम्मेवारी है, क्योंकि लोगों को अपेक्षा है कि वह अपने मूल विचार पर कायम रहे और उसे आज की हालत में अमल में लाने के लिए वातावरण तैयार करे। अगर सर्वोदय-समाज यह करेगा, तो वह आज की हमारी राष्ट्रीय सरकार की सर्वोत्तम मदद होगी। मान लीजिये कि आज हममें से कोई मंत्री बन जाय और कुछ काम करने लगे, तो उसका वह काम और उसका परिश्रम दोनों मिलाकर आज की सरकार को वह उतनी मदद नहीं दे सकेगा, जितनी किसी भिन्न पक्ष के जिस तरह हम बन सकता है उस दिशा में काम करने से देगा।

स्वतन्त्र लोक-शक्ति का निर्माण

कभी-कभी लोग मुझसे पूछते हैं कि 'आप सरकार में क्यों नहीं जाते? देश की जिम्मेवारी आप क्यों नहीं उठाते?' मैं कहता हूँ कि दो बैल जब गाड़ी में लगे हुए हैं, तब मैं और एक तीसरा गाड़ी का बैल बन जाऊँ, तो उससे गाड़ी

को क्या मदद मिलेगी ? अगर मैं वह रास्ता जरा ठीक बना दूँ, ताकि गाड़ी उचित दिशा में जाय तो उसे अधिक से-अधिक मदद पहुँचा सकता हूँ। हाँ एक बात जरूर है कि अगर मैं बैल ही हूँ तो मुझे बैल ही बनना चाहिए, वही काम करना चाहिए। मैं एक विशेष भाषा में बोल रहा हूँ और उम्मीद करता हूँ कि आप उसे सहन भी करेंगे। हमारी संस्कृति में बैल के लिए जितना आदर है, उतना मनुष्य के लिए भी नहीं है। और उसी अर्थ में मैं बोल रहा हूँ। जो राज्य की धुरा उठाता है उसे हम धुरंधर कहते हैं। धुरंधर के मानी होते हैं बैल। धुरंधर हमें बनना पड़ता है। लेकिन जो लोग धुरंधर बन चुके हैं, वे कहते हैं कि अब आप वही काम मत करिये, जो हम कर रहे हैं। उस काम में आप मत लगिये, बल्कि जो कमियाँ हम महसूस करते हैं उनकी पूर्ति आप करें सो करें। इसी आशा से वे लोग हमारी तरफ देखते हैं। तो यह हमें ठीक से समझना चाहिए और इस दृष्टि से स्वतन्त्र लोक-शक्ति निर्माण करनेवाले काम में ही लग जाना चाहिए। तभी हम आज की सरकार की सच्ची मदद और अपने देश की समुचित सेवा कर सकेंगे।

मैंने कहा कि 'हमें स्वतन्त्र लोक-शक्ति निर्माण करनी चाहिए।' इसका अर्थ यह है कि हिंसा-शक्ति की विरोधी और दंड शक्ति से भिन्न लोक शक्ति हमें प्रकट करनी चाहिए। आज की हमारी जो सरकार है उसके हाथ में हमने दण्ड शक्ति सौंप दी है। उस दण्ड-शक्ति में हिंसा का एक अंश जरूर है फिर भी हम उसे 'हिंसा' नहीं कहना चाहते, हिंसा से अलग वर्ग में रखना चाहते हैं। हम उसे हिंसा शक्ति से भिन्न दंड शक्ति कहना चाहते हैं क्योंकि वह शक्ति उनके हाथ में सारे समुदाय ने दी है। इसलिए वह निरी हिंसा शक्ति नहीं वरन् दंड शक्ति है। किन्तु उस दंड शक्ति का भी उपयोग करने का मौका न आये, ऐसी परिस्थिति देश में निर्माण करना हमारा काम होगा। अगर हम यह करेंगे, तो हमने स्वधर्म पहचाना और उस पर अमल करना जाना यह माना जायगा। और अगर ऐसा नहीं करेंगे और दंड शक्ति के उपयोग से ही हल करनेवाली जन-रचना का लोभ रखेंगे, तो जिस विशेष कार्य की हमसे अपेक्षा की जा रही है उसे हम पूर्ण नहीं करेंगे। बल्कि संभव है कि हम बोझ-रूप भी साबित हों।

उस दया से युद्ध की समाप्ति नहीं हो सकती। अगर हम लोग इस तरह की दया का काम करें, जिससे निठुरता के राज में दया प्रजा के नाते रह जाय। निष्ठुरता की हुकूमत में दया चले तो हमने अपना असली काम नहीं किया। इस तरह जो काम दया के दीख पड़ते हैं जो रचनात्मक भी दीख पड़ते हैं उन्हें हम दया और रचना के प्रेम से व्यापक दृष्टि के बिना ही उठा लें तो कुछ तो सेवा हमसे बनेगी पर वह सेवा नहीं बनेगी जिसकी जिम्मेवारी हम पर है और जिसे हमने और दुनिया ने अपना स्वधर्म माना है।

प्रेम पर भरोसा

मैं दूसरी स्पष्ट मिसाल देता हूँ। मुझे हर कोई पूछता है कि 'आपका वजन सरकार पर भी कुछ चलता है। तो आप यह क्यों नहीं जोर लगाते कि सरकार कोई कानून बना दे और बिना मुआवजे के भूमि वितरण का कोई मार्ग खोल दे। आप अपना वजन क्यों नहीं इस दिशा में इस्तेमाल करते!' मैं उनसे कहता हूँ कि 'भाई कानून के मार्ग को मैं रोकता नहीं। अगर आप अपनी इच्छित दिशा में इससे ज्यादा और एक कदम मुझसे चाहते हैं, तो मैं कहता हूँ कि जो मार्ग मैंने अपनाया है, उसमें यदि मुझे पूरा सोलह आने यश नहीं मिला बारह आने, आठ आने भी मिला तो कानून के लिए सहूलियत ही होगी। इस तरह एक तो मैं कानून को बाधा नहीं पहुँचा रहा हूँ। दूसरे कानून को सहूलियत भी दे रहा हूँ। उसके लिए अनुकूल वातावरण बना रहा हूँ, ताकि कानून आसानी से बनाया जा सके। पर इससे भी एक कदम आगे आपकी दिशा में बढ़ूँ, और यही रटन रटूँ कि 'कानून के बिना यह काम नहीं होगा, कानून बनाना चाहिए' तो मैं स्वधर्मविहीन साबित होऊँगा। मेरा वह धर्म नहीं है। मेरा धर्म तो यह मानने का है कि बिना कानून की मदद से जनता के हृदय में हम ऐसे भाव निर्माण करें ताकि कानून कुछ भी हो लोग भूमि का बँटवारा करें। क्या किसी कानून के कारण माताएँ बच्चों को दूध पिला रही हैं!

मनुष्य के हृदय में ही कोई ऐसी शक्ति होती है जिससे उसका जीवन समृद्ध हुआ है। मनुष्य प्रेम पर भरोसा रखता है। वह प्रेम में से पैदा हुआ है, प्रेम

से पकता है और आखिर वह दुनिया को छोड़कर जाता है, तब भी प्रेम की ही निगाह से चार बूँदें गिरें ऐसा होता है। उस समय उसके प्रतिपक्षी अगर उसे छीन जाते हैं, तो सुख से वह देह और दुनिया को छोड़कर जाता है। प्रेम की शक्ति का इस तरह अनुभव होते हुए भी उसको अधिक सामाजिक स्वरूप में विकसित करने की हिम्मत रखने के बजाय मैं अगर कानून-कानून रटता रहूँ तो जन-शक्ति निर्माण करके सरकार को हमसे मदद चाहती है वह मैंने दी, ऐसा नहीं होगा। इसलिए दंड-शक्ति से भिन्न जन-शक्ति मैं निर्माण करना चाहता हूँ और हमें यही निष्ठा रखनी चाहिए। यह जो जन-शक्ति हम निर्माण करना चाहते हैं वह दंड-शक्ति की विरोधी है ऐसा मैं नहीं कहता। वह हिंसा की विरोधी है। लेकिन मैं इतना ही कहता हूँ कि वह दंड-शक्ति से भिन्न है।

हमारी कार्य-पद्धति

मैं तीसरी मिसाल दूँ। अभी 'खादी बोर्ड' बन रहा है। सरकार खादी को मदद देना चाहती है। पण्डित नेहरू ने कहा: 'मुझे आश्चर्य हो रहा है कि यो काम चार साल पहले ही होना चाहिए था वह इतनी देरी से क्यों हो रहा है!' वे महान् हैं। उनका हृदय महान् है। वे आत्म-निरीक्षण करते और इस तरह की भाषा बोलते हैं। अब हमारा काम है चरखा-संघ का काम है कि जब सरकार खादी को बढ़ावा देना चाहती है, खादी का उत्पादन बढ़ाना चाहती है तो हम उसे कुछ मदद दें। क्योंकि चरखा-संघ को इस काम का अनुभव है और अनुभवियों की मदद ऐसे काम के लिए जरूरी है। फिर भी मैं सोचता हूँ कि एक नागरिक और एक खादिम के नाते अपनी सरकार को जरूर मदद देनी चाहिए, लेकिन अगर हम उसीमें खतम हो जायँ तमाम हो जायँ तो हमने वैसी सेवा खादी की नहीं की, जैसी कि हमसे अपेक्षा की जाती है। हमें तो अपनी खादी की दृष्टि स्पष्ट और शुद्ध रखनी चाहिए और उस दिशा में काम करते हुए सरकार को जो खादी उत्पादन में मदद पहुँचानी हो वह पहुँचानी चाहिए। हमें युद्ध मिटाने के तरीके ढूँढ़ने चाहिए और फिर पर भी युद्ध चले तथा हमें जख्मी सिपाहियों की मदद में जाना पड़े तो जाना चाहिए। यह तो युद्ध का हिस्सा ही है ऐसा समझकर हम उसका स्वागत करेंगे ऐसी बात नहीं पर ध्यान में रखेंगे कि यह

हमारा असली-असली काम नहीं है। हमारा सारा काम ग्राम राज्य की स्थापना के लिए हो सकता है।

इस बार पं. नेहरू मिलने आये, और बड़े प्रेम से बोले। मैंने नम्रता से उनका बहुत कुछ सुन लिया। फिर जब उन्होंने कुछ सलाह मशविरा करना चाहा, तो मैंने अपने विचार थोड़े में प्रकट किये। मैंने कहा कि 'खादी और ग्रामोद्योग के लिए सरकार की तरफ से अगर मैं कोई चीज चाहता हूँ तो मैं कहूँगा कि—जैसे हरएक नागरिक को पढ़ना लिखना आना ही चाहिए क्योंकि नागरिकत्व का यह अनिवार्य अंश है, ऐसा हम मानते हैं। इसीलिए हमारी सरकार सबको शिक्षित बनाने की पढ़ना-लिखना सिखाने की जिम्मेदारी महसूस करती है मान्य करती है। वह चाहे उस पर पूरा अमल न करने पाये, परिस्थिति के कारण आंशिक अमल करे लेकिन जब तक उसका पूरा अमल नहीं हुआ है सारे के सारे लोग पढ़ना लिखना नहीं जान गये हैं तब तक हमने अपना काम पूरा नहीं किया इस तरह का खटका दिल में रहेगा। वैसे ही—हमारी सरकार यह माने यह विचार कबूल करे कि हिन्दुस्तान के हरएक ग्रामीण को हरएक नागरिक को सूत कातना सिखाना चाहिए। जो ग्रामीण जो नागरिक सूत कातना नहीं जानते वे अशिक्षित हैं इतना मान ले और बाकी का सब काम जनता करे। हम सरकार से पैसे की मदद नहीं मांगते। परन्तु यह विचार अगर वह स्वीकार कर लेती है तो उसके कारण हमें अधिक-से-अधिक मदद मिल सकती है।

उन्होंने यह सब सुन लिया। मैं समझता हूँ कि उनके हृदय को तो यह जँचा ही होगा पर अन्त में विनोद में उन्होंने पूछा कि 'अगर सबको सूत कातना सिखा दें तो उसके उपयोग का सवाल आयेगा?' मैंने जवाब दिया कि 'पढ़ना लिखना सिखाने पर भी तो उसके उपयोग का सवाल रहता ही है। मैंने ऐसे कई पढ़े लिखे भाई देखे हैं जो थोड़ा-सा दो चार साल पढ़े और उसका उनको जिन्दगीभर कुछ उपयोग नहीं हुआ। उनके लिए काला अक्षर भैंस बराबर होता है। 'धर्म' के साथ 'चर्म' लगा है। यह चिन्ता करनी पड़ती है। पर आप देखेंगे कि मैंने खादी के लिए सिर्फ इतनी ही मांग की है। जब कि जनता की सरकार है

और जनता की तरफ से माँग होगी, तो सरकार को उतना करना ही चाहि
परन्तु इससे अधिक अगर कानून से लोगों पर लादी लादने की बात होगी, कों
ऐसी माँग करें, तो मैं कहता हूँ कि मैंने अपना काम समझा नहीं। उस
से भिन्न लोक शक्ति हमें निर्माण करना है, यह सूत्र मैं भूल गया।

मैं दो मिसालें सहज दीं एक खादी की और दूसरी भूमि-दान की। हम
का मसला हल करने जायेंगे, तो हमारा एक तरीका होगा और लोकशा
सरकार का दूसरा। अगर सरकार उसे हल करना चाहेगी तो दण्ड शक्ति का
योग करेगी और वैसा करेगी तो उसको कोई दोष भी नहीं देगा। लेकिन उस
की इस तरह की मदद से जन शक्ति निर्माण नहीं होगी सामग्री भले ही नि
हो। किन्तु हमारा उद्देश्य सिर्फ सामग्रीनिर्माण करना नहीं बल्कि जन-
निर्माण करना होगा। यह सारी दृष्टि हमारे काम के पीछे है। जब हमारी
दृष्टि स्थिर हो जाय, तो फिर कार्यपद्धति क्या होगी इसका विशेष वर्णन
की आवश्यकता नहीं रहेगी। हर कोई सोचेगा कि हरएक रचनात्मक काम
में हमारी एक विशेष पद्धति होगी। उस पद्धति से काम करने पर आखिर
परिणाम अपेक्षित होगा कि लोगों में ऐक निरपेक्षता निर्माण हो।

इस दृष्टि से यदि सोचेंगे, तो सहज ही ध्यान में आयेगा कि हमारी काम
के दो भाग होंगे : पहला विचार शासन और दूसरा कर्तृत्व विभाजन। मुझे
शास्त्रीय शब्द बनाने की आदत है, क्योंकि संस्कृत भाषा ही मैं विशेष प
हूँ, इसलिए संस्कृत शब्द आ जाते हैं। तो, आप क्या मुझे क्षमा करेंगे।

विचार-शासन

विचार शासन याने विचार समझाना और समझना, बिना विचार स
किसी बात को कबूल न करना बिना विचार समझे अगर कोई हमारी बात
करता है तो दुःखी होना, अपनी इच्छा दूसरों पर न लादना बल्कि केवल वि
समझा करके ही अनुकूल रहना। कुछ लोग हमारे सर्वोदय समाज की योजन
रचना को "लूज आर्गनाइजेशन" याने "शिथिल रचना" कहते हैं। रचन
अगर हम शिथिल करें, तो कोई काम नहीं बनेगा। इसलिए रचना शिथिल

होनी चाहिए। पर यह 'शिथिल रचना' न होते हुए 'अरचना' है, याने केवल विचार के आधार पर हम इसे रखना चाहते हैं। हम किसीको आदेश नहीं देते जिससे कि वे बिना समझे बूझे ही अमल में लावें। साथ ही हम किसीका आदेश कबूल भी नहीं करते, जिस पर कि बिना सोचे और बिना पसन्द किये हम अमल करते जायें। बल्कि हम तो सलाह मशविरा करते हैं। कुरान में भक्तों का वर्णन गाया गया है कि उनका 'अम्र' याने काम परस्पर के सलाह मशविरे से होता है। हम मशविरा करेंगे और हम बहुत खुश होंगे कि हमारी चीज हमारे सुननेवाले ने मान्य नहीं की और उस पर अमल नहीं किया क्योंकि उसको वह पसन्द नहीं आयी। उसके अमल न करने से हमें बहुत खुशी होगी। बिना समझे-बूझे अगर वह अमल करता है, तो हमें बहुत दुःख होगा। मैं अपनी इस रचना में जितनी ताकत देखता हूँ उतनी और किसी कुशल स्पष्ट और अनुशासन-बद्ध रचना में नहीं देखता। अनुशासन-बद्ध इत्यादि युक्त रचना में शक्ति नहीं होती सो बात नहीं। लेकिन वह शक्ति नहीं होगी, जो शिव शक्ति है, और जो हमें पैदा करनी है हमारे हिसाब से वह शक्ति ही नहीं है। इसीलिए विचार शासन को हम मानना चाहते हैं। अगर यह ध्यान में आयेगा तो विचार का निरन्तर प्रचार करना हमारा एक कार्यक्रम बन जायगा जो हम नहीं कर रहे हैं और जो हमें करना चाहिए।

जब मैं इस दृष्टि से सोचता हूँ तो बुद्ध भगवान् ने भिक्षु संघ क्यों बनाये और शंकराचार्य ने यति संघ क्यों बनाये, इसका रहस्य खुल जाता है। फिर भी उन संघों के जो अनुभव आये हैं उनके गुण-दोषों की तुलना कर मैंने अपने मन में यही निर्णय किया है कि हम ऐसे संघ नहीं बनायेंगे क्योंकि उनमें उनके गुणों से उनके दोष अधिक होते हैं, यह अनुभव आया है। पर उनको संघ क्यों बनाने पड़े इसका रहस्य आ जाता है। निरन्तर प्रवाह बहते हुए झरने की तरह सतत घूमनेवाले और लोगों के पास शुद्ध विचार पहुँचानेवाले लोग होने चाहिए। उसके बगैर सर्वोदय-समाज काम नहीं कर पायेगा। लोगों के पास पहुँचने के जितने मौके मिलेंगे, उतने प्राप्त करने चाहिए। लोग एक बार कहने पर नहीं सुनते इसलिए दुबारा कहने का मौका आये, तो उससे खुशी होनी

चाहिए। इतना विचार-प्रचार का उत्साह और इतनी विचार पर श्रद्धा-निष्ठा हममें होनी चाहिए। लेकिन हमारी हालत ऐसी हुई है कि हममें से बहुत-से लोग भिन्न भिन्न संस्थाओं में गिरफ्तार हो गये हैं। यद्यपि वे संस्थाएँ अच्छी हैं तो भी हमें उनकी आसक्ति न हो, मुक्ति रहे। उनका काम जारी रहे, लेकिन संस्था में कुछ मनुष्य ऐसे हों, जो घूमते रहें। इस तरह की रचना और ऐसा कार्यक्रम हम नहीं करेंगे, तो हमारा विचार क्षीण होगा और विचार चलन नहीं चलेगा।

बिहार के लोग कुछ अभिमान से कहते हैं और उन्हें अभिमान करने का हक भी है कि सर्वप्रथम बिहार की कांग्रेस ने भूदान यज्ञ का काम उठाया और उसके बाद हैदराबाद में अ. भा. कांग्रेस ने उसको स्वीकार किया। तो ऐसा क्रम है। ऊपर से एक 'सरक्यूलर' (परचा) आता है: "भूदान में मदद देना कांग्रेसवालों का कर्तव्य है।" गंगा हिमालय से निकली है और हरिद्वार आती है। इसी तरह यहाँ का परचा प्रांतिक समिति में आता है। फिर हिमालय से हरिद्वार आने पर गंगा आगे बढ़ती है और गढ़मुक्तेश्वर आती है। वह परचा भी प्रांतिक समिति से जिला आफिस में आता है। गंगा कहीं-से-कहीं भी जाय, पर वह पानी तो रहती है, गंगा ही रहती है। उसी तरह परचे में से परचे पैदा होते हैं। मैंने विनोद के तौर पर एक दफा कहा था कि हरएक जाति अपनी जाति को ही पैदा करती है। वैसे ही परचा भी परचा ही पैदा कर सकता है। आखिर काम कौन करेगा? काम तो करना होगा ग्राम के लोगों को, तो ग्राम के लोगों तक वह पहुँचता कहाँ है? वह तो एक आफिस में से दूसरे आफिस में जाता है, वहाँ से तीसरे आफिस में जाता है, सिर्फ इतना ही होता है। भूदान यज्ञ के ये हमारे कार्यक्रम तब तक सफल नहीं हो सकते, जब तक कि हम घर घर नहीं पहुँचते। हम पाँच लाख देहातों से पचीस लाख एकड़ जमीन हासिल करना चाहते हैं। यह तो आसान काम दीखता है। प्रति गाँव पाँच एकड़ कोई बड़ी बात नहीं। लेकिन उतने गाँवों तक पहुँचे कौन? इसके लिए हमारे पास मुख्य साधन विचार-प्रचार ही हो सकता है। इसलिए उसकी योजना हमें करनी चाहिए।

अगर इसके लिए हमारी हिम्मत नहीं होती, इतने गाँवों में हम कैसे जायेंगे, कैसे घूमेंगे, ऐसा सब लगता है और हम यह 'शोर्ट कट'—जिसे अंग्रेजी में 'शार्ट कट' कहते हैं—चाहते हैं कि कानून बने, व्यवस्था बने, तो यह बनाना और वैसी व्यवस्था रचना हमारा काम नहीं है। कानून बने और जरूर बने, मदद बने और प्रबन्ध बने, पर उस काम में हम लगेंगे, तो हम परधर्म का आचरण करेंगे, स्वधर्म का नहीं। हमारा स्वधर्म तो यही होगा कि गाँव गाँव घूमना शुरू करें और विचार पर विश्वास रखें। यह न कहें कि 'अरे, विचार सुनने-सुनाने से क्या काम होगा!' विचार से ही काम होगा, क्योंकि हमारा काम विचार से ही हो सकता है। इस तरह यह विचार की सत्ता और विचार-शासन हमारा एक औजार है।

कर्तृत्व-विभाजन

और दूसरा औजार है कर्तृत्व-विभाजन। सारा कर्तृत्व सारी कर्म-शक्ति एक केन्द्र में केंद्रित न हो, बल्कि गाँव-गाँव में कर्म शक्ति, कर्म सत्ता निर्मित होनी चाहिए। इसलिए हम चाहते हैं कि हरएक गाँव को यह हक हो कि उस गाँव में कौन सी चीज आये और कौन सी न आये, इसका निश्चय वह कर सके। अगर कोई गाँव चाहता है कि उस गाँव में कोल्हू चले और मिल का तेल न आये, यानी वह अपने गाँव में मिल का तेल आने से रोके, तो उसे रोकने का हक होना चाहिए। जब हम यह बात कहते हैं तो अधिकारी कहने लगते हैं कि इस तरह एक बड़ी स्टेट के अन्दर एक छोटी स्टेट नहीं चल सकती। इस पर मैं कहता हूँ कि अगर हम सत्ता और कर्तृत्व का विभाजन नहीं करते तो सेना-सत्ता अनिवार्य है, यह समझ लीजिये। फिर सेना के बगैर काम तो चलेगा ही नहीं, और कभी भी नहीं चलेगा। फिर बचाव के लिए यह तय करिये कि सेना बल से काम लेना है और सेना मजबूत रखनी है। फिर यह मत कहिये कि हम कभी-न-कभी सेना से छुटकारा चाहते हैं। अगर आप कभी-न-कभी सेना से छुटकारा चाहते हैं, तो परमेश्वर जैसा हमें भी करना होगा। परमेश्वर ने अक्ल का विभाजन कर दिया। हरएक को अक्ल दे दी—बिच्छू को भी और साँप को भी, शेर को भी और मनुष्य को

थी। कम पैदा नहीं, लेकिन हरएक को प्यार देती और कहा कि अपने जीवन का काम अपनी अक्ल के आधार से करो। तब सारी दुनिया इसी ढंग से सोचने लगी कि यह निर्भयता से पाता है, यहाँ तक कि लोगों को शंका भी होती है कि परमेश्वर है या नहीं? इसी भी मामले में ही चलाना होगा कि लोगों को यह भास होने लगे कि आखिर यहाँ कोई राज चलता है या नहीं। हिन्दुस्तान में शायद राम-राज्य नहीं है ऐसा भी लोग कहें। तभी हमारा राज्य शासन अहिंसक होगा।

इसीलिए हम ग्राम-राज्य का प्रचार करते और चाहते हैं कि ग्राम में निर्णय की सत्ता हो। अर्थात् ग्रामराज्य-नियंत्रण की सत्ता ग्राम हाथ में रहे। यह भी एक जन-शक्ति का प्रश्न आया कि सरकार गुड़ गन्ने ला वाले, निश्चय करें कि अपनी चीज हमें पैदा करनी है और सरकार के पास माँग करें कि अपना माल यहाँ नहीं आना चाहिए उसे रोकिये। अगर वे रोकना चाहते हैं फिर भी मान लीजिये कि रोक नहीं सकते, तो उन्हें उनके विरोध में खड़े होने की हिम्मत करनी होगी। इससे उस सरकार को ताकत प्राप्त पहुँचेगी क्योंकि उसीने केन्द्र-बल का छेद होगा। इसके बगैर सैन्य-बल का कभी छेद नहीं हो सकता। यह कभी नहीं हो सकता कि दिल्ली में ऐसी कोई ताकत पैदा हो जाय—चाहे वह महादेव की ताकत हो—जिसे चार दिमाग हों और जो चारों दिशाओं में देख सकें। कितनी ही बड़ी ताकत क्यों न हो यह हो नहीं सकता कि उसके यहाँ से हरएक गाँव के सारे कारोबार का नियंत्रण और नियोजन हो और वह लगा-तार उसके लिए सामग्री दे। इसलिए 'सेंट्रल प्लैनिंग' (केंद्रीय नियोजन) के बजाय 'विलेज प्लैनिंग' (गाँवों का नियोजन) होना चाहिए। 'बजाय' मैंने कह दिया, पर बेहतर तो कहना यह होगा कि 'सेंट्रल प्लैनिंग' का ही अर्थ विलेज प्लैनिंग हो। उस विलेज प्लैनिंग की मदद के लिए और जो कुछ करना पड़े उतना दिल्ली में किया जायगा। यह है हमारे कार्यक्रम का दूसरा अंग सर्वत्र विभाजन। हम जो कुछ करते हैं, वह सत्ता-वस्तु-विभाजन की दिशा में ही। इसीलिए हम गाँवों में जमीन का बँटवारा करना चाहते हैं।

जमीन के बारे में जब कभी सवाल पैदा होता है तो लोग यही कहते हैं कि 'सीलिंग' बनाओ। अधिक-से-अधिक जमीन कितनी रखी जाय, यह सोचो

ऐसा आजकल लोग बोलने लगे हैं। जब कि यह भूदान यज्ञ का आन्दोलन जोर पकड़ रहा है और जनता में एक भावना पैदा हो रही है तब यह बात बोली जा रही है। लेकिन मैं कहता हूँ कि पहले तो कम से कम जमीन हरएक को देना है यह हम करें। यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि कर्तृत्व-विभाजन चाहता हूँ। आज सारे मजदूर दूसरों के हाथ में काम कर रहे हैं। काम तो वे करते हैं लेकिन उनमें कर्तृत्व नहीं है। गाड़ी चलती है लेकिन उसे हम कर्ता नहीं कहते क्योंकि वह चेतन विहीन है। इसी तरह ये जो मजदूर खेतों में काम करते हैं वे चेतनविहीन जैसा काम करते हैं। हाथों से काम करते हैं, पाँवों से काम करते हैं। लेकिन उनके दिमाग से उनके चित्त से वह काम हो यह हम चाहते हैं। लोग कहते हैं कि हिन्दुस्तान के मजदूरों में इतनी अक्ल नहीं है, इसलिए उनका दूसरों के हाथ में रहना ही बेहतर है। तो मैं कहता हूँ कि यह अहिंसा का तरीका नहीं है। उनमें जो अक्ल है अगर हम उसका परित्याग कर दें तो दूसरी कोई अक्ल, दूसरा कोई खजाना हमारे पास नहीं है।

माना कि एक मजदूर की अक्ल से किसी पूँजीवाले भाई की अक्ल ज्यादा है। लेकिन कुल मिलाकर देश में मजदूरों की जो अक्ल है उसकी बराबरी दूसरी कोई अक्ल नहीं कर सकती। अगर उस अक्ल का हमें उपयोग न मिले तो हमारा देश बहुत खो देगा। इसलिए जरूरी है कि मजदूरों की अक्ल का जैसी भी वह आज है, पूरा उपयोग हो। इसके साथ साथ उनकी अक्ल बढ़े ऐसी भी योजना चाहिए। उनकी अक्ल बढ़ाने की जो भी योजना करेंगे, उसमें यह भी एक योजना होगी कि उन्हें जमीन दी जाय। अलावा इसके कि हम उन्हें और तालीम दें उनके हाथ में जमीन देना भी तालीम का एक अंग और उनकी अक्ल बढ़ाने का एक साधन भी होगा।

भूदान-यज्ञ में सबका आवाहन

भूमि-दान-यज्ञ का काम हमने शुरू किया है। इस समय मैं जो मेरे मन में और मेरी जबान पर है वह यह कि कम-से-कम पाँच करोड़ एकड़ जमीन इस हाथ से उस हाथ में जानी चाहिए। यह काम हमें १९५७ के पहले खतम करना है। अगर इस काम में हम सब लग जायेंगे—हम सब यानी आप और

हम को सर्वोदय समाज के लोग मानते हैं उनमें ही नहीं, बल्कि कांग्रेसवाले प्रजा-समाजवादी पार्टी वगैरह इस विचार को कबूल करते हैं। सारे इस काम में लग जायेंगे—तो हम मानते हैं कि हम इसे कर सकेंगे; फिर एक सारे मौसम आना बढ़ा पाकर बिना कानून के हो जाय, सारे चार आना या आठ आना बढ़ा पाकर कानून की पूर्ति से पूरा हो जाय तो मैं अभिलाषी नहीं हूँ। किस किसी तरह से यह हो जाय, प्रधानतया जन-शक्ति से होना चाहिए। अगर पूर्णतया जन-शक्ति से हो सके तो मैं नाचन लगूँगा। लेकिन प्रधानतया जन-शक्ति से हुआ, तो भी संतोष मानूँगा। अगर १९५७ से पहले हम इतना कर लेते हैं तो आगे का चुनाव शायद वह पक्षों के बीच न होगा। ऐसे पक्षों के बीच जिनमें बहुत सारे सज्जन पड़े हैं। आज हालत यह है कि इस पक्ष में भी सज्जन हैं और उस पक्ष में भी सज्जन हैं और बीच में युद्ध हो रहा है। हम सज्जन-युद्ध चाहते हैं, सज्जनों का युद्ध नहीं। दोनों पक्षों में सज्जन हैं तो वे एक क्यों नहीं हो सकते? अगर कोई कार्यक्रम ऐसा मिले, जिस पर वे एकत्र हो जायँ, तो उनके बीच का बाकी दूसरे मतभेद हैं वे गौण बन जायेंगे। हमारा यह कार्यक्रम बुनियादी है। आज समाजवादी मुझसे कहते हैं कि 'आपने यह कार्यक्रम तो हमारा उठा लिया।' मैं कहता हूँ कि मुझे कबूल है और इसलिए मेहरबानी करके मुझे मदद दीजिये। कांग्रेसवाले कहते हैं कि 'यह तो कार्यक्रम बहुत अच्छा है, हमें करना ही था', तो उनसे भी हम मदद चाहते हैं। जनसंघवाले भी कहते हैं कि 'आपका कार्यक्रम भारतीय संस्कृति के अनुकूल है और इसलिए अच्छा है।' इस तरह भिन्न भिन्न विचारवाले भी इस कार्यक्रम को पसन्द करते हैं। इसलिए अगर हम सब इस काम में लग जायें तो संभव है कि आगामी चुनाव में बहुत से मतभेद न रहें और अच्छे से अच्छे लोग चुने जायें। इस तरह हुआ, तो इसके आगे जो सरकार बनेगी, वह बहुत शक्तिशाली होगी। यही एक उम्मीद इस कार्यक्रम में से मैंने की है।

संपत्ति-दान-यज्ञ

इसके साथ-साथ मैंने एक दूसरा भी कार्यक्रम शुरू कर दिया है, जिसे 'संपत्ति दान यज्ञ' नाम दिया गया है। इसके और भूमि दान का उतना नहीं

होगा और न उसके बगैर आर्थिक आजादी एवं आर्थिक साम्य का हमारा कार्यक्रम ही पूरा होगा। आरम्भ से ही मैं इस चीज को पहचानता था; लेकिन "एक साथ सब सधे" दो बातें एक साथ नहीं हो सकतीं। भूमि का सवाल जितना बुनियादी था उतना सम्पत्ति का नहीं। इसलिए जब तेलंगाना में परमेश्वर का इशारा हुआ तो उस इशारे से, काम करना मुझे अच्छा लगा। इसलिए आरंभ मे इतना ही लिया। लेकिन बाद मे मैंने देखा कि बिहार का मसला हल करने की बात चली तो यह भूमि-दान के साथ साथ संपत्ति-दान-यज्ञ भी चलने पर ही होगा। इसमे हम संपत्ति अपने हाथ में नहीं लेंगे, बल्कि उसमे भी कर्तृत्व विभाजन चाहते हैं। यानी जो सम्पत्ति देगा, वह हमारे निर्देश के मुताबिक उसका इस्तेमाल करेगा यह हमारी योजना है। पर सम्पत्ति-दान यज्ञ का व्यापक प्रचार वैसा सामुदायिक तौर पर करने का नहीं है जैसा कि भूमि-दान यज्ञ का प्रचार हम व्याख्यान के जरिये गाँव-गाँव में जाकर करते हैं। यह काम व्यक्तिगत तौर पर, प्रेम से जितने बात हो सकती है उनके हृदय और कुटुम्ब में, उनके विचारों में प्रवेश करके करने का है। अभी तक जिन जिन्होंने सर्वस्व-दान-यज्ञ में दान दिया है, वह प्रतिवर्ष देने का है, यानी जिन्दगीभर देने की बात है। उसे मैंने काफी सोचा है और जाँच करके ही कबूल किया है। यानी उसेजन देने के बजाय कुछ थोड़ा नियन्त्रण ही मैंने किया है। अभी करीब पचीस पैंतालीस लोगों के नाम मेरे पास हैं उनका ज्यादा जिक्र करूँ बढ़ाना नहीं चाहता पर इतना कहता हूँ कि आपमें से जिनके पास कोई गढ़ी होगी उस लोक उन्हें इसमें शरीक होना चाहिए और अपने मित्रों में प्रेम से इसका प्रचार करना चाहिए। मैं इतना ही कहता हूँ कि यह सा काम परस्परपूरक है। अभी पचीस लाख एकड़ का जो हमने संकल्प किया है उसी पर जोर देना है। संपत्ति-दान सार्वजनिक तौर पर अभी नहीं चलाना है पर व्यक्तिगत तौर पर जितना हो सकता है उतना हम करें।

सूत्रांजलि—सर्वोदय का यज्ञ

इन दो कामों के अलावा एक तीसरी चीज जो हम कर रहे हैं उसे हम 'सूत्रांजलि' कहते हैं। पर एक बड़ी शक्तिशाली वस्तु है। उस शक्ति को हम

पहचान नहीं सकते हैं। इस बापू की स्मृति और शरीर-श्रम की प्रतिष्ठा की स्मारक के रूप में देश में देश की सबकी बहुत की जिम्मेदारी महसूस करते हुए सूताञ्जलि समर्पित करें। इसे मैंने सर्वोदय का 'दोरा' माना है। यह एक नई बात है। इसमें फिर रुकावट यही है कि घर घर जाना पड़ेगा गाँव-गाँव जाना पड़ेगा। लेकिन इसे मैं रुकावट नहीं समझता, बल्कि यह हमारे काम के लिए एक प्रोत्साहक वस्तु है। यानी इस निमित्त से घर-घर जाने का मौका मिलेगा। इसलिए इस काम में महत्त्व देना चाहिए, और अगर हो सके तो जैसे हम पचीस लाख एकड़ जमीन की बात करते हैं वैसे ही लाखों गुण्डियाँ हमें प्राप्त करनी चाहिए। श्रम प्रतिष्ठा बढ़ाने में इसका बहुत उपयोग होगा।

श्रम-प्रतिष्ठा

इसके अलावा और एक बात हम कहना चाहते हैं। आज तक हमने जो संस्थाएँ चलायीं वे पैसे का आधार लेकर चलायीं। धनवान् मिडिल क्लास लोग— जो कि हमारे मित्र थे, प्रेमी थे, हमसे सहानुभूति रखते थे जिनके हृदय शुद्ध थे—हमें मदद देते थे और हम लेते थे। इसमें हम कुछ गलती करते थे ऐसी बात नहीं। पर अब जमाना बदल गया और श्रम का जमाना आया है। इसकी भी प्रतिष्ठा हमें बढ़ानी चाहिए। अतः अगर हम हरएक प्रान्त में एक-आध संस्था ऐसी खड़ी कर सकें जो आरम्भ से श्रम के आधार पर ही चले और चलते रहना है, तो श्रम का ही दान है। अगर यह सूताञ्जलि की बात फैली, तो ऐसी संस्थाएँ हम चला सकते हैं। उनमें से तेजस्वी कार्यकर्ता निर्माण हो सकते हैं, जो प्रचार में भी लग सकते और काम में भी लग सकते हैं। यह एक और हमारी योजना है।

मैंने विचार के जितने अंग थे थोड़े में आप लोगों के सामने रखे। सर्वोदय-समाज की सभा में हम आते हैं तो और भी जीवन की कई बातों का विचार चर्चा आदि करते हैं वह हम करें। लेकिन यह जो मुख्य मुख्य बातें मैंने बतायीं उन पर आप अवश्य सोचें चिन्तन मनन करें और इस दिशा में अमल एक साल हम दिखायें, यही हम चाहते हैं।

हम मनुष्य-मात्र हैं

आखिर मैं वो शब्द कहना चाहता हूँ। हमारा यह काम किसी एक सम्प्रदाय का काम नहीं है। 'सर्वोदयवाले' यह शब्द हमें सुनाई देना नहीं चाहिए। यह शब्द ही गलत है। हम केवल मनुष्य-मात्र हैं, मानव से भिन्न हम कोई नहीं हैं। नहीं तो गलते देखूँगे—यद्यपि हम सर्वोदय-समाज कोई विशेष अनुशासन के साथ नहीं बनाते तो भी—हम धार्मिक बन सकते हैं, साम्प्रदायिक बन सकते हैं। इसलिए यह भाषा कभी नहीं निकलनी चाहिए कि फलाना समाजवादी है, फलाने कांग्रेसवाले हैं, फलाने सर्वोदयवादी हैं आदि।

तीसरी शक्ति

ये जो दूसरे नाम हैं वे चलेंगे क्योंकि वे लोग उस-उस नाम पर काम करना चाहते हैं और उसकी उपयोगिता मानते हैं। लेकिन हमारा कोई पक्ष नहीं है। जिसे तीसरी शक्ति कहते हैं, वे हम हैं। तीसरी शक्ति का मतलब आज दुनिया की परिभाषा में यह होता है कि जो शक्ति न अमेरिका के 'ब्लाक' में पड़ती है और न रूस के 'ब्लाक' में ही, लोग उसे तीसरी शक्ति कहते हैं। लेकिन मेरी तीसरी शक्ति की परिभाषा यह होगी कि जो शक्ति हिंसा की शक्ति से विरोधी है अर्थात् हिंसा की शक्ति नहीं है और जो दंड शक्ति से भी भिन्न अर्थात् दंड शक्ति भी नहीं है। एक हिंसा शक्ति, दूसरी दंड शक्ति और तीसरी हमारी शक्ति है। हम इसी शक्ति को व्यापक बनाना चाहते हैं। हमारा कोई अलग सम्प्रदाय नहीं बनना चाहिए बल्कि हमें आम लोगों में घुल मिलकर मानव मात्र रहना चाहिए।

चांडिल
७-३-'५१

यह एक मजदूरों की नगरी है। जब कभी मुझे मजदूरों के सामने बोलने का मौका मिलता है बहुत खुशी होती है।

मजदूर दुनिया का आधार

वैसे तो यह सारी दुनिया ही मजदूरों की है। दुनिया में जितने भी काम होते हैं वे सब मजदूर ही करते हैं फिर वह चाहे खेत में हो, कारखाने में या खानों में। मजदूरों के आधार पर ही हम सबका जीवन चल रहा है। कहा जाता है कि दुनिया परमेश्वर के आधार पर चलती है लेकिन परमेश्वर को हम देखते तो नहीं, सिर्फ मानते हैं कि वह दुनिया का सारा भार उठा रहा है। किंतु मजदूरों को हम साक्षात् अपनी आँखों से देखते हैं। यह भी देखते हैं कि वे दुनिया का भार उठा रहे हैं। सिर्फ पहचानना बाकी है कि परमेश्वर मजदूरों के रूप में हमारे सामने खड़ा है। अगर इसकी पहचान हो जाय, तो दुनिया के सारे झगड़े मिट जायें और दुनिया में प्रेम-भाव पैदा हो जाय। जितने भी लोग हैं, वे सारे मजदूरों की सेवा में लग जायें और अन्त में उनकी सेवा करते-करते खुद भी मजदूर बन जायें।

भक्ति-मार्ग ने हमें यही सिखाया है। पहले हम भगवान् की भक्ति करते हैं। मन वचन और कर्म से भगवान् की सेवा में लगते हैं। अन्त में यह हालत हो जाती है कि भक्त ही भगवान् जैसे बन जाते हैं। भगवान् की सेवा करते करते भक्त को वही रूप मिल जाता है। इसी तरह अगर हम लोग मजदूरों की सेवा में लगेंगे, यह मानकर कि 'परमेश्वर जो अव्यक्त रूप में सारी दुनिया में व्याप्त है वह हमारे सामने यही लेकर मजदूरों के रूप में खड़ा है' तो सेवा करते-करते हम खुद मजदूर बन जायेंगे।

भगवान् भक्त के पूजक

भगवान् श्रीकृष्ण का चरित्र 'भागवत' में और संतों ने गाया है। उसे हम प्रेम से सुनते हैं। वे भगवान् ग्वाल बालों में गोपालों में रहते थे और गोपाल होकर रहते थे। वे घोड़ों की सेवा करते थे गायों की सेवा करते थे, गोबर उठाते

थे भूमि में काम करते थे और अपना को उसकी चरण धूलि मानते थे। राजसूय यज्ञ में धर्मराज ने अर्जुन भीम आदि सबको काम बाँट दिये। भगवान् जब वहाँ पहुँचे तब उन्होंने धर्मराज से कहा कि मुझे भी काम दीजिये। धर्मराज ने कहा कि आपके लिए मेरे पास काम नहीं है। लेकिन भगवान् ने कहा कि मुझे काम चाहिए, यज्ञ में मुझे भी हिस्सा लेना है। तब धर्मराज ने उनसे कहा कि आप ही अपना काम चुन लीजिये। भगवान् ने जूठन उठाने का काम लिया। उसकी कहानी कवि लोग गाते हैं। वही हमारे सामने आदर्श है। अगर हम उसका चित्र निरंतर अपने सामने रखें तो तिनके से भी नम्र बन जायेंगे—अपने को सबकी चरण धूलि समझने लगेंगे। फिर मालिक मजदूर का भेद ही खतम हो जायगा। मालिक तो सेवक के सेवक बन जायेंगे।

भगवान् की ही कथा है। एक बार उद्धव भगवान् से मिलने गये थे। उन्हें बताया गया कि भगवान् पूजा कर रहे हैं। इसलिए वे बाहर ही रुक गये। पूजा के बाद जब भगवान् बाहर आये, तब उद्धव ने उनसे पूछा कि आप तो हमारे लिए भगवान् हैं फिर आप किसकी पूजा करते हैं? भगवान ने उससे कहा: उद्धव तुम यह नहीं समझ सकते। लेकिन जब उद्धव ने जिद की तब भगवान् ने बताया कि मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ। इसी तरह जो मालिक हैं, वे मजदूरों के सेवक बनें राजा प्रजा के सेवक बनें पिता पुत्र के सेवक बनें। जिस किसीको जिम्मेदारी का काम मिला है वे सेवक बनकर काम करेंगे तो दुनिया के सारे झगड़े मिट जायेंगे। दुनिया में आज जो झगड़े हैं उनका कारण यही है कि हम बिना परिश्रम किये अधिक से अधिक लाभ उठाने की सोचते हैं। इसीको चोरी कहते हैं। रात को छिपकर दूसरे के घर की वस्तु चुरानेवाले तो छोटे चोर होते हैं। पर बड़े चोर तो हम हैं जो कम श्रम करते हैं और दूसरे के श्रम का बेजा लाभ उठाना चाहते हैं। अगर हम यह पहचानें तो सारी दुनिया की सूरत ही बदल जाय।

भारत के तपस्वी मजदूर

जिस काम के लिए मैं यहाँ आया हूँ वह गरीबों का दलितों का, दुनिया का और मजदूरों का काम है। शहर के मजदूरों की आवाज तो दुनिया में कुछ

सुनाई देती है। उनकी तरफ से बोलनेवाले उनकी वकालत करनेवाले कुछ तो हैं। लेकिन देहात में जो मजदूर हैं, उनकी हालत ऐसी है कि वे न सिर्फ बेजमीन हैं बल्कि बेजबान भी हैं। उनके पास भूमि नहीं है, सम्पत्ति नहीं है, मकान नहीं है—कुछ भी नहीं है। वे किसी भी चीज के मालिक नहीं हैं सिवा अपने शरीर के। उनको अपनी वाणी भी नहीं है, वे बोल भी नहीं सकते। उनकी तरफ से उनकी आवाज मैं हिन्दुस्तान को सुना रहा हूँ। इसलिए मैं पैदल यात्रा करता हूँ। अपनी यात्रा में मैं बीच बीच में छोटे-छोटे देहातों में भी जाता हूँ और वहाँ गरीबों के दर्शन करता हूँ। मेरी आँखें उनके दर्शन से तृप्त हो जाती हैं सिर्फ उन्हें देखनेभर से ही मुझे समाधान मिलता है। वे मुझे अपने दर्शन का मान करा देते हैं। उनकी आँखों में मैं प्रेम देखता हूँ। वे दुःखी हैं। उन्हें खाना, कपड़ा तालीम, घर, कुछ भी नहीं मिलता। बीमारी में उनके लिए कोई भी इन्तजाम नहीं है। ऐसी उनकी सब तरह से गिरी हालत है। फिर भी मैंने उनकी रोती सूरत कभी नहीं देखी, वे हमेशा हँसते रहते हैं।

आखिर उनके जीवन में किस चीज का आनन्द है? आप देहात में जाकर देखें तो आपसे गरीब मनुष्य कहेगा कि उसे खाना नहीं मिलता। वह यह बात भी हँसते हँसते कहेगा। यही हिन्दुस्तान की खासियत है। हिन्दुस्तान तत्त्वज्ञानियों का देश है, ऋषि मुनियों का देश है। यहाँ अनेक सन्तों ने जीवन का तत्त्व का दर्शन किया है और लोगों को समझाया है कि आखिर यह सृष्टि चार दिनों का है। इसलिए हँसते रहो दुःख मत करो। सन्तों की शिक्षा का हिन्दुस्तान पर इतना गहरा परिणाम है। नहीं तो आप इस गिरी हालत में लोगों को हँसते हुए न पाते। यह तत्त्वज्ञान हमारे लोगों के खून में बहुत गहरा पैठा है। वे लोग इस तरह सहन करते हैं कि उनका सब सहन करना ही एक तरह से तपश्चर्या है, जो मुझ जैसे को सूझती है। मैं जो घूम रहा हूँ उसके पीछे मेरी ताकत नहीं है। वह उन तपस्वियों की ताकत है जो कारखानों में, खेतों में और खानों में काम करते हैं। आधा पेट रहकर भी काम करते और फिर भी मस्त रहते हैं। किसीको तकलीफ नहीं देते बल्कि स्वयं सहन करते जाते हैं। यही उनकी तपस्या है, जो मुझे जगाती है।

मेरी सभा में मेरी बात सुनने के लिए इतने सारे मजदूर इसीलिए आते हैं कि वे समझ गये हैं कि यह मनुष्य हमारी तरफ से सारी दुनिया को जगा रहा है, दुनिया की विवेक-बुद्धि को जगा रहा है। शहर और देहात के मजदूर मेरे पास इसी आशा से आते हैं और उन्हें यह आशा रखने का हक भी है। एक जमाना था जब कि हिन्दुस्तान में ब्राह्मणों ने महान् तपस्या की थी। वे जंगलों में रहते थे, ब्रह्मचिन्तन, उपवास, जप, तप आदि करते थे। लेकिन आज उनकी तपस्या क्षीण हो गयी। सैकड़ों वर्षों तक यहाँ उनका आदर हुआ। लेकिन अब इन मजदूरों का आदर होनेवाला है क्योंकि अब ये तपस्या कर रहे हैं। आगे आनेवाली जनता और आगे आनेवाला इतिहास इनकी भक्ति के गीत गायेगा। आगे का जमाना इन्हीं का, मजदूरों का जमाना है।

शक्ति, लक्ष्मी और सरस्वती सेवा में लगें

आज तक तीन देवताओं की पूजा हुई है। एक शक्ति देवी। कुछ ऐसे थे जो शस्त्रास्त्र से दुनिया पर सत्ता जमाते थे। दूसरी लक्ष्मी देवी। कुछ ऐसे थे जो धन-सम्पत्ति इकट्ठा कर उसके जरिये दुनिया पर अपनी सत्ता जमाते थे। तीसरी सरस्वती देवी। कुछ विद्या, कला, ज्ञान का सम्पादन करते और उसके आधार पर दुनिया पर अपनी सत्ता जमाते थे। ये तीनों दुनियाभर में बहुत सत्ता पा चुके। अब बारी आयी है कि ये सेवा में लग जायें। जिसके पास शक्ति है वह अपनी शक्ति का उपयोग दुनिया की रक्षा में और कमजोरों का पालन करने में करे। जिसके पास धन-सम्पत्ति है, वह उसका उपयोग गरीबों को देने में करे। जिसके पास विद्या या कला है वह उसका उपयोग समाज में विचार-जागृति में करे। इस तरह शक्ति, सम्पत्ति और विद्या इनमें से जिसे जो भी मिला है, वह उसका उपयोग दुनिया के लिए करे, जनता की तरफ से अपनी छाती पर आशीर्वाद झेले। ये तीनों देवियाँ आज तक सत्ता जमा करती आ रही हैं, पर अब इन्हें सेवा करनी होगी, तभी इनका जीवन सार्थक होगा। आज तक इन देवताओं ने लोगों का खूब मान-सम्मान सम्पादन किया है। वह तभी टिकेगा, जब ये सेवा में लगेंगी। अगर ये आज भी सत्ता जमाने में लगी रहें, तो वह मान-सम्मान नहीं टिकेगा। इसलिए अब इन्हें झुकना ही पड़ेगा।

ज़माना बदलता जा रहा है, मानव का विकास हो रहा है। एक ज़माना था, जब ब्राह्मणों की सत्ता चलती थी। सब लोग उनकी सुनते थे। उसके बाद एक ज़माना आया जब क्षत्रियों की सत्ता चली। उसके बाद ज़माना आया जब वैश्यों की सत्ता चली और वह कुछ हद तक आज भी चल रही है। इस तरह आज तक इन तीनों की सत्ता चली। लेकिन आज वह सत्ता ख़तम हो गयी है। अब श्रम जनता का ज़माना आया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चार वर्ण सिर्फ हिन्दुस्तान में नहीं सारी दुनिया में थे। सारी दुनिया में उसीके अनुसार काम चलते थे। लेकिन यहाँ सिर्फ वर्गीकरण हुआ है।

मूर्त भगवान् का दिखाना ही सच्ची भक्ति

कुछ बड़े-बड़े टीले और पहाड़ और बाकी सारे गड्ढे—यह नहीं चल सकता। हमें सारी दुनिया का स्तर ऊँचा उठाना है। इधर हिमालय, उधर सिन्धु-सागर और बाकी सारे गड्ढे—यह अब नहीं चलेगा। अब टीलों की मिट्टी खोदकर गड्ढे भरने होंगे। तभी खेती करने लायक समतल ज़मीन बनेगी और अच्छी फसल आयेगी। यह बात कोई एक मौके नहीं बल्कि आहिस्ता आहिस्ता आती है। पहले दुनिया में ऐसी कल्पना थी कि जंगल में जाकर एकान्त ध्यान-चिन्तन से परमेश्वर मिलेगा। उसके बाद लगता था कि बड़े-बड़े काम करनेसे परमेश्वर मिलेगा। लेकिन अब लगता है कि परमेश्वर ध्यान से या बड़े काम करने से नहीं बल्कि सबकी सेवा करने से मिलता है। पहले लगता था कि पत्थर की पूजा करने से परमेश्वर मिलेगा लेकिन अब परमेश्वर व्यक्त स्पष्ट रूप में हमारे सामने आया है। वैसे तो वह पहले से ही स्पष्ट रूप में था पर हम उसे पहचानते नहीं थे। वैसे तो दुनिया की हर चीज़ में परमेश्वर है, परन्तु हमारे सामने बोलने और चलनेवाला परमेश्वर खड़ा है।

नामदेव की कहानी है। एक दिन नामदेव ने भगवान् के सामने दूध रखा, लेकिन भगवान् ने नहीं पिया। उसने सोचा कि आज तक रोज मेरे पिताजी पूजा करते थे, तो भगवान् दूध पीते होंगे, फिर मेरा ही दूध क्यों नहीं पीते? उसने हठ पकड़ लिया और आखिर भगवान् ने उसका दूध पिया। लेकिन आज हालत ऐसी है कि भूखा भगवान् हमारे सामने खड़ा है। तब तो भगवान् खाना पीना नहीं च

और नामदेव ने हठ करके उसे दूध पिलाया। लेकिन आज का भगवान् खुद दूध माँग रहा है। यह ऐसा भगवान् है जो खुद दूध दुहता तो है पर उसे यह पीने को नहीं मिलता। वह फलों के बगीचे में काम करता है पर उसे फल चखने को नहीं मिलता। वह गेहूँ के खेत में काम करता है पर उसे रोटी खाने को नहीं मिलती। इस तरह भूखा प्यासा और बिना कपड़ों का भगवान् हमारे सामने खड़ा है। वह कहता है कि हमें खिलाओ, कपड़े दो हम ठंड में ठिठुर रहे हैं।

लेकिन यह देखते हुए भी अगर हम पत्थर की मूर्ति को खिलायेंगे, उसके लिए घर बनायेंगे, तो यह नाटक हम कब तक करेंगे? जब ठंड में ठिठुरनेवाला भगवान् हमारे सामने खड़ा है तब उस पत्थर के भगवान् को कपड़े पहनाना कब तक चलेगा? आज की भक्ति की भावना बदली है। मानव-सेवा आज का धर्म है। आहिस्ता-आहिस्ता दुनिया इसे पहचान रही है। पहले ज्ञान की महिमा थी। फिर हम ज्ञान से ध्यान में आये। फिर ध्यान से कर्म में आये। फिर कर्म से भक्ति में आये और अब भक्ति से सेवा में आये। इस तरह आहिस्ता-आहिस्ता विकास हो रहा है।

मानव-हृदय शुद्ध है

चाहे हमारा जीवन बुरा हो पर हृदय बुरा नहीं है। मनुष्य का सर्वस्व उसका हृदय ही है। उसमें प्रेम, न्याय, भक्ति, निष्ठा, सत्य आदि अनंत सद्गुण भरे हैं। जैसे आकाश में अनंत तारे होते हैं वैसे ही हमारे हृदय में भी अनंत शुभ गुण भरे हैं। लेकिन उसके ऊपर पर्दा पड़ा है जिसके कारण हम उन्हें देख नहीं सकते। यह ऊपर का पर्दा फाड़ डालो तो तुम्हारे अंदर की महिमा प्रकट होगी। मैं अत्यंत विश्वास के साथ जनता के पास पहुँचता हूँ तो मुझे वैसा ही दान मिलता है। मैं जमीन माँगता हूँ तो कोई इनकार नहीं करता। जमीन देना अपना धर्म है ऐसा सब लोग मानते हैं। यह इसीलिए होता है कि जिस किसीके पास मैं पहुँचता हूँ उसमें मैं शुद्ध मूर्ति मानता हूँ। उसके हृदय में परम शुद्ध स्वच्छ, निर्मल भाव है ऐसा ही मैं मानता हूँ। ऊपर का छिलका नहीं देखना चाहिए। उसमें से अन्दर चलते भी वैसे जाना इसका ठीक जानना

चाहिए। अगर तरीका न जाने और ऊपर का छिलका ही खाने लगें, तो फल का असली स्वाद कैसे मालूम होगा? छिलका उतारकर फल खायें, तभी उस रसाल का पता चलता है। इसी तरह मनुष्य के हृदय पर जो छिलके हैं, उन्हें उतारकर अन्दर के मानव को अगर हम प्रत्यक्ष करें, तो पता लगेगा कि हिंदुस्तान में परम शुद्ध मानव बसते हैं।

तू ब्रह्म है

कुछ लोग कहते हैं कि मानव-हृदय शुद्ध है, यह विनोबा को भ्रम हुआ है। मैं कहता हूँ कि मैं ऐसे ही भ्रम में पड़ा रहना चाहता हूँ। मैं मानता हूँ कि मनुष्य-हृदय परम शुद्ध और पावन है। यह मानने से न मेरा आज तक कोई नुकसान हुआ है और न कभी होगा। और यह मानने से दुनिया का भी न कभी नुकसान हुआ है और न होगा। हमारी उपनिषदों ने कहा है कि 'तू ब्रह्म है'। ऐसा कभी नहीं कहा कि 'तू इन्द्रिय है, तू शरीर है, तू बुद्धि है'। अगर हम यह कहें कि 'तू ब्रह्म है, तू पावन है, तू मंगल है, तू आनन्दमय है', तो वह फौरन वैसा बन जाता है। जैसे हम मानते हैं, वह वास्तव में वैसा हो जाता है।

रामायण की कहानी है। सीता की खोज के लिए किसे भेजा जाय, इस विषय पर चर्चा चल रही थी। किसीको जाने की हिम्मत नहीं हो रही थी। हनुमान् चुप बैठा था। तब जाम्बवान् ने उससे कहा कि 'हनुमान्! तू क्यों नहीं जाता? तू तो जा भी सकता है और आ भी सकता है।' तब हनुमान् ने कहा कि 'आपका आशीर्वाद है और आपको लगता है कि मैं जा और आ सकता हूँ, तो जरूर जाऊँगा और आऊँगा।' आखिर वह गया और सफल होकर वापस आया। हनुमान् की यह शक्ति जाम्बवन्त के शब्दों में है।

जहाँ ऋषि कहते हैं कि 'तू ब्रह्म है', वहाँ मैं कहता हूँ कि हाँ, मैं ब्रह्म हूँ। एक बच्चे को हम गंदा कहते हैं, तो उसे दुःख होता है, क्योंकि वह वास्तव में गंदा नहीं है। अगर हम उसे यह कहें कि 'तू पवित्र, शुद्ध और निर्मल है, लेकिन तेरी आँखों में थोड़ी गन्दगी है, उसे धो डाल' तो वह फौरन धो डालेगा। किन्तु आँख की गन्दगी से हम उसे गंदा मान लेते हैं, अगर वे छिलके को देखकर

अन्दर के फल को बुरा कहते हैं यह कितना गलत है ? क्या हम नारियल आम या अखरोट का ऊपर का ही छिलका खायेंगे ? खाने की चीज तो अन्दर होती है। वैसे ही मानव हृदय के ऊपर का छिलका फेंककर अन्दर देखो। मानव के हृदय में जो गुण होते हैं वे दरवाजे हैं और दोष दीवार हैं। किसी भी घर में प्रवेश करना हो तो दरवाजे से प्रवेश करना पड़ता है, नहीं तो दीवार से टकरा जाते हैं। दुनिया में ऐसा कोई भी घर नहीं जिसमें दरवाजा न हो। अमीर के महल में पचास दरवाजे होते हैं परन्तु गरीब की झोपड़ी में भी एक दरवाजा तो होता ही है। इसलिए मानव के हृदय में उसके गुणों के द्वारा प्रवेश करना चाहिए।

शक्ति का स्रोत दिल्ली में नहीं हमारे हृदय में

अभी स्वराज्य प्राप्त हुए कुछ पाँच साल हुए। फिर भी लोग कहते हैं कि सरकार ने यह नहीं किया वह नहीं किया। मैं उनसे पूछता हूँ कि आप स्वतंत्र हैं या गुलाम ? अगर स्वतन्त्र हैं तो क्या आप यह चाहते हैं कि आपके गाँव की तालीम का इन्तजाम सरकार करे आपके गाँव की सफाई सरकार करे ? आपके गाँव के सारे काम सरकार करे ? आखिर सरकार क्या चीज है ? जो काम परमेश्वर नहीं कर सकता, क्या वह सरकार कर सकेगी ? परमेश्वर बारिश देता है पर सिर्फ बारिश से फसल नहीं उगती, घास उग सकती है। जब किसान परिश्रम करता है धरती में अपना पसीना डालता है तभी फसल उगती है। इस तरह जब परमेश्वर ही फसल नहीं उगा सकता तो क्या सरकार उगा सकती है ?

सरकार की ताकत से हम ताकतवर बनेंगे, यह मानना ही गलत है। वास्तव में हमारी ताकत से ही सरकार ताकतवर बनेगी। शक्ति का मूल स्रोत दिल्ली या पटने में नहीं वह तो हमारे और आपके हृदय के अन्दर है। वहीं से चाहे जिस काम में शक्ति लगायी जा सकती है। लोग मुझसे पूछते हैं कि क्या आप यह मसला हल कर सकेंगे ? मैं कहता हूँ कि अगर आपने चाहा तो आप भी यह मसला हल कर सकते हैं। अगर आप चाहें कि अपने घर की लड़की को योग्य वर ढूँढकर उसके घर पहुँचावें तो आपको कौन रोक सकता है ?

इसी तरह आपको जिस समय यह लगेगा कि धन और धरती दूसरे के पास पहुँचाने में ही हमारा कल्याण और मंगल है, तो पहुँचाने में आपके हाथ कौन रोकनेवाला है ? यह तो समझने की बात है।

समाज एकरस बनाना है, नीरस नहीं

कुछ लोग मुझसे पूछते हैं कि मजदूर मालिक गरीब श्रीमान् ये भेद रहेंगे या नहीं ? मैं कहता हूँ कि ये भेद ऐसे हैं, जैसे आँख और कान। हमारे शरीर में कैसा चमत्कार होता है यह देखो। सबका अनुभव है कि अगर हमारे कान में चोट लगी हुआ या आँखों से आँसू गिरते हैं। यद्यपि आँख को तो दुःख नहीं है फिर भी कान के दुःख से वह रोती है। यह जो आँख और कान का प्रेम-संबंध है, वही सारे समाज में प्रस्थापित हो, यह मैं चाहता हूँ। फिर चाहे मजदूर मजदूर रहे और मालिक मालिक। मजदूर के दुःख से मालिक भी रोयेगा। आखिर भगवान् ने हमें अलग अलग ताकत दी है और इसलिए यह दुनिया अनंत शक्तियों से भरी है। अगर उसने सभी को एक ही शक्ति दी होती, तो दुनिया में आनन्द नहीं रहता। स्वर अनेक हैं, इसीलिए संगीत बनता है। अगर एक ही स्वर चले, 'सा सा सा' तो संगीत नहीं बनेगा। संगीत जो बनता है, वह विविध ध्वनियाँ होती हैं, लेकिन उनमें एकता भी होती है, इसी तरह हमें सारा समाज एकरस बनाना है, नीरस नहीं।

अपनी चीज दूसरे को देने में ही कल्याण

हम चाहते हैं कि भूमि-दान और संपत्ति-दान सब में आप लोग हिस्सा लें। जिनके पास दोनों नहीं हैं वह श्रम-दान दें। जिसके पास बुद्धि है, वह बुद्धि दे। अपने पास जो भी चीज है वह दूसरे को देने के लिए है, लोक-सेवा के लिए है, इस बात को हम समझ लें। मेरी थाली में से लड्डू उठाकर अगर हाथ उसे वहीं पकड़ रखे तो परिणाम क्या होगा ? लेकिन नहीं हाथ उदार बनकर उस लड्डू को मुँह में डालता है। फिर मुँह भी उसे अपने पास ही नहीं रख लेता बल्कि चबा-चबाकर पेट में डाल देता है। अगर पेट ने भी उसे अपने पास ही रखा तो पेट का आपरेशन करना पड़ेगा। परन्तु पेट उसका रसायन बनाकर सारे शरीर

में भेजता है। हर कोई उसे अपने ही पास न रखते हुए दूसरे के पास भेज देते हैं इसीलिए उस लड्डू का मेरे शरीर को फायदा मिलता है। इसी तरह हमारे पास धन और संपत्ति जो कुछ भी है, वह फौरन दूसरे के पास पहुँचानी चाहिए। सिर्फ यही देखना चाहिए कि वह दूसरा व्यक्ति उसका उपयोग अच्छी तरह से करता है या नहीं।

फुटबाल के खेल में हम अपने पास आया हुआ गेंद अगर अपने ही पास रखें तो खेल खतम हो जायगा। किंतु वहाँ हमारे पास गेंद आता है वहीं फौरन हम उसे लात मारकर दूसरे के पास भेज देते हैं। इसी तरह संपत्ति पास आते ही फौरन लात मारकर उसे दूसरे के हाथ मे पहुँचा देंगे तो आपका कल्याण होगा और अपने ही पास रखेंगे तो नहीं होगा। यही समझाने मैं आता हूँ जो आसानी से समझने की बात है।

आगे तो ऐसा होगा कि एक मनुष्य गाँव मे जायगा और भूमि-हीन को ढूँढकर उसे जमीन दे देगा। फिर विनोबा और कानून की कोई जरूरत ही नहीं रहेगी। मुझे भीख का ठेकेदार नहीं बनना है। मैंने अब तक आठ लाख एकड़ जमीन प्राप्त की है। उसका भी मैं अगर बँटवारा करने जाऊँ, तो वह नहीं हो सकता। इसलिए यह तो सब लोगों का काम है मैं पुरोहित हूँ। मैं निमित्त मात्र बनना चाहता हूँ कि मेरे निमित्त से आपके घर मे शुभ कार्य की प्रेरणा होगी। और आप अपनी भूमि और संपत्ति बाँट देंगे।

मैंने भूमि दान यज्ञ के समान संपत्तिदान यज्ञ भी शुरू किया है। इसमे दाता ही हिसाब रखता है मैं उसमे मुक्त रहता हूँ। आप संसारी हैं इसलिए आप ही इस काम की जिम्मेदारी उठायें। आप कमाई करते और अपने बाल बच्चों को खिलाते हैं। वैसे ही गरीब को खिलाना एक धर्म माना गया है।

कम्युनिस्ट लोग आक्षेप करते हैं कि विनोबा को न जमीन चाहिए, न संपत्ति उन्हें तो कागज चाहिए। उनकी सेवा नहीं है। इतनी सारी जमीन लेकर मैं क्या करूँगा? जमीन और संपत्ति तो गाँव की गाँव मे ही रहेगी और वहीं खर्च होगी। मैं तो सिर्फ आपको प्रेरणा देनेवाला हूँ। परमेश्वर का भेजा हुआ एक निमित्त हूँ। मैं चाहता हूँ कि आपमें से हर मनुष्य यह मान ले कि अपनी-अपनी संपत्ति

और भूमि में से छठा हिस्सा मैं कुटुम्ब के नाते लूँगा। अब कुटुम्ब का भरण-पोषण करने से हमारी तृप्ति नहीं होगी। ऐसा समाज हमें निर्माण करना होगा। इस तरह छठा हिस्सा देने का जब देनेवाले बहुत से मिल जायेंगे, तो हिन्दुस्तान प्राचीन काल में जैसे वैभवशाली था, उससे भी अधिक वैभवशाली होगा।

पक्षीय भेद छोड़कर काम करें

मेरे इस काम में किसी भी तरह की पक्ष भावना (दल भावना) न आनी चाहिए। भगवान् ने गीता में कहा है कि निष्काम और निरहंकार भाव से काम करो, तभी भगवान् के पास पहुँच सकोगे। इस तरह आप लोग भूदान का काम पार्टी के लाभ से करेंगे, तो वह काम नहीं होगा, जो मैं चाहता हूँ। इसलिए निरहंकार और निष्काम भाव से यह काम करें। यह काम करने से अपने पक्ष की इज्जत बढ़ती है ऐसी भावना निकम्मी है। यह तो ज्यों की सी बात है। हम तो सेवा का मजा चखना चाहते हैं। हम जो काम करते हैं, उसका फल हम परमेश्वर से चाहेंगे, लोगों से नहीं। इसलिए पक्ष-भावना और अहंकार छोड़कर यह काम करें तो एक साल में हिन्दुस्तान की सूरत ही बदल जायगी।

बेरमो (हजारीबाग)
२१। १। ५३

बड़े उद्योगों का राष्ट्रीयकरण हो ३ :

दुनिया ने अनुभव से यह देख लिया है कि किसी भी एक राजा के हाथ में, चाहे वह कितना ही बुद्धिमान् क्यों न हो, सारी सत्ता रहना खतरनाक है। इसीलिए 'राजसत्ता' गयी और अब 'लोकसत्ता' शुरू हुई। राजसत्ता में जनता का विकास नहीं हो सकता था। राज्य व्यवस्था में जो हुआ, वही व्यापार के क्षेत्र में भी होनेवाला है। अभी यह माँग की गयी कि अमुक का धन्धा जो आज चन्द लोगों के हाथ में है, देश के हाथ में हो। यह कोई नया विचार नहीं। आगे दुनिया में यही होनेवाला है।

सर्वोदय के दो सिद्धान्त

सर्वोदय-विचार में दो बुनियादी बातें मानी गयी हैं : (१) रोजमर्रा की सारी चीजें—खाना, कपड़ा आदि—गाँव में ही पैदा हों। छोटे छोटे उद्योगों के जरिये लोग स्वावलम्बी बनें। जो काम घर में हो सकते हैं—जैसे रसोई, कताई आदि वे घर में हों और जो गाँव में हो सकते हैं—जैसे तेल, जूता आदि—वे गाँव में हों। और (२) लोहा, कोयला, अभ्रक के जैसे बड़े-बड़े धन्धे—जिनका सम्बन्ध न सिर्फ सारे देश से बल्कि सारी दुनिया के साथ है—किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत मालकियत के न रहें। उन पर समाज की मालकियत हो। इसके बगैर सर्वोदय नहीं हो सकता।

यह अत्यन्त प्रथम-विचार

ऐसे बड़े बड़े धन्धे जिनमें लाखों मजदूर काम करते हैं वे चन्द लोगों के हाथ में रहें—यह खतरनाक है। इस पर कुछ लोगों का आक्षेप है कि व्यक्तिगत मालकियत न रही तो लोग उनमें पूरी ताकत नहीं लगायेंगे। आज वे स्वार्थ भाव से ताकत लगाते हैं, तो धन्धे किफायत से चलते हैं। पर जब वे धन्धे सरकार की मालकियत में हो जायेंगे, तो वे उन्हें किफायत से नहीं चलायेंगे।

इस तरह उनकी अपना या देश को लाभ नहीं होगा। अगर यह सही हो तो कहना पड़ेगा कि सारे धर्महीन बन गये। सभी धर्म कहते हैं कि जो काम समाज के लिए करना है, वह पूरी निष्ठा के साथ करना चाहिए। तब यह कहना कि व्यक्तिगत मालकियत रहने पर ही मालिकों को इन्सेंटिव (प्रेरणा) मिलती है, सरासर अधम विचार है। खेद है कि दुनिया में आज यह विचार चलता है, क्यों आज दुनिया में अधर्म चल पड़ा है।

व्यापार भी वैश्यों का धर्म ही

हमारे यहाँ चार वर्ण बनाये गये और हरएक वर्ण को अपना अपना बताया गया था। ब्राह्मण का धर्म था ज्ञान देना। वह स्वार्थ या पैसे के लिए ज्ञान नहीं देता था, बल्कि धर्म के तकाजे से ही देता था। क्षत्रियों का धर्म देश के लिए मर मिटना और वैश्य का धर्म था व्यापार। वह उनका कर और सेवा का साधन था और उस सेवा के कारण उसे अपने पेट के लिए मिलता था। इस तरह हमने व्यापार को भी धर्म बनाया था।

'संपत्ति समाज की हो' यह धर्म-विचार

जमीन का बँटवारा हो और जो बड़े बड़े उद्योग भी मालकियत के हों इसी हम धर्म-व्यवस्था मानते हैं। मैंने शास्त्रों का अध्ययन किया है। इससे समझा है कि आज जो चल रहा है, वह अधर्म है। गीता कहती है कि 'कर्मण्ये निमफले मा कर्मेषु कदाचन'। आपके हाथ से धर्म का आचरण होने पर फल मिलेगा, पर भगवान् को अर्पण करना है। अगर हमने फल-त्याग किया तो उसका अनन्त होगा। धन छोड़ना। कबीर ने अर्थशास्त्र का एक बड़ा सिद्धान्त बड़ी सरल भाषा में समझाया है: 'पानी बाढ़ो नाव में, घर बाढ़े दाम। दोनों हाथ उलीचिये यही सयानो काम।' नौका के पानी आयेगा, तो वह डूब जायगी। पानी तो चाहिए, पर नौका अंदर नहीं, उसके नीचे। वैसे ही घर में संपत्ति बढ़ी तो उसका

सम्पत्ति बहुत चाहिए, पर घर में नहीं, समाज में। जो घर में सम्पत्ति रखता है, वह धर्म-हीन है। इसलिए दोनों हाथों से सम्पत्ति लुटा देना ही भक्त का काम है।

आज राष्ट्रीकरण का विचार ही मान लो

हमें यह समझ लेना चाहिए कि हमारा जीवन सुख का नहीं है। यह हमें समाज की सेवा के लिए मिला है और समाज की सेवा करते-करते मुक्त होना है। हमारे सामने चराचर रूप में जो सारे लोग हैं वे हमारे स्वामी हैं, और हम भक्त हैं—यह भावना जब फैलेगी तभी सब सुखी होंगे। अगर सभी लोग 'अपने पास जो कुछ है वह समाज के लिए है', इस दृष्टि से सब काम करेंगे, तो राष्ट्रीकरण होने पर भी सबको भक्त का देश को काम मिलेगा। कुछ लोग कहते हैं कि आज देश इसके लिए तैयार नहीं है। आज नहीं तो कल होगा। परन्तु आज इस विचार को तो कबूल करो। विचार मानोगे, तो आचार बाद में आयेगा ही।

सोमनाथ
१०-५२

भगवान् अहिंसक क्रान्ति चाहता है ! ४

आज के युग को समत्व की भूख

अवश्य ही आज न केवल हिन्दुस्तान में बल्कि दुनियाभर में काफी विषमता व्याप्त है लेकिन यह जमाना समता का जमाना है। एक-एक जमाने की एक-एक माँग होती है और उसके अनुसार एक-एक गुण को महत्त्व मिलता है। किसी युग में स्वतन्त्रता को महत्त्व मिला, किसी युग में विवेक-बुद्धि को, किसी युग में सेवा भाव को तो किसी युग में आत्म-संशोधन को। इस तरह एक-एक युग की एक-एक माँग होती है और उसके अनुसार एक-एक गुण को सारा समाज चाहने लगता है। आज समत्व की भूख है। इसलिए हम चाहते हैं कि हमारा अधिक से अधिक व्यवहार समत्व पर अधिष्ठित हो। समता का यह विचार कोई नया विचार नहीं, प्राचीन काल से हम उसका महत्त्व मानते

गाये हैं। गीता ने समत्व की महिमा बार बार गायी है। भक्त और ज्ञानी के लक्षणों में समत्व का व्यवहार प्रथित किया है। इस तरह इसका महत्त्व प्राचीन काल से है। किन्तु उस जमाने में उसकी व्यावहारिक आवश्यकता महसूस नहीं होती थी जो आज हो रही है। जमाने की आवश्यकता के अनुसार कोई गुण उठा करता है। आज समत्व उठा क्या है। समत्व की यह भूख एक-दम नहीं जागी दुनिया में और हिन्दुस्तान में भी उसके लिए कम्युनिज्म और वाद-झगड़े चल रहे हैं। यद्यपि हिंसा में दोष होता है फिर भी समत्व की भूख इस जमाने को इतनी थी कि विषमता मिटाने के लिए गलत रास्ते पर जाने के लिए भी दुनिया तैयार हुई।

बच्चों की समान परवरिश हो

समत्व एकदम नहीं, आहिस्ता आहिस्ता आयेगा, हमारे प्रयत्न की पराकाष्ठा पर आयेगा। आज समत्व आने में कुछ देरी हो तो भी कम-से-कम जहाँ तक बच्चों का ताल्लुक है, समता अवश्य हो। बच्चे चाहे शहर के हों या देहात के गरीब के हों या अमीर के किसी भी जाति के हों आखिर बच्चे ही हैं। उनकी परवरिश समता से होनी चाहिए। अगर हम इतना भी करें, तो समता की सीधी राह मिलेगी। हम बड़े लोग विषमता में पले हैं, इसलिए विषमता सहन करने की हमें आदत है। किन्तु हमारे बच्चों को समान तालीम और समान पोषण मिले तो समता का प्रत्यक्ष आरम्भ हो जायगा यह विचार निरंतर मेरे मन में आता है। मैं किसी भी देहात में जाता हूँ और स्त्रियों से पूछता हूँ कि तुम्हारे कितने बच्चे हैं? तो वे जवाब देती हैं, चार या पाँच। इस पर मैं कहता हूँ कि आपके चार या पाँच ही बच्चे नहीं बल्कि गाँव के सारे बच्चे आपके ही हैं। जब मैं यह समझाता हूँ तो वे समझकर फौरन मेरी बात को कबूल करती हैं कि 'आप जो कहते हैं सही है।' हमने एक विवाह के मौके पर कहा था कि हमारे चार या पाँच बच्चे हैं, पर वास्तव में सब हमारे ही हैं। जब इस चीज को हमारा दिल कबूल करता है, तो कम-से-कम बच्चों को समान शिक्षण और समान पोषण मिलना ही चाहिए, जो आज हम नहीं दे रहे हैं—यह दुःख की बात है।

सरकार बाल्टी और जनता कुँआ

स्वराज्य के बाद करने का बड़ा काम यह है कि बच्चों की समान परवरिश हो—ऐसी योजना राज्य, किसानों और ग्रामीणों की तरफ से हो। लेकिन आज यह नहीं हो रहा है, क्योंकि उत्पादन के साधन भूमिहीन किसानों के हाथ में नहीं हैं। इसीलिए हमने भूदान-यज्ञ शुरू किया है। उससे बहुत बड़ा काम यह है कि सब बच्चों को समान तालीम और पोषण मिल सकता है। हम गाँव के सब बच्चों को एक खुराक दे सकते हैं। जमीन के आधार पर हम यह सब कर सकते हैं। सबको समान शिक्षण दे सकते हैं। लेकिन आज यह करने की शक्ति हममें नहीं है। जो आज राज्य चला रहे हैं, वे मुश्किल में हैं, इसीलिए उनके पास शक्ति नहीं है—यह कहकर हम चुप बैठेंगे, तो ठीक नहीं होगा। कानून में भी शक्ति होती है। उसके जरिये कुछ सुधार का काम हो सकता है। परन्तु उसकी भी एक मर्यादा होती है। जिस कुँए में ही पानी नहीं है उसमें बाल्टी डालने से बाल्टी में पानी कैसे आयेगा ? जन शक्ति कुँआ है और सरकार बाल्टी। इसीलिए हमने जन-शक्ति की बात की। जन शक्ति बढ़ाना और उसमें तेजस्विता लाना ही मुख्य काम है और मुझे उम्मीद है कि भूदान यज्ञ के जरिये हम जन शक्ति जाग्रत कर सकते हैं। इसका भान अब सबको हो रहा है।

विचार भिन्न हों पर कार्यक्रम एक

सब मानते हैं कि यह जन शक्ति निर्माण करने का एक साधन है। जन शक्ति निर्माण करने के लिए सब पक्षों के भेद मिटने चाहिए। हिन्दुस्तान जैसे बड़े देश में भेद तो होने चाहिए और होंगे ही उनमें लाभ भी होता है। कल अगर हिन्दुस्तान के सब लोगों के दिमाग बिलकुल एक-से बन जायें तो मैं कहूँगा कि यह देश के लिए खतरा है और प्रगति की ठेकरी हो गयी है। इसलिए भेद हैं, लोग विचार करते हैं यह ठीक ही है। किन्तु भेद के साथ ऐक्य भी है। भिन्न-भिन्न विचारों में जो समान अंश हो उसका कार्यक्रम बनना चाहिए। देश में खूब विचार मंथन होना चाहिए। अपनी अपनी आइडियालाजी (विचार धारा) का अध्ययन होना चाहिए। विचारों का संघर्ष भी होना चाहिए। लेकिन जहाँ तक

आचरण का सवाल है। भिन्न भिन्न विचारों में जो समान अंश रहेगा उसीका कार्यक्रम बनाकर तदनुसार आचरण होना चाहिए। अगर ऐसा एक भी समान अंश न हो, तो भी मैं कहूँगा कि देश खतरे में है। विचारों में एक भी समान अंश न होना और सबके दिमाग एक से हो जाना—दोनों में खतरा है। खुशी की बात है कि अपना देश इस तरह के खतरे में नहीं है। यहाँ भिन्न भिन्न विचारों में कुछ समान अंश है। इसलिए उसीका कार्यक्रम बनाकर हमें सारी ताकतें उसमें लगानी चाहिए। कार्यक्रम तो समान अंश का ही होना चाहिए। विचारों में जहाँ विरोध है, उस पर चर्चा—बहस चलती रहेगी।

हिन्दुस्तान जैसे एक बड़े देश के लिए बलवान् होना आसान है। यहाँ की जन-संख्या, विस्तार तथा उत्पादन की शक्ति इतनी महान् है और यहाँ की संस्कृति ऐसी है कि इस देश के लिए कमजोर होना कठिन है और बलवान् होना आसान। फिर भी हिन्दुस्तान इसलिए कमजोर रहा और आज भी है कि यहाँ भिन्न-भिन्न शक्तियाँ टकराती हैं। इसी कारण शक्तियों का क्षय होता है, जोड़ नहीं। एक के पास दस पौण्ड और दूसरे के पास आठ पौण्ड ताकत हो, तो 'दस धन आठ बराबर अठारह' शक्ति का लाभ देश को मिलने के बजाय 'दस ऋण आठ बराबर दो' शक्ति का ही देश को लाभ मिलता है। आज भी देश में शक्ति कम नहीं और पहले भी कम नहीं थी। किन्तु शक्तियाँ एक-दूसरे से टकराती हैं, इसीलिए यहाँ मुसलमान आये और अंग्रेज आये। यहाँ अनेक पंथ थे। वे रहें, परन्तु आचरण एक-सा करने की शक्ति हम खो बैठे थे। एक-दूसरे के खिलाफ आचरण करते थे। अगर आज भी वैसे ही मतभेद चलें तो आजादी खतरे में है।

आज दुनिया में वे ही देश टिक सकते हैं, जहाँ की जनता एकत्रित हो और जो एकरस बनेंगे। विज्ञान के इस युग में हम दुनिया से परे रह नहीं सकते। हम अपने देश में चाहे जैसा व्यवहार नहीं कर सकते। देशों के बीच दीवारें खड़ी नहीं हो सकतीं। विचार इधर से उधर और उधर से इधर जाने ही वाले हैं। बाहर के उत्तम और गलत, दोनों विचार यहाँ आयेंगे और यहाँ के उत्तम और गलत दोनों विचार बाहर जायेंगे, क्योंकि यह विज्ञान का युग है।

अपना देश निराश है, पर अब हम समान कार्यक्रम उठा लेंगे, तभी शक्तिशाली बनेंगे। हमारे सामने एक ऐसा कार्यक्रम आया है जिससे जनता में शक्ति निर्माण हो सकती है इसका मान आज सबको हो रहा है। इसलिए आप अपनी अपनी आर्थविधायकता अपने-अपने दिमाग में रखें। उसे खतम करें यह तो मैं नहीं कहता परन्तु एक साथ काम करें। आपके सामने एक सर्वोत्तम सर्वांगीण क्रान्ति आ रही है, जिसमें साधन और साध्य, दोनों दृष्टियों से शान्ति होगी।

भगवान् यही चाहता है

आज सुबह एक भाई ने मुझसे पूछा कि 'आपकी क्रान्ति सफल नहीं हुई, तो आप क्या करेंगे ? ऐसे विचार मैं नहीं करता। मैं परमेश्वर पर श्रद्धा रखकर काम करता हूँ। मैं मानता हूँ कि यह उसीका काम है। भूदान-यज्ञ इतना बड़ा और इतना कठिन काम है कि अपनी शक्ति से इसे उठाने की मुझमें हिम्मत नहीं हो सकती। जिस दिन इस काम का आरम्भ हुआ था जब हरिजनों ने मुझसे जमीन माँगी और उन्हें जमीन मिली उस रात मैंने सोचा कि क्या इस तरह मैं सब गरीबों को जमीन दे सकता हूँ ? मेरी हिम्मत नहीं होती थी क्योंकि इतिहास में ऐसी बात नहीं बनी थी। आज तक मन्दिर और मसजिदों के लिए थोड़ी सी जमीन माँगी गयी और मिली लेकिन गरीबों के लिए जमीन माँगना विचित्र बात थी। मुझमें वह शक्ति नहीं थी। फिर भी मुझे अन्दर से शक्ति मिली। परमेश्वर ने कहा 'डरो मत। जमीन मागो।' तब मुझे लगा कि जब उसने मुझे माँगने की प्रेरणा दी है, तो वह दूसरों को देने की भी प्रेरणा देगा। परमेश्वर अधूरा या एकतर्फी काम नहीं कर सकता। जब उसने बच्चा पैदा किया तो माता के स्तन में बच्चे के लिए दूध भी पैदा कर दिया। ऐसी श्रद्धा और विश्वास से मैंने काम शुरू किया। जब मुझे करीब २ हजार एकड़ जमीन मिली तो मैंने कहा कि मेरी माँग पाँच करोड़ एकड़ की है। मैंने अपनी शक्ति पर यह काम नहीं शुरू किया था बल्कि परमेश्वर की शक्ति पर किया था। इसलिए यह विचार ही नहीं करता कि यह काम सफल नहीं होगा तो क्या करना है !

लेकिन जब एक भाई ने पूछ ही दिया तो मैंने कहा : अगर यह शान्ति असफल रही तो हिंसक शान्ति होगी। और अगर परमेश्वर चाहता है, तो मैं आपको यह भी विश्वास नहीं दिला सकता कि इस दिन मेरे हाथ में भी तलवार नहीं रहेगी। जब भारत-युद्ध का संहार हो रहा था तो स्वयं भगवान् हलधर लेकर खड़े थे। इसलिए सब कुछ भगवान् की इच्छा पर निर्भर है। लेकिन जब कि भगवान् मुझे घुमा रहा है, तब यह स्पष्ट है कि भगवान् के मन में यही बात है कि हिंसक शान्ति नहीं होगी और अहिंसक शान्ति होगी। अगर भगवान् सारी सृष्टि का संहार करना चाहता है, तो उस समय किसकी अक्ल कायम रहेगी? फिर उसकी इच्छा के सामने मेरी अक्ल कैसे कायम रह सकती है? इसलिए वह जो चाहेगा वही होगा। पर आज भगवान् की इच्छा अत्यन्त स्पष्ट और प्रकट है। सूर्य के उदय होने पर भी क्या यह कहना पड़ता है कि सूर्य प्रकट हुआ? जब कि आज देश में सब जगह भूदान के गीत गा रहा है, हजारों की तादाद में गरीब दान दे रहे हैं तब परमेश्वर की इच्छा है कि दुनिया में अहिंसक आर्थिक क्रान्ति हो। यहाँ पर अहिंसक राजनीय क्रान्ति हुई। अपनी आजादी की लड़ाई हिन्दुस्तान ने जिस तरह लड़ी, वह एक अद्भुत पद्धति थी। दुनिया में आजादी की लड़ाइयाँ बहुत-सी हुई हैं, पर इतिहास में लिखा जायगा कि हिन्दुस्तान की लड़ाई उन सबसे भिन्न थी। वैसे ही इस देश का भाग्य है कि हम आर्थिक समता भी अहिंसक तरीके से स्थापित करें। भगवान् की यही इच्छा है।

बिहार की विशिष्ट संस्कृति

इसका आरम्भ बिहार से हो यही भगवान् चाहता है। बुद्ध भगवान् की वाणी आज सारी दुनिया में सुनायी दे रही है, किन्तु उसका आरम्भ बिहार में ही हुआ था। गांधीजी के सत्याग्रह का आरम्भ भी बिहार में ही हुआ। यहाँ की जनता की मनोरचना में एक ऐसी श्रद्धा है, जिसके कारण यह हुआ। मुझे भी यहाँ आते ही ऐसी प्रेरणा हुई कि हम यहाँ का मसला हल करें। यहाँ एक विशिष्ट प्रकार की संस्कृति है ऐसा मेरा विश्वास था और दिन-ब-दिन उसका अनुभव भी हो रहा है। इसलिए यह काम यहाँ नहीं होगा तो कहाँ होगा

ऐसी धारा मन में मत उठाओ। ऐसा कहो कि हम इस काम को सफल करेंगे ही। "आत्मा सत्यकामः सत्यसंकल्पः"—आत्मा में जो सत्य इच्छा आती है, उसकी सिद्धि करने की शक्ति उसमें होती है। इसलिए अगर हम इस तरह का संकल्प करते हैं तो उसे सफल करके ही रहेंगे।

गिरिडीह (हजारीबाग)
२ २ ५२

पुण्यमय साधनों से सामाजिक क्रान्ति : ५

भारत धर्म भूमि है। अति प्राचीन काल से आज तक यहाँ धर्म भावना बराबर काम करती आ रही है। बीच-बीच में कभी-कभी प्रकाश और कभी-कभी अन्धकार हो जाता था। जैसे दिन और रात एक के बाद एक आते हैं, वैसे ही भारत की जिंदगी में भी कभी-कभी धर्म भावना ऊपर उठती है, तो कभी-कभी मंद पड़ती है। जब जब धर्म भावना मंद पड़ती है तब धर्म को चालना देने के लिए भगवान् समाज को एक नया विचार देता है—एक नया शब्द देता है। उस शब्द और उस विचार के आधार पर फिर से धर्म का उत्थान होता है।

इस युग का धर्म-मंत्र

हमारे लिए आज ऐसा ही एक शब्द 'सर्वोदय' मिला है। इसका मतलब है—'सबका भला'। पश्चिम के लोग कहते हैं कि अधिक-से-अधिक संख्या का भला हो, बहु-संख्या का भला हो। बहु-संख्या के भले के लिए अल्प-संख्या की आहुति देनी पड़े तो कोई परवाह नहीं, ऐसा वे मानते हैं। लेकिन सर्वोदय में सारे भाई भाई हैं, सब समान हैं, ऊँच-नीच कोई नहीं है। सबको समान शिक्षा की [illegible], सबको आगे बढ़ने का समान मौका मिलेगा, सबको समान तालीम मिलेगी, जिससे वे अपनी ताकत से दुनिया की सेवा में लग जायें। इसीका नाम 'सर्वोदय' है। सर्वोदय यह नहीं मानता कि एक के भले के लिए दूसरे का बुरा हो। लोग कहते हैं कि यहाँ एक मनुष्य मानता है कि धन संचय करने में उसका भला है और इसीलिए वह दूसरों को तकलीफ देकर संपत्ति इकट्ठा करने में अपना भला मानता

है तो दूसरे के हित में उसके हित का विरोध होता है। लेकिन मेरा कहना है कि जो सच्चे हित होते हैं, वे किसीके विरुद्ध नहीं होते। अगर मेरा शरीर सुधरे तो आपका कुछ नहीं बिगड़ता बल्कि लाभ ही होता है। वैसे ही आपका आरोग्य सुधरे तो मेरा कुछ नहीं बिगड़ता बल्कि लाभ ही होता है। अगर पुण्यवान् हैं तो मेरा कुछ नहीं बिगड़ता बल्कि आपके पुण्य का मुझे स्पर्श होता है। मैं पुण्यवान् हूँ तो आपका कुछ नहीं बिगड़ता बल्कि मेरे पुण्य से आपकी शुद्धि और वृद्धि होती है। इसलिए किसीका भी हित किसी दूसरे के हित के विरुद्ध नहीं है।

किन्तु लोग अज्ञानवश जड़ता से मान लेते हैं कि अपना लाभ सत्ता व सम्पत्ति हासिल करने में है। इसलिए लोगों को समझाना होगा कि उसमें आपका लाभ नहीं है। किसीका शरीर बहुत बढ़ गया तो उसका शरीर घटाने में ही उसका लाभ होता है। इसी प्रकार किसी भी तरीके से धन प्राप्त करने में अपना हित है ऐसा समझनेवाला अज्ञानी है। उसे यह भी समझना होगा कि तुम्हारा हित सम्पत्ति बाँटने में है। हम जब आपको दूसरों की सेवा करने के लिए कहते हैं, तो दूसरे भी हमारे साथ हमदर्दी और प्रेम रखेंगे, हमारी सेवा करेंगे यह दुनिया का अनुभव है। प्रेम बोओगे, तो प्रेम पाओगे। नफरत बोओगे, तो नफरत पाओगे। आम की गुठली बोओगे तो आम का फल पाओगे, और बबूल का बीज बोओगे तो बबूल पाओगे। यह नहीं हो सकता कि बबूल बोओ और आम पाओ। यह सबने अनुभव किया है। साधु-संतों का भी यही अनुभव है। यह समझना मुश्किल नहीं है कि अगर हम दुनिया का प्रेम संपादन करते हैं, तो उसमें हमारी भलाई है। इसलिए सर्वोदय में किसी एक के हित का दूसरे के हित से विरोध नहीं है।

अच्छाई की छूत

बुराई से ज्यादा अच्छाई की छूत फैलती है क्योंकि आदमी के अंदर बुराई है ही नहीं। बुराई के दबाव में आकर किसीने बुराई की तो भी बाद में वह पश्चात्ताप महसूस करता है। बाद में उसे ऐसा लगता है कि मैंने गलती की।

माने बुराई की भी छूत लगती तो है परन्तु वह गहरी नहीं जाती, आत्मा के अन्दर नहीं जाती। लेकिन भलाई की छूत गहरी पैठती है अन्दर जाती है क्योंकि आत्मा सत्य-स्वरूप है, मंगल है, प्रेममय है, ज्ञानमय है, परम शुद्ध है। आत्मा को अच्छाई एकदम खींचती है।

गरीबों के दान का प्रभाव

सत्याग्रह का तत्त्व माननेवाले का विश्वास है कि अगर हम सत्य का आग्रह और सत्य का आचरण करते हैं, तो उसका असर हुए बगैर नहीं रहता। आमतौर पर सत्याग्रह का प्रयोग अन्याय के विरुद्ध प्रतीकार करने में करते थे। पर सत्याग्रह की प्रक्रिया इतनी ही केवल विरोधात्मक नहीं है। हम अपने जीवन में सत्य पर ही भरोसा रखें, परमेश्वर पर भरोसा रखें और अन्त में सत्य की ही विजय होनेवाली है ऐसा विश्वास रखकर काम करें, तो उसीका नाम है सत्याग्रह। भूदान में जिन हजारों गरीबों ने दान दिया, वह दान एक सत्याग्रह ही तो व्यापक है। उसका असर श्रीमानों पर हुआ। उनमें आज जो कुछ दीखते हैं वे सब हमारा काम उठानेवाले हैं। वेदों में ऋषि प्रार्थना करते हैं कि 'जो कृपण है उसका मन तू समृद्ध बना, उसके मन को दान की प्रेरणा दे।' ऋषि की यह प्रार्थना निकम्मी नहीं, काम की है, असरकारक है। आज वह प्रार्थना फल रही है। लोगों के हृदय की गाँठें खुल रही हैं। परिस्थिति उन्हें प्रेरणा दे रही है। परिस्थिति का मतलब यह कि गरीब उन्हें प्रेरणा दे रहे हैं। उन गरीबों के दानों का पुण्य असर किये बगैर नहीं रह सकता। इसलिए जब कोई हमें सुनाता है कि श्रीमान् लोग नहीं दे रहे हैं और इसलिए वे पिछड़े भी हैं, तो मैं उनसे कहता हूँ कि पिछड़ा मत, विश्वास रखो कि जो आज नहीं देता वह इसलिए नहीं देता कि कम समझता है। वातावरण इस काम के अनुकूल हो रहा है। हिन्दुस्तान में एक पुण्य की, धर्म की भावना फैल रही है। पुण्य का मतलब यह नहीं कि अन्य, जन्म का फल दूसरी दुनिया में स्वर्ग में मिलेगा। मैं जब पुण्य की बात करता हूँ तो परलोक में पहुँचानेवाले पुण्य की नहीं बल्कि इस दुनिया में राज लानेवाले पुण्य की बात करता हूँ।

गरीब मेरी जबान से बोल रहे हैं

आज हिन्दुस्तान में एक धर्म-विचार फैल रहा है। तेलंगाना में २॥ साल पहले जब यह काम शुरू हुआ था, तब कौन इसके बारे में जानता था! किन्तु आज देश भर में इस आन्दोलन के लिए सब लोगों के मन में आशा बन गयी है। गरीब कहते हैं कि 'भूखी जनता अब न सहेगी, धन और धरती बँट के रहेगी।' 'अब न सहेगी' का मतलब यह नहीं कि हाथ में तलवार लेकर कत्ल करने के लिए आयगी। इसका अर्थ यही है कि भूखी जनता अब पहले की जैसी दीन और लाचार बनकर नहीं रहेगी। अब वे बेजबान नहीं रहेगी, बल्कि बोल हिम्मत और प्रेम से कहेगी कि हमें भी आपके जैसा खाने का हक है। हम मेहनत करके खाना चाहते हैं। मुफ्त-खैराती रसोई नहीं चाहते। हमें मिट्टी दिलाओ। हम मिट्टी की कीमत जानते हैं। ऐसी पुकार वे करेंगे और अत्यन्त शान्ति से, प्रेम से मन में किसीके भी प्रति द्वेष भावना रखे बगैर पुकार करेंगे। उनकी पुकार मेरे शब्दों द्वारा प्रकट होती है। वे मेरी जबान से बोल रहे हैं।

लोग पूछते हैं कि वे खुद क्यों नहीं कहते? मैं कहता हूँ कि मैं कह रहा हूँ इसीलिए वे नहीं कहते। मैं उनकी तरफ से भीख नहीं, बल्कि हक माँगता हूँ। मैंने तो साल पहले ही कह दिया था कि मैं भिक्षा माँगने नहीं, बल्कि दीक्षा देने आया हूँ। ऐसी ही दीक्षा इस जिले में बुद्ध भगवान् ने सबसे पहले दी थी। यहीं से उन्होंने धर्म-चक्र-प्रवर्तन किया था, जिससे उनका धर्म सारी दुनिया में फैल गया। बुद्ध भगवान् ने जो बीज यहाँ की जमीन में बोया था, उस पर अब तक मिट्टी पड़ी थी। वैसे आज की मिट्टी पड़ना जरूरी भी था। लेकिन आज उसमें अंकुर फूट रहा है। लोग मुझसे पूछते हैं कि आप पैदल क्यों घूमते हैं? मैं जवाब देता हूँ कि बुद्ध भगवान् क्या मोटर से घूमते थे या हवाई जहाज पर चढ़े थे? पर उनकी आवाज त्रिभुवन में फैल गयी। क्या बुद्ध भगवान् चीन और जापान गये थे? विचार का प्रचार तो आत्मा से होता है, मोटर से या हवाई जहाज से नहीं। जहाँ आत्मा काम करती है, वहाँ उसका प्रचार सारी दुनिया में होता है। अगर मुझमें या आपमें इतनी शुद्धि आ जाय तो बैठे-बैठे ही हम दुनिया को

बना सकेंगे। लेकिन आज उतनी शक्ति नहीं आयी है इसीलिए हम पैदल घूमकर लोगों के हृदय में पहुँचना चाहते हैं।

सहज संगठन

लोग पूछते हैं "आप कोई संस्था या संगठन क्यों नहीं खड़ा करते?" पर क्या यह काम संगठन से होगा? जो धर्म-भावना है, वह क्या गाँठें बाँध-बाँध कर फैलती है? वह दीपक के समान दूसरे दीपक को प्रकाशित करती जाती है। मेरा जितना विश्वास राम का जप करने में है उतना संगठन में नहीं। यह नहीं कि संगठन की जरूरत ही नहीं पड़ेगी परन्तु मनुष्य शुभ विचार करता और रचना करता जाय तो उसके साथ जरूरी संगठन ऐसे ही पैदा हो जाता है। अगर इस काम के लिए संगठन जरूरी है, तो पैदा होगा ही और जरूरी नहीं तो नहीं पैदा होगा। अगर मैं संगठन बनाता तो मेरी एक कांग्रेस कमेटी बनती और मैं उसका अध्यक्ष बनता पाने में संकुचित बन जाता। किन्तु मेरा संगठन नहीं है, इसीलिए मैं व्यापक हूँ, दुनिया का बना हूँ। दुनिया में और अपने में मैं किसी भी तरह का भेद ही नहीं मानता। जो अपने अलग अलग घर और अलग-अलग संस्था बनाकर बैठे हैं, उनसे मैं कहता हूँ कि आपके घर में और संस्था में मेरी इच्छा का प्रवेश होने दो तो आपका घर शुद्ध होगा।

धर्म-कार्य का अवसर

अपने देश में आज एक धर्म-कार्य करने का मौका आया है। जिन्दगी में लेने के मौके कितने आते हैं, परन्तु देने का मौका बरसों में नहीं आता। हम कहते हैं पर आज उससे अधिक भाग्य का देने का मौका आया है। भगवान् ने मनुष्य को हाथ दिये हैं, जानवर को नहीं। "हाथ दिये कर दान रे।" हाथ से हम अच्छे भी काम कर सकते हैं और बुरे भी। किसी जन्म में हम भी चार पाँव के जानवर होंगे। पर भगवान् ने इस जन्म में हमें दो हाथ और दो पाँव दिये हैं ताकि हम हाथ से अच्छा काम कर सकें और पैरों पर खड़े होकर सिर ऊँचा करके आसमान में चिन्तन कर सकें। व्यक्ति के जीवन में देने का मौका आता है पर सारे देश के जीवन में देने का यह मौका आया है। यह हमारा बड़ा भारी भाग्य है। यह एक ऐसा पुण्य का अवसर है जो फिर नहीं मिलेगा।

में यह बात चली कि समाज का आमूल परिवर्तन हिंसा से होता है। खासकर पाश्चात्यों का ऐसा ख़याल है। किन्तु हिंसा से कभी भी क्रान्ति नहीं हो सकती। इससे तो नयी आनेवाली ताकत और ही ज़बर्दस्त साबित होती है। वहाँ साधनों में ही क्रान्ति होती है वहीं सच्ची क्रान्ति होती है। जहाँ वे ही पुराने जंगली पशु-शक्ति के साधन इस्तेमाल किये जाते हैं वहाँ कैसे क्रान्ति होगी? गलत साधनों से सही साध्य कैसे प्राप्त हो सकता है? असत्य से सत्य कैसे प्राप्त हो सकता है? लेकिन इतिहास में लोगों ने हिंसा के प्रयोग किये हैं। एक बार हिंसा कर लेंगे और फिर शान्ति कायम होगी ऐसा लोग समझते हैं, पर शान्ति की स्थापना शान्ति से ही हो सकती है, हिंसा से नहीं। जिन्होंने सोचा हो कि एक दफा हिंसा कर लेंगे, फिर शान्ति और प्रेम का स्थापन होगा तो यही कहना होगा कि उन्होंने अग्नि से ठण्डक निर्माण करना चाहा।

सामाजिक क्रांति होकर रहेगी

गीता में बार बार कहा है कि जो भी समाज शुद्धि का काम करना चाहता हो वह दान-तप से ही करना होगा। इसीलिए भूदान का आरम्भ अभी से नहीं प्राचीन काल से हुआ है। मेरा पूरा विश्वास है कि यह भूमि यज्ञ, दान और तप की भूमि होकर रहेगी। अब बड़े लोगों के चित्त पिघल रहे हैं। हम तो पहले से ही कहते थे कि भगवान् हरएक के हृदय में बसता है। सिर्फ उसकी भक्ति और आराधना कैसे करना यह हम सीखें तो भगवान् की प्रसन्नता अवश्यंभावी है यह मुझे विश्वास है। इसीलिए मुझे कभी भी निराशा नहीं हुई। मुझे ऐसा कभी भी नहीं लगा कि मेरी तपस्या से कम फल मुझे मिल रहा है बल्कि मुझे तो ऐसा लगा कि मुझे ज्यादा फल मिल रहा है। गरीब लोग तो पहले से ही दान देते थे। लेकिन गरीबों की तपस्या मात्र गरीबों तक ही सीमित नहीं रह सकी। वह श्रीमानों को भी छूने लगी है। सारा हृदय एक ही है इसी विश्वास पर मैंने काम शुरू किया था। हृदय अलग-अलग नहीं हैं। एक ही हृदय में एक क्षण में उत्साह होता है तो दूसरे क्षण में निराशा आती है। एक क्षण में ठण्डापन रहता है तो दूसरे क्षण में गर्मी आती है। एक क्षण में शान्ति रहती है तो दूसरे

जग में क्रोध पैदा होता है। इस तरह एक ही हृदय के एक क्षण में अलग-अलग भाव आते हैं; पर अन्तर हृदय एक है, उसका अनुभव आयेगा। हिन्दुस्तान में जिस तरह पुण्य साधनों से राजनीतिक आजादी हासिल हुई है, वैसे ही आर्थिक शक्ति भी पुण्य-साधनों से ही होगी।

जमालपुर (बिहार)
१५-९-५२

पहले दिल जुड़ने दो, फिर जमीन ६

समझने की बात है कि दुनिया की सारी संपत्ति भगवान् की है। उसमें से कुछ तो भगवान् ने पैदा नहीं की, मनुष्य ने पैदा की है, ऐसा हम कह सकते हैं। किन्तु मनुष्य की बुद्धि भी तो भगवान् की ही देन है। इस अर्थ में हम कह सकते हैं कि सब संपत्ति भगवान् ने पैदा की है। फिर भी हम मान लेते हैं कि बुद्धि हमारी है। इसीलिए हम कहते हैं कि कुछ संपत्ति भगवान् ने पैदा की है और कुछ मनुष्य ने। हम जहाँ संपत्ति का विचार करते हैं, वहाँ यह मूलभूत विचार समझ लेना चाहिए कि जो दुनियावी चीज भगवान् ने निर्माण की है, वह सबके लिए है। उस पर सबका अधिकार है। यह विचार यहाँ के लोगों के दिल में पैठ जाता है। इसे समझने के लिए हम कुछ वर्तमान में रशिया से लाये हैं, और न चीन से।

हम जमीन के मालिक नहीं हो सकते

हवा भगवान् की देन है। उस पर चंद लोगों का अधिकार हो, यह हो नहीं सकता। इसी तरह पानी भी सबके लिए है और जमीन भी उसी कोटि में है। मनुष्य भले ही जमीन पर मेहनत करता हो, लेकिन वह दावा नहीं कर सकता कि हमने मिट्टी पैदा की है। मनुष्य एक मुट्ठीभर मिट्टी भी नहीं पैदा कर सकता। हम तो जमीन छोड़कर जानेवाले हैं। कई आते हैं और कई जाते हैं, परन्तु जमीन कायम ही रहती है। हम मिट्टी में से ही पैदा हुए और मिट्टी में ही मिल जाते हैं। फिर भी हम कहें कि हम जमीन के मालिक हैं, तो यह विचार

मुझे ठीक नहीं जँचता। पुराने जमाने में जब जमीन ज्यादा थी तब वह किसके हाथ में है, इसकी कोई परवाह नहीं थी। किन्तु आज जमीन कम है और आबादी ज्यादा है। इसलिए चंद लोगों के हाथ जमीन हो जो उस पर खुदकाश्त न कर पाते हों और जो काश्त करते हों उनके हाथ में जमीन न हो—इस तरह की एक की परिभाषा मानना गलत है। हवा और पानी मुक्त हैं, वैसे जमीन भी मुक्त है। हम जमीन के मालिक कभी नहीं हो सकते।

हम भूमिपति नहीं हो सकते भूमि के पुत्र ही हो सकते हैं। वेदों ने कहा है: 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'। हम भूमि के पुत्र ही होने का दावा कर सकते हैं और वैसा ही दावा दूसरे असंख्य लोग भी कर सकते हैं। जो काश्त करना चाहता है वह भूमि-पुत्र है। यह बुनियादी उसूल मान लो कि जमीन सबकी है सबके लिए है और सेवा के लिए है। आज जो हमारे पास जमीन है, उसके हम नाममात्र के मालिक हैं, सेवा के लिए। उस पर अधिकार तो परमेश्वर का ही है। वह अधिकार परमेश्वर की ओर से गाँव को मिल जाता है और जमीन गाँव की हो जाती है।

हम छठे हिस्से की ही माँग तो करते हैं। जिनके पास बहुत अधिक जमीन है, वे अपने लिए थोड़ी-सा रखकर बाकी सारी-की सारी जमीन दान में दे दें। मध्यम श्रेणीवालों से मैं छठा हिस्सा माँगता हूँ। और जो बिलकुल ही गरीब हों वे जो भी दें उसे मैं सुदामा के तंदुल समझूँगा। इससे उनकी सहानुभूति और नैतिक शक्ति प्रकट होती है। अक्सर कम्युनिस्ट भाई यह आक्षेप उठाते हैं कि मैं गरीब से क्यों लेते हैं? तो मैं कहता हूँ कि यह एक अहिंसा की प्रक्रिया है। जब तक आप अहिंसा को न समझेंगे, तब तक यह भी आपकी समझ में नहीं आयेगा। हम तो श्रीमानों से ही लेना चाहते हैं। परन्तु उन्हें देने के लिए प्रवृत्त करने के निमित्त मैं यह दबाव चाहते हैं। भले ही हम हिंसा न करें, पर अहिंसक या नैतिक दबाव को भी नहीं मानेंगे, तो निष्क्रिय बनेंगे। ऐसी अहिंसा से कुछ काम नहीं होगा।

यह बदला नहीं, कर्मविपाक है

यह तो एक धार्मिक काम है। शास्त्र कहते हैं कि 'श्रद्धया देयम्, अश्रद्धया

अदेयम्, श्रिया देयम् भिया देयम्'—और शर्म से भी देना चाहे, तो और हर्ज नहीं। एक बच्चा नंगा घूमता है क्योंकि उसमें उसे शर्म नहीं लगती। किन्तु जब उसे चीज का भान होता है तब भान होता और शर्म लगती है। जिसने शर्म या लोक-लज्जा से दान दिया तो कहना पड़ेगा कि वह भी विचार समझा है, इसीलिए देता है। यह है 'ह्रिया देयम्'। वैसे ही हम कहते हैं कि भय से भी दे दो। इसका मतलब यह नहीं कि नहीं दोगे तो हम कत्ल कर देंगे। इस तरह से भय से देना हम नहीं चाहते। लेकिन अगर हम किसीसे कहें कि तेरे बिस्तर पर साँप चढ़ा है इसलिए बिस्तर छोड़ दे, तो हमने उसे जो वास्तव में भय है, वही दिखाया है—सच्चा डर ही दिखाया है। मनुष्य को जिस चीज से डरना चाहिए उस चीज से डरना ही अच्छा है। और जिस चीज से नहीं डरना चाहिए उस चीज से न डरना ही अच्छा है। भय भी अच्छी बात है। कोई भय से ही क्यों न सही पर बुरा काम नहीं करता तो ठीक ही है।

पूछा जाता है कि आप यह क्यों कहते हैं कि झूठ बोलोगे, तो नुकसान होगा, हिंसा करोगे तो नुकसान होगा, दुनिया में विनाश होगा। लेकिन यह डर नहीं विचार है। 'बुरा काम करने से बुरा फल मिलता है, इसलिए बुरा काम मत करो' यह हम समझाते हैं, तो यह डर या भय भी धार्मिक है। समाज को समझना ही चाहिए कि जमाने को न पहचानते हुए उदार दिल से दान न दोगे, तो खतरा है। इसमें हम कोई डराकर नहीं कहते, बल्कि विचार ही समझाते हैं। 'बुराई का फल बुरा होता है' यह कहना डर नहीं, यह तो कर्मविपाक या कर्मपरिणाम है। गरीबों ने हमें भर भरकर दिया है। परमेश्वर जैसा न्याय करता है और दुनिया को जैसी तकलीफ देता है। उसमें उसे क्या आनन्द आता है वही जाने। उसने बड़ों के लिए छोटे बनाये हैं और छोटों के लिए बड़े। इससे दोनों को तकलीफ होती है। छोटे लोग ताकत से अधिक दान देते हैं, तो उन्हें तकलीफ उठानी पड़ती है और बड़े नहीं देते, तो भी उन्हें तकलीफ उठानी पड़ती है। इसमें भगवान् को क्या मजा आता है!

पहले दिल खुलने दो फिर जमीन

कुछ लोग ऐसा भी आक्षेप करते हैं कि आप छोटे छोटे का दान लेते हैं

इससे जमीन के टुकड़े टुकड़े हो जायेंगे। लेकिन आज जो दिलों के टुकड़े हुए हैं, क्या वे आपको अच्छे लगते हैं? आज दिल टूट रहे हैं। अगर दिल जुड़ जायँ तो जमीन तो आसानी से जुड़ सकती है। एक बार जमीन गरीब को देने पर फिर उसे समझाना कठिन नहीं कि 'सहकार करो'। लेकिन पहले से ही सहकार की शर्त लगायी जायगी तो उस पर अंकुश रहेगा और फिर एक मैनेजर की जरूरत होगी। इसलिए आज तो मैं उसी गरीब को जमीन का पूरा अधिकार देना चाहता हूँ यह समझाकर कि जमीन का मालिक तो परमेश्वर है। यह तो अक्ल की बात है, कि पहले क्या जोड़ना चाहिए? जहाँ दिल टूटे हैं, क्या वहाँ जमीन जुड़ सकती है? एक भाई ने मुझसे कहा कि 'को-ऑपरेशन (सहकारिता) करने के लिए लोग तैयार होंगे, तभी मैं जमीन दूँगा।' मैंने कहा कि 'तुम लोगों को समझाओ।' पर उसे अनुभव आया कि लोग कहते थे—'हम को-ऑपरेशन में नहीं आयेंगे।' आज दूसरे भाई भी सहकारी काम हम न करें और उन्हीं लोगों पर यह शर्त लगायें कि को-ऑपरेशन करो तो हमें उन पर अंकुश रखने की योजना करनी होगी। वे तो आज ही डरे हैं। वह भाई मेरी बात समझ गया कि दिल को पहले जोड़ना चाहिए।

छोटे टुकड़े में अधिक पैदा होता है या बड़े टुकड़े में ऐसी बहस क्यों करते हैं? यह तो अर्थशास्त्र की एक मामूली बात है कि छोटे या बड़े जिस टुकड़े में अधिक पैदा होता हो वैसे टुकड़े बनायेंगे। दिल जुड़ने पर अधिक पैदा होता है। छोटे या बड़े टुकड़े से नहीं मेहनत से अधिक पैदा होता है यह हमारा अपना अनुभव है। दुनियाभर में भी छोटे टुकड़ों से अधिक पैदा होने का सब जगह अनुभव आया है। मजदूर को जब हम मालिक बना देते हैं, तो वह प्रेम से काश्त करेगा और फसल बढ़ेगी ही। अक्सर जहाँ अच्छी फसल दीखती है वहाँ पूछने पर पता चलता है कि मालिक गरीब है और जहाँ खराब फसल दीखती है वहाँ पूछने पर पता चलता है कि मालिक श्रीमान् है। 'ऐब्सेन्टी लैंड लार्ड' की बात सभी जानते हैं। इसलिए अर्थशास्त्र के ये छोटे-छोटे सवाल खड़े मत करो। हमारा काम बुनियादी क्रांति का काम है जिससे समाज के मूल्यों में पूरा परिवर्तन होगा।

दोतरफा आक्षेप

कुछ लोग कहते हैं कि हमारा काम खतरनाक है। एक बार जमीन की भूख बढ़ गयी तो हिंसा के लिए, कम्युनिस्टों के लिए रास्ता खुल जायगा। लेकिन ऐसे खतरे से मैं डरता नहीं। 'न संशयम् अनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति। संशयम् पुनरारुह्य यदि जीवति पश्यति॥' खतरा उठाकर काम हो जायेंगे तो बहुत पायेंगे। खतरा है इसलिए मैं दूर नहीं भागूँगा। जब कभी कोई यह कहता है कि चूल्हा जलाने से घर को आग लगने का खतरा है, इसलिए चूल्हा ही मत सुलगाओ! चूल्हा सुलगाये बिना रसोई तो हो ही नहीं सकती। भोजन के लिए चूल्हा तो सुलगाना ही पड़ेगा। मैं बस इस बात का ख्याल रखूँगा कि उससे घर न जले। मुझ पर दूसरा आक्षेप यह लगाया जाता है कि विनोबा मालिकों को बचा रहा है। और पुराना ढाँचा कायम करने का और क्रांति को रोकने का काम कर रहा है। इस तरह का दुतरफा दोतरफा आक्षेप होता है, तो मैं समझता हूँ कि मैं सही-सलामत बीच में हूँ और मेरा काम बिलकुल ठीक हो रहा है।

बघरा
१९-७-'५२

माला और गुलदस्ते की संस्कृति : ७ :

[गाँववालों ने दी हुई फूलों की माला की ओर देखते हुए]

यह हिन्दुस्तान की खास सभ्यता है कि फूल अलग-अलग हैं, पर सबको एक माला में पिरोया गया है। सब फूलों की अपनी-अपनी विशेषता है, पर सबको एक सूत्र में गूँथा गया है। दूसरे देशों की सभ्यता में गुच्छ (गुलदस्ता) बनाते हैं, उसमें फूलों को आजादी नहीं रहती। इसी तरह उस समाज में संघटन की जो परम्परा चली आयी है उसमें भी व्यक्ति की कोई कीमत नहीं है। लेकिन हिन्दुस्तान की सभ्यता में व्यक्ति की कीमत है, फिर भी सबको एक सूत्र में पिरोया गया है। हम गणित की समता नहीं आध्यात्मिक समता चाहते हैं। हम चाहते हैं कि सब सब पर समान प्रेम करें। भगवान् ने अनन्त भेद पैदा किये हैं। सा रे ग म प ध नी' ये सात स्वर होते हैं तभी संगीत बनता है। स स स या एक ही स्वर बजे तो संगीत नहीं बनता। किन्तु जिस तरह संगीत के लिए सात स्वर चाहिए, उसी तरह वे एक-दूसरे के विरोध में भी नहीं जाने चाहिए—संवादी होने चाहिए, तभी संगीत होता है। हम चाहते हैं कि सारे समाज को एक सूत्र में पिरोया जाय और फिर भी हरएक व्यक्ति को पूरी आजादी मिले।

आज तो कुछ बच्चों को तालीम बहुत मिलती है और कुछ को बिलकुल नहीं। ऐसा भी कहा जाता है कि कुछ जातियों को तालीम नहीं मिलनी चाहिए। पर यह ठीक नहीं। सबको समान मौका और सबको समान तालीम मिलनी चाहिए। फिर जिसमें योग्यता हो वह अधिक उन्नति करेगा। किन्तु आज हम समान अवसर देते ही नहीं और ऊपर से कहते हैं कि फलानी जाति में गुण है ही नहीं। हरएक को गुण प्रकट करने का मौका मिलना चाहिए। तभी समाज को उनकी शक्ति का लाभ मिलेगा जो आज नहीं मिल रहा है। एक मनुष्य सबको भेड़ों के समान हाथ में रखे एक मनुष्य सबका इन्तजाम करे—यह खतरनाक रचना है। ऐसी रचना अब नहीं चलेगी।

जब सारा समाज आगे बढ़ रहा हो, तब हम भेदों का समन्वय करके समष्टि का एक ही व्यक्ति के हाथ में सारा इन्तजाम सौंपनेवाली रचना करें, तो ऐसा समाज टिक नहीं सकता। अंग्रेज जब यहाँ आये, तब बड़े-बड़े बहादुर नहीं थे। इतने दूर से वे छोटी-छोटी टोलियों में ही बैठकर आये। किन्तु उन लोगों ने सारे हिन्दुस्तान पर अधिकार कर लिया, क्योंकि यहाँ के आम लोगों का इन्तजाम कुछ लोग करते थे, आम लोगों को इन्तजाम करना मालूम ही न था। इसीलिए उन चन्द इन्तजाम करनेवालों को जब अंग्रेजों ने हराया, तो देश हार गया। अंग्रेज यहाँ की आम जनता से कभी लड़े ही नहीं। वे सिर्फ राजा-महाराजाओं और नवाबों के साथ लड़े। इस तरह अगर अब भी आम लोगों को आगे आने का मौका न दें, तो हमारी आजादी टिकेगी, इसकी गैरंटी हम नहीं दे सकते। इसलिए हरएक व्यक्ति को विकास का पूरा मौका देना चाहिए।

हमें सबको खाना-पीना मिले, इसकी उतनी फिक्र नहीं, जितनी सबको विकास का पूरा मौका मिले, इसकी है। खाना-पीना तो चाहिए ही, पर उससे भी अधिक महत्त्व हम विकास को देते हैं। हम चाहते हैं कि देश को मजदूरों की अक्ल का पूरा लाभ मिले। कुछ लोग कहते हैं कि उन्हें जमीन देने से पैदावार घटेगी। मैं कहता हूँ कि उससे कम नहीं, उलटे पैदावार बढ़ती है, क्योंकि उसमें उनकी अक्ल का उपयोग होता है। हम हरएक को इसीलिए जमीन देना चाहते हैं कि उसका पूर्ण विकास हो और उसकी शक्ति का देश को उपयोग हो।

पर्ती कस्वाँ
२१-५-५१

जब कोई देश आजादी हासिल करता है, तो उसके पास अमली काम की शुरुआत होती है। जब तक आजादी हासिल नहीं होती तब तक देश के लिए कोई धर्म ही नहीं होता। जो स्वतंत्र है, उसीके लिए धर्म होता है। हमारे शास्त्रकार भी 'यह करो और यह मत करो' यह आज्ञा उसीको देते हैं जो उस आज्ञा का पालन करने के लिए स्वतन्त्र होता है। जो गुलाम होता है—जो अपनी इच्छा से न अच्छा कर सकता है और न बुरा, ऐसे पराधीन मनुष्य के लिए शास्त्रकार न तो कोई आज्ञा करते हैं और न कोई धर्म ही बताते हैं। जब तक देश स्वतन्त्र नहीं था तब तक धर्म का आचरण नहीं हो सकता था। इसलिए पहला कदम देश को आजाद बनाना ही था। जब तक आजादी प्राप्त नहीं हुई तब तक उसे प्राप्त करने के सिवा दूसरा कोई काम नहीं हो सकता था। किन्तु जब आजादी प्राप्त हो गयी तब समाज-सेवा का धर्म आरम्भ हुआ। गरीबों की भूख मिटाने का धर्म आरम्भ हुआ। अब गाँव की सेवा करनी है, गाँव की संपत्ति बढ़ानी है, गाँव में भाईचारा, न्याय और समता लानी है, गाँव सुखी और स्वस्थ बनाना है।

यह भोग का समय नहीं है

किन्तु यहाँ जब से स्वराज्य आया तभी से बहुत से लोग समझने लगे हैं कि अब भोग करना है। एक बड़ी निधि मिली है, इसलिए अब भोग में होड़-सी लग गयी है कि कौन कितना भोग करता है, कौन कितना अधिकार पाता है। पर यह मानना गलत है कि अब कर्तव्य खतम हो गया और भोग का आरम्भ हुआ है। भोग का आरंभ याने शक्ति के क्षय का आरम्भ। अगर शक्ति के क्षय का आरम्भ भी करना है तो शक्ति पूर्ण होने के बाद करो। पूर्ण चंद्र होने के बाद उसका क्षय होता है तो वह शोभा देता है। परन्तु जहाँ अमावास्या ही टल गयी वहाँ क्षय कैसे होगा ? अंग्रेजों ने एक दिवाला निकली हुई दूकान हमारे

हाथ में दी। अंग्रेजों ने हमें सरकारी शासन में डाला। उनकी सत्ता में, जब कि उनमें से हर नौकरी ही अलग था।

हमारी प्राचीन ग्राम-रचना

अंग्रेजी-राज आने के बाद यहाँ की पुरानी व्यवस्था टूट गयी। पहले यहाँ ग्राम-रचनाएँ होती थीं। पंचायत का राज चलता था। गाँव की पैदावार, गाँव की तालीम, गाँव की रक्षा अर्थात् गाँव का सारा अन्तर का कारोबार पंचायत ही करती थी। पंचायत का मतलब है पाँचों जातियाँ मिलकर काम करते थे। वह एक किस्म की लोकतान्त्रिक योजना थी। सारी जमीन पंचायत की थी। और किसान को काश्त करने के लिए उसका एक हिस्सा दिया जाता था। वैसे ही धोबी, नाई आदि सभी को एक-एक हिस्सा दिया जाता था। इस तरह सारा गाँव एक परिवार के जैसा रहता था और गाँव में पंचायत का राज चलता था। इसीको अपनी स्वराज्य कहते हैं। अंग्रेजों के आने से यह सारा इंतजाम और व्यवस्था टूट गयी और पैसे का राज आया। भगवान् से भी अधिक पैसे की पूजा होने लगी। लेकिन पैसे की कोई कीमत नहीं है। पैसा असत्य है और उसीके हाथ हमने अपना सारा कारोबार सौंप अपनी जिन्दगी बरबाद कर दी। अरे, पैसा तो मालिक के हाथ में पैसा होता है। उसका कोई स्थिर मूल्य ही नहीं है। इसीलिए तो हरएक को लगता है कि अधिक-से-अधिक पैसा इकट्ठा किया जाय, जिससे वह वक्त-जरूरी के काम आवे। पैसे पर भरोसा नहीं रख सकते, इसी कारण अधिक-से-अधिक पैसा इकट्ठा करने की इच्छा होने लगी।

लेकिन पुराने जमाने में ऐसा नहीं था। तब तो किसीको तेल की जरूरत हो तो वह तिल्ली लेकर तेली के पास पहुँचता और उससे कहता कि मुझे तेल पेरकर दे दो और तुम खली ले लो। तब पैसे का कोई सवाल ही नहीं था। एक कौड़ी का भी हिसाब नहीं रखा जाता था। सभी दिल के उदार थे। नाई, बढ़ई, धोबी सब किसान का सालभर का काम करते थे। कोई हिसाब नहीं रखते थे कि किसने सालभर में कितना काम किया। नापतौल तो कोई रखता ही नहीं था। और हरएक ने मान लिया था कि फसल का हिस्सा सबको

मिलेगा। अगर फसल कम आती तो सबको कम मिलता, याने दुःख बँट जाता था। और अगर फसल ज्यादा आती तो सबको ज्यादा मिलता था याने सुख भी बँट जाता था। लेकिन आज तो कोई दुःखी होता है, तो अकेला ही दुःखी होता है। उसके दुःख से समाज दुःखी नहीं होता। इसी तरह कोई सुखी होता है, तो अकेला ही सुखी होता है उसके सुख से समाज सुखी नहीं होता। जिस समाज में व्यक्ति के सुख-दुःख से समाज सुखी या दुःखी नहीं होता वास्तव में वह समाज-रचना ही नहीं। यहाँ समाज-रचना टूट गयी यही कहना होगा। अंग्रेज आने के बाद यहाँ ऐसा ही हुआ।

मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा करें

इस तरह स्पष्ट है कि हमारे हाथ में कोई निधि नहीं आयी बल्कि पुरुषार्थ करने का उपाय आया है। अब हम चाहे जो रचना कर सकते हैं। स्वराज्य के पहले हम चाहे जो रचना नहीं कर सकते थे, विरोधी सत्ता उसमें बाधा डालती थी। अब ही तो काम करने का मौका आया है। इसीलिए मैं जवानों से कहता हूँ कि आप आगे बढ़िये। बूढ़ों का समय तो अंग्रेजों को निकालने में ही चला गया लेकिन आज आपके हाथ में बनाने का काम आया है। आप चाहे जैसी मूर्ति बनाओ। अपनी कारीगरी दिखाने का अवसर आपको मिला है, ऐसा अवसर उन्हें नहीं मिला। हम लोगों को तो देश पर जो दबाव था उसीको हटाने में सारा श्रम करना पड़ा। लेकिन आप ऐसे जमाने में आये हैं, आपको ऐसा सुअवसर मिला है कि आप अपने इच्छानुसार समाज बना सकें। आज आप मूर्ति बना और उसकी प्राणप्रतिष्ठा कर उसे मंदिर में स्थापित कर सकते हैं। उस समय तो मंदिर ही हाथ में नहीं था, लेकिन आज वह हाथ आ गया। अब उसमें मूर्ति होनी चाहिए।

हमें अभी तक पूरी आजादी नहीं मिली है, सिर्फ राजकीय सत्ता हाथ में आयी है। वास्तव में गाँव-गाँव में आजादी आनी चाहिए। आजादी की हवा और गर्मी हर गाँव में महसूस होनी चाहिए। सूर्योदय दिल्ली या पटनेवालों ने महसूस किया और गाँववालों ने सिर्फ सुना कि वहाँ सूर्योदय हुआ पर नहीं हो

नवथा। सूर्य जब उगता है तो हर गाँव में उसकी रोशनी फैल जाती है।
ही रामनाम की हर रस और प्रकाश हर गाँव में फैलना चाहिए। लेकिन म
रखा। फिर मंदिर या इमारत हमारे हाथ में आयी। इतने से ही भ
आरंभ नहीं होता। मूर्ति की प्रतिष्ठापना के बाद ही भक्ति का आरंभ होत
इसलिए अब कारीगरों का काम है कि मूर्ति बनायें, फिर उसकी प्रतिष्ठापन
फिर पूजा करें, फिर नैवेद्य चढ़ायें और उसके बाद भोग भोगें। लेकिन आ
भी भोगने की भीख से भोगेंगे, तो पाप का रूप ही होगा। उसे परमेश
प्रसाद समझकर भोगेंगे, तो पूजा चलती रहेगी; नहीं तो भक्ति क्षीण हो जा
लेकिन आज तो भोग का ख्याल ही नहीं है। अभी मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठ
पूजा करना बाकी है। कारीगरों को एक अद्भुत बड़ा मौका मिला है। ग
हमने जो भूमि का मसला हाथ में लिया है, उसे हल किये बगैर हम बै
ठेंगे, ऐसी प्रतिज्ञा लेनेवाले एक हजार तरुण सेवक हमें चाहिए। '
'साधयामि देहं वा पातयामि' ऐसा प्रण करनेवाले युवक चाहिए। मैं
कहूँगा कि मूर्ति कैसी बनानी है, वह लोगों को समझाओ। इसके लिए
जमीन का बँटवारा करना होगा। फिर नये ढंग से ग्रामोद्योग चालू करने
जो ढंग इस जमाने में टिक सकें, वैसा ही ढंग अपनाना होगा। नयी
चलानी होगी। नये धर्म की स्थापना करनी होगी। पुराना धर्म चल नहीं
जिसमें छुआछूत वगैरह है। जैसे गोकुल में श्रीकृष्ण भगवान् सब का
सबको बाँटते थे और सब मिलकर प्रेम से खाते तथा मिलकर रहते थे।
ही काम करना है।

नारायण-धर्म की स्थापना

हम चाहते हैं कि सब लोग इस भावना से भोग करें कि 'भगवान की
कृपा से मुझे परमेश्वर का प्रसाद मिला है और अब इसका सेवन कर मैं
सेवा करूँगा, क्योंकि मेरा शरीर सेवा के लिए है।' जैसे मशीन को
आवश्यक कर्तव्य होता है, बोझ नहीं—ऐसा कभी नहीं होता कि मशीन में
का हम डालें यह दूसरा—वैसे ही शरीर के लिए जितना आवश्यक है, --

हो उसे देना चाहिए। खिलाने का शौक नहीं होना चाहिए। जैसे हम यन्त्र को जितना आवश्यक है उतना और जो आवश्यक है वही तेल देते हैं वैसे ही शरीर के साथ करना चाहिए। किसीको शौक होता है तो खुद खाने का होता है, चर्बी में तेल देने का नहीं। कमाई के समान धर्म-काम का या सेवा का शौक रखना चाहिए खाने का याने तेल देने का नहीं। अगर हम इस खयाल से काम करेंगे, तो सब भेद खतम हो जायेंगे। शबरी भीलनी के जूठे बेर भगवान् ने सेवन किये, क्योंकि प्रेम था। प्रेम एक महान् धर्म है जिसमें सारे धर्म डूब जाते हैं। सूरज का प्रकाश जहाँ फैलता है वहाँ सारे तारे खतम हो जाते हैं। वैसे ही प्रेम धर्म के प्रकाश के सामने दूसरे सारे धर्म क्षीण हो जाते हैं। आज वही प्रेम-धर्म लाना है। समाज देवता है और व्यक्ति को उसकी पूजा करनी है। नारायण की सेवा करने के लिए नर-देह मिली है। नारायण याने नरों का समुदाय। नारायण की सेवा को—जिसे आप भक्ति मार्ग कहो या और भी कुछ—मैं तो 'नारायण-धर्म' या 'मानवता-धर्म' कहूँगा। वही धर्म मैं लाना चाहता हूँ। मेरा देव, मेरी इष्ट, तेरी इष्ट—ये सारे भेद मिटाने हैं।

भक्ति-मार्ग आसान क्यों?

आज तक भक्तों ने कहा है कि भेद छोड़ दो। परन्तु हमने यह माना कि यह तो सिर्फ परम भक्तों के लिए ही है। किन्तु अभेद का धर्म सिर्फ महात्माओं के लिए है। यह मानना गलत है यह तो सबके लिए है। हमारी यह बड़ी भारी गलती हुई कि हमने सारा आचार महात्माओं को सौंप दिया। स्थितप्रज्ञ के लक्षण हम रोज गाते हैं परन्तु कहते हैं कि ये आदर्श तो महात्माओं के लिए है, हमारे लिए नहीं है। मान-अपमान समान मानना—यह हम जो रोज गाते हैं वह महात्माओं के लिए है—इसका मतलब यह है कि जो अच्छा है, धर्म का असली रहस्य या भरे हैं वह सब भक्तों को अर्पण कर दिया और मानने लगे कि सिर्फ उन भक्तों का दर्शन करने से हम मुक्त हो जायेंगे। सन्तों के दर्शन में लाभ है यह मैं मानता हूँ परन्तु वह लाभ जितने मनुष्य भी उसके जीवन में परिणत होना चाहिए। तभी वह सच्चा दर्शन है।

एक लड़के को उसकी माँ देखती है और दूसरा भी कोई देखता है, पर माँ का दर्शन सच्चा दर्शन है, क्योंकि उसे देखते ही माँ के मन में प्रेम पैदा होता है। सिर्फ आँखों से देखने को दर्शन नहीं कहा जाता, हृदय से जो दर्शन है, वही सच्चा दर्शन है। ऐसे दर्शन से तो उसकी आँखों से आँसू गिरने लगते हैं, हृदय में प्रेम पैदा होता है और हृदय परिवर्तन होता है। ऐसे ही भगवान् का नाम लेना अच्छा है। परन्तु केवल जबान से नाम लेना पर्याप्त नहीं है। हृदय से लेना चाहिए। जैसे हनुमान् के हृदय से हमेशा राम-नाम का उच्चारण होता था और अर्जुन के हृदय में श्रीकृष्ण का। एक बार अर्जुन सोया था और पास भगवान् वहाँ जा पहुँचे। उन्होंने सुना, 'श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण' की आवाज निकल रही थी। वे सोचने लगे कि कौन जप कर रहा है? अर्जुन तो सोया है। तब उन्हें पता चला कि अर्जुन के हृदय से आवाज निकल रही है। दर्शन और नाम स्मरण ऐसे साधन हैं, जिनसे जीवन परिवर्तन हो जाता है।

भक्ति एक ऐसा सुलभ साधन है, जिसमें जप तप कर्म, कुछ भी करने की *जरूरत नहीं होती। इसीलिए भक्ति-मार्ग आसान समझा जाता है।* इस भक्ति मार्ग से काम जरूर होता है, बशर्ते हृदय में भक्ति हो। किसी एक साधारण सभा का मामूली सेक्रेटरी अपने एक साल के काम की रिपोर्ट पेश करता है, तो वह पचास पन्ने की होती है। पर किसी माँ से पूछा जाय कि तुमने एक साल में बच्चों के लिए क्या-क्या किया? तो वह कहती है कि 'मैंने कुछ भी नहीं किया।' कारण उसके हृदय में आनंद होता है। वह अंदर के समाधान से काम करती है, इसलिए हिसाब नहीं रखती। अगर किसीसे पूछा जाय कि एक साल में कितना दूध पीया और कितनी शक्कर खायी, तो वह हिसाब नहीं दे सकेगा। कारण वहाँ आनन्द होता है, स्वाभाविक प्रेम होता है, वहाँ हिसाब नहीं रखा जाता। राम-नाम का जप करना है, तो वह भी 'साँस साँस पे राम कहो' ऐसा होना चाहिए। अगर आप हिसाब करके जप करेंगे, तो हिसाब या गणित के भक्त बनेंगे, राम के नहीं। जप तप कर्म आदि जब भक्ति से होता है, तो उसका भान नहीं होता और न उसमें कष्ट ही मालूम पड़ता है। इसी कारण यह बड़ा आसान है। हम समाज में भक्ति मार्ग फैलाना चाहते हैं।

धर्म का सामाजीकरण हो

जब तक स्वराज्य प्राप्त नहीं हुआ था, तब तक हमने धर्म का नहीं, बल्कि छोटे-छोटे धर्मों का पालन किया। किन्तु अब मैं लोगों में महान् प्रेम-धर्म फैलाना चाहता हूँ। 'राम ही केवल प्रेम-पियारा जान लेहु जो जाननिहारा'— तुलसीदास कहते हैं कि राम को केवल प्रेम प्रिय है। प्रेम-धर्म फैल जायगा तो निरंतर काम करते हुए भी थकान नहीं महसूस होगी। जमीन का बँटवारा तो एक मामूली काम है। यह तो आरंभ है, लेकिन हमें नये धर्म की स्थापना करनी है। नया माने यह नहीं कि जो पुराने लोगों को सूझा ही नहीं था। किन्तु यह कि उनसे उस धर्म का सबसे आचरण करवाते बना नहीं। हम चाहते हैं कि सब लोग उस धर्म का आचरण करें।

हिंदुस्तान में कुछ व्यक्ति तो पहाड़ के जैसे ऊँचे और बाकी सारे मैदान के समान नीचे हो गये। हम चाहते हैं कि ऐसा पहाड़ और मैदान-सा भेद न रहे। जो उत्तम धर्म हों, वे समाज में फैल जायँ। उनका सामाजीकरण हो जाय। प्रेम, त्याग, वैराग्य आदि बातें चार लोगों के हाथ में न रहें वे सबको मिलें। जैसे श्रीकृष्ण भगवान् ने गोकुल में आनंद बरसाया था वैसे ही हम गाँव गाँव में आनंद बरसाना चाहते हैं। जैसे श्रीकृष्ण ने गोकुल में एकता निर्माण की वैसी हम गाँव-गाँव में निर्माण करना चाहते हैं। आज तक हम केवल गोकुल के आनंद के गीत गाते रहे। जपने या रटने में भी कुछ शक्ति होती है। हम उसे आदर्श के रूप में सामने रखते हैं, तो अच्छी बात है। परन्तु अब मौका आया है जब कि सारे समाज में हम यह धर्म फैलाना चाहते हैं। हम सबको धर्मनिष्ठ बनाना चाहते हैं।

आज जैसे हिन्दू धर्म के नाम पर करोड़ों लोग हैं वैसे ही 'इस्लाम-धर्म' के नाम पर भी करोड़ों लोग हैं। पर सभी नामों पर हैं हिन्दू या इस्लाम-धर्म के काम पर कोई नहीं। हम चाहते हैं कि सिर्फ नाम पर न हो काम पर हो। हम बोलने में तो अद्वैती भाषा बोलेंगे- सिर्फ मानव ही नहीं बल्कि सारी पशु सृष्टि और वनस्पति सृष्टि भी एक है ऐसी भाषा बोलेंगे—परन्तु व्यवहार में

इतने छोटियाँ रहेंगी, इस के छोटे-छोटे टुकड़े बनायेंगे। इस तरह आचार और विचार में फर्क नहीं होना चाहिए। हमें जैसे जमीन सबकी बना देनी है, वैसे ही धन भी सबका बना देना है। 'परस्पर प्रेम सुखिया जिससे' ऐसा मत कहो, बल्कि यही कहो कि मानव का लक्षण है दूसरे के दुःख से दुःखी होना। जो दूसरे के दुःख से दुःखी न हो ऐसा सख्त और कठिन मनुष्य ही दुष्कम है। सारे मनुष्य प्रेममय दिखाते हैं, ऐसा कवि बोले, पर हम चाहते हैं।

धन की तकसीम

हमें धर्म को मठों या मन्दिरों में सीमित नहीं रखना है, और न वह किसी व्यक्ति के ही सिपुर्द करना है, बल्कि समाज में बाँटना है। सम्पत्ति के बारे में जो पहले था वह था कि कुछ लोग माँ-बाप थे और बाकी सारे बच्चे। माँ-बाप समझते थे कि बच्चों की परवरिश करना हमारा काम है। किन्तु अब ऐसा नहीं रहा। अब बच्चे अपनी परवरिश कर सकते हैं। इसलिए माँ-बाप को यह अहंकार छोड़ देना चाहिए कि हम ही बच्चों की परवरिश कर सकते हैं। मैं जमीन की तकसीम चाहता हूँ, सम्पत्ति की तकसीम चाहता हूँ, अक्ल की तकसीम तो भगवान् ने कर ही दी है, अब मैं धर्म की भी तकसीम चाहता हूँ। आज तक अपना धर्म क्या है? यह शास्त्रकारों से पूछना पड़ता है, धर्मग्रन्थों में जाकर देखना पड़ता है। लेकिन क्या कोई माँ किसी शास्त्रकार के पास पूछने जाती है या किसी मनुस्मृति में देखती है कि बच्चे को दूध पिलाना मेरा धर्म है या नहीं? वह धर्म तो उसे स्वयं ही मालूम होता है। प्रेम, दया आदि धर्म भी इसी तरह स्वयं स्फूर्त होने चाहिए। किसी गीता या मनुस्मृति में उन्हें देखने पूछने की जरूरत न होनी चाहिए।

रामराज्य हृदय में पैदा होगा

हम रामराज्य स्थापित करना चाहते हैं। लेकिन रामराज्य में क्या था? वहाँ एक राम थे, प्रजा राम की और सारे राज्य में राम के सिवा दूसरी कोई चीज ही नहीं थी। जब हनुमानजी लंका जलाकर वापस आये और उनसे कहा गया कि तुमने बहुत बड़ा पराक्रम किया तो उन्होंने कहा : 'पराक्रम मेरा नहीं, रामजी का है'।

रावण से भी उन्होंने कहा कि मैं तो रामजी का एक तुच्छ सेवक हूँ, मेरे जैसे लाखों यहाँ पड़े हैं। इस तरह रामराज्य में जो कुछ बनता सारा राम के नाम पर बनता था। हरएक के दिल में सच्चा प्रेम, तत्त्वनिष्ठा भरी हो तो रामराज्य आयेगा।

कुछ लोग कहते हैं कि गांधीजी के बाद हमने उनके शिष्यों को सत्ता सौंप दी फिर भी रामराज्य नहीं आया! लेकिन रामराज्य क्या ऊपर से गिरनेवाला है! कोई दिल्ली से पुड़िया भरकर रामराज्य भेजनेवाला है! रामराज्य तो हृदय में पैदा होगा। स्वराज्य प्राप्त होने के बाद आपने कितना लोभ छोड़ा, कितना काम क्रोध छोड़ा—यह जरा हृदय के अन्दर देखो। अगर न छोड़ा हो और पहले जैसे ही पत्थर बने हुए हों तो रामराज्य कैसे आयेगा? आज हम सबको बड़ा ही सुन्दर मौका मिला है। 'गाँव-गाँव बस होइ भगवंता' हम गाँव गाँव आनन्द देखना चाहते हैं। हम रोनी सूरत नहीं देखना चाहते। हम चाहते हैं कि कोई यह न कहे कि मैं दुःखी हूँ। अगर कोई मुझसे यह कहे कि मैं दुःखी हूँ तो मैं उससे कहूँगा कि तू नहीं मैं दुःखी हूँ। इस तरह उसका दुःख मिटाने के लिए मैं फौरन दौड़ पड़ूँ तो दुःख का दर्शन ही न होगा।

जब समाज में भक्ति नहीं रहती तभी दुःख का दर्शन होता है। सारे समाज में पैदावार कम हो या ज्यादा अगर भक्ति है तो सुख होगा। अगर हम दूसरे के दुःख से दुःखी होते हैं, तो पैदावार कम भी रहे, तो भी हम सुखी होंगे। कुएँ से एक बाल्टीभर पानी निकाला तो भी कुएँ में गड्ढा नहीं पड़ता क्योंकि सारे बिंदु गड्ढा बुझाने के लिए दौड़ पड़ते हैं। उन बिंदुओं में इतना स्नेह रहता है कि सारे पानी की सतह नीचे गिर जाती है पर गड्ढा नहीं पड़ता। लेकिन किसी गेहूँ के ढेर से एक सेर गेहूँ निकाल लो, तो गड्ढा पड़ जाता है। दो-चार गेहूँ महात्मा यहाँ गिरते और गड्ढा बुझाने की कोशिश करते हैं फिर भी वह कायम ही रहता है। आज के समाज की यही हालत है। समाज के दुःखरूपी गड्ढे को भरने के लिए थोड़े से महात्मा आते हैं पर उनसे वह गड्ढा नहीं भरता। कुछ महात्माओं ने अपना काम तो कर लिया, पर गड्ढा वैसा ही रहा। इस तरह लगता है कि यह महात्मा होने से गड्ढा भरता नहीं। लेकिन जब सारे के सारे

लोग पानी की बूँदों की तरह गाफिल मानने के लिए छोड़ दें, तो पता ही न चले कि कभी समुद्र था या होगा। मतलब जब हम दूसरों के सुख से सुखी होते हैं, तो समाज में चाहे पैदावार कम हो या ज्यादा, कोई दुःखी नहीं हो सकता। अमेरिका कितना सम्पन्न देश है फिर भी वहाँ दुःख नहीं, ऐसी बात नहीं; क्योंकि वहाँ कोई भी एक-दूसरे की परवाह नहीं करता। इसलिए सुख-दुःख पैदावार पर निर्भर नहीं है। एक के दुःख में सारे हिस्सा लेंगे, तो समाज में दुःख रहेगा ही नहीं।

पश्चिमी बस्ती
२१-८-'५१

गरीबों से दान क्यों ? ६१

आज मुझे कुछ कम्युनिस्ट भाइयों ने सवाल पूछे हैं। उनका मैं जवाब दूँगा। मुझे खुशी है कि यहाँ कुछ कम्युनिस्ट भाई काम कर रहे हैं। मैं चाहता हूँ कि वे ठीक ढंग से काम करें। मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूँ कि हिन्दुस्तान के गरीबों के उद्धार की जितनी चिन्ता उन्हें है उतनी ही मुझे भी। उन्हींकी तरह मैं भी गरीबों का कल्याण चाहता हूँ और मेरा प्रयत्न उसी दिशा में चल रहा है। इसलिए मैं उनका सहयोग चाहता हूँ। उनमें और हममें कुछ विचारभेद है और हिन्दुस्तान जैसे बड़े देश में उसका होना लाजिमी भी है। लेकिन जहाँ तक गरीबों की सेवा का प्रश्न है वे गरीबों से जितना प्रेम रखते हैं उतना ही हम भी रखते हैं। इसीलिए उनका सहयोग चाहते हैं। अगर उन्हें ऐसा लगे कि गरीबी की समस्या का हल करने का यह तरीका अच्छा है, तो हम उनसे सहयोग की अपेक्षा करेंगे।

यह प्रेम का एक चिह्न !

हम उनसे जमीन माँगते हैं इसका मतलब यह नहीं कि हम उनसे समान जमीन माँगते हैं। जो मध्यम श्रेणी के किसान हैं उनसे कुछ हिस्सा माँगते हैं।

बड़े-बड़े काश्तकार और जमींदारों से कहते हैं कि आप अपने लिए थोड़ा सा रख कर बाकी सारा-का-सारा दान दे दें। और जो बिल्कुल गरीब हैं उनसे हम प्रसाद के रूप में जो कुछ भी दें ग्रहण कर लेते हैं। जैसे सुदामा के तंदुल से भगवान् प्रसन्न हो गये, वैसे ये गरीब लोग अगर थोड़ा भी दे देते हैं तो माता-भाता प्रसन्न हो जाती है, क्योंकि वह तो प्रेम का एक चिह्न है। जब तक देश के सब बेजमीनों को जमीन नहीं मिलती, तब तक हम माँगते जायेंगे।

मुझसे अक्सर पूछा जाता है कि गरीबों से दान क्यों लेते हो? मुझे इसका जवाब देने में खुशी होती है, क्योंकि इससे ज्ञान-प्रचार हो जाता है। हम जो गरीबों से जमीन लेते हैं, उसके चार कारण हैं :

सबसे गरीब को मदद

(१) आज समाज में सबसे दुःखी बेजमीन लोग हैं। उनकी तुलना में गरीब किसान भी सुखी हैं। आखिर हम जब किसीको सुखी या दुःखी कहते हैं, तो किसीकी तुलना से ही न कहते हैं? अगर कोई अपने से नीची स्थितिवाले की ओर देखे तो वह खुद को सुखी समझेगा और अपने से ऊपरवाले की ओर देखे तो खुद को दुःखी समझेगा। इसलिए आज समाज में जो सबसे ज्यादा दुःखी है, उसके लिए हरएक को थोड़ा-थोड़ा त्याग करना चाहिए। समुद्र सबसे नीचे की सतह पर है, तो दुनिया का सारा पानी उसीकी तरफ बहता है। पहाड़ का पानी भी समुद्र की तरफ दौड़ता है और मैदान का पानी भी। अगर उस पानी से कोई कहे कि तू क्यों समुद्र की तरफ दौड़ता है, तू तो निचान पर है? तो वह कहेगा कि समुद्र से तो मैं उठान पर हूँ। इसलिए मैं भी उसीकी तरफ दौड़ूँगा। इसी तरह जैसे श्रीमान् का यह कर्तव्य हो जाता है कि बेजमीन के लिए कुछ दे वैसे ही गरीब का भी यह कर्तव्य है क्योंकि जो बिल्कुल बेजमीन हैं उनके हिसाब से वह गरीब किसान भी कुछ सुखी ही है। इसलिए हरएक की जिम्मेवारी यह हो जाती है कि बेजमीन के लिए कुछ-न-कुछ करे। यही बात हम सिखाना चाहते हैं, अन्यथा जिनके पास कम जमीन है, उनका कुछ कल्याण ही नहीं रहा ऐसा हो जायगा। लेकिन हरएक का कुछ

कर्तव्य है। मेरे लिए पचास रोटी मेरे पास नहीं है, तो भी अगर कोई भूखा मेरे पास आ जाय, तो मेरे पास जो भी कुछ है, उसमें से एक हिस्सा उसे देना मेरा कर्तव्य है। यह एक धर्म है और हम यही धर्म-भावना समाज में लाना चाहते हैं।

आसक्ति का निराकरण

(२) आखिर हम मिटाना चाहते हैं कि जमीन पर किसीकी मालकियत ही न रहे। आज श्रीमान् अपने को अपनी जमीन का मालिक समझता है, वैसे गरीब भी अपनी थोड़ी सी जमीन का अपने को मालिक समझता है। दोनों खुद को जमीन का मालिक मानते हैं। पर हम दोनों को मालकियत की इस भावना से मुक्त करना चाहते हैं। जैसे प्यासे को पानी पिलाना अपना कर्तव्य है, वैसे ही जो जमीन मांगता है उसे जमीन देना भी अपना कर्तव्य है, क्योंकि जमीन परमेश्वर की है—यह हम समझाना चाहते हैं। आज मालकियत की भावना श्रीमान् और गरीब, दोनों में है। जैसे तो एक जगह में रहनेवाले आदमी के पास भी जो दो लँगोटियाँ रहती हैं, उनमें उसकी उतनी ही आसक्ति रहती है जितनी एक श्रीमान् की अपने ढेर कपड़ों में। इसलिए हम उनकी आसक्ति से छुड़ाना चाहते हैं।

नैतिक प्रभाव

(३) हम श्रीमानों से जमीन मांगें तो उसके लिए हमारा उन पर असर भी होना चाहिए। लेकिन असर कैसे हो? क्या हमारे पास शक्ति है? हमारे पास न तो पिस्तौल है और न उनकी ताकत पर विश्वास। हमारा तो मानना है कि पिस्तौल से कोई काम नहीं बनता, बल्कि बिगड़ता ही है। इसलिए हम नैतिक शक्ति निर्माण करना चाहते हैं। जब हमारे गरीब दान देंगे, तो नैतिक शक्ति पैदा होगी और उसका असर श्रीमानों पर होगा, और ऐसा हो भी रहा है। पहले तो श्रीमान् लोग हमें टालते थे, पर अब हरिजनों में उन लोगों ने हमें कुछ जमीन दी। उन्होंने अब जमीन इसीलिए दी कि जब दो साल तक गरीब लोगों ने हम पर दान की वर्षा की। आखिर धर्म भी एक चीज होती है। और वैधर्म के लिए धर्म होना भी जरूरी है। शास्त्रों ने कहा है कि 'हिंसा वैभव!'

नैतिक शक्ति प्रकट करने का वह एक तरीका है। जिन्होंने एक लाख दिया वे राजासाहब मुझसे मिलने आये थे। मैंने उनसे कहा कि आपने दान दिया है, सो तो अच्छा किया लेकिन सिर्फ इतने से काम नहीं चलेगा। आपको तो अपनी टोली में के औरों से भी दान दिलवाने का काम करना चाहिए। उन्होंने मेरी बात स्वीकार कर ली। और आहिस्ता आहिस्ता वे बड़े लोग मेरा काम उठा लेंगे ऐसी मुझे उम्मीद है। कारण गरीबों ने जो दान दिया है, इससे एक नैतिक शक्ति निर्माण हो रही है।

सत्याग्रही-सेना का निर्माण

(४) मैंने कई बार कहा है कि हम तो अपनी सेना तैयार कर रहे हैं। हमें ऊँच-नीच का भेद खत्म करना है और ऐसी सेना बनानी है जिसके आधार पर लड़ाइ लड़ सकें। जिन्होंने दान दिया या त्याग किया और हमारे काम के प्रति सहानुभूति दिखायी वे ही हमारे सैनिक बनेंगे। हमारी सेना हिंसा की नहीं है। हिंसा की सेना मे तो वे ही लिये जाते हैं जिनकी छाती इंच की चौड़ी होती है। लेकिन हमारी सेना में दाखिल होने के लिए त्याग की छाती चाहिए। आगे कभी अगर श्रीमानों के दिल न खुले तो हम एक कदम और भी आगे बढ़ेंगे। आज जो कर रहे है, उससे एक भी कदम आगे नहीं बढ़ेंगे, ऐसी हमने अपने लिए कैद या मर्यादा नहीं रखी है। कारण हमारा इस पर विश्वास नहीं। हमारे लिए प्रेम की शक्ति होनी चाहिए। माँ बच्चे के लिए कितना त्याग करती है, लेकिन वह जब देखती है कि बच्चा बुरे रास्ते पर जा रहा है और उसका उसे दुःख होता है, तो वह क्या करती है ? वह सत्याग्रह ही तो करती है। वह उपवास करती और खुद उसे समझाती है। दूसरों को तकलीफ दिये बगैर खुद सहन करना और समझाना ही सत्याग्रह है।

सत्याग्रह की अमोघ शक्ति

'सत्याग्रह' का नाम लेकर मैं कोई धमकी की बात नहीं कर रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि सत्याग्रह का दुरुपयोग हो सकता है और इन दिनों तो अकसर हो रहा है। लेकिन मैं मानता हूँ कि सत्य का आचरण आग्रहपूर्वक करना चाहिए, ताकि

सामनेवालों के हृदय पिघल जायँ। इसके लिए चाहे जितने त्याग की तैयारी हो वही सत्याग्रह है। मैं यह भी मानता हूँ कि अगर एक भी सच्चा सत्याग्रही दुनिया में होगा तो उसका असर दुनियाभर पर पड़ेगा और दुनियाभर का हृदय पिघलेगा। लेकिन उसके मन में सारी दुनिया के प्रति प्रेम होना चाहिए।

गलत और सही उपवास

लेकिन आज तो छोटे छोटे कामों के लिए—जैसे प्रांत बनाने के लिए भी—उपवास होते हैं। यह सारा गलत है क्योंकि हम देख रहे हैं कि उससे ऐसी प्रतिक्रियाएँ होती हैं, जो मूल उद्देश्य से सर्वथा भिन्न होती हैं। जहाँ उपवास का परिणाम सबके दिल में प्रेम भाव निर्माण होने में होता है, वही सच्चा उपवास है। लेकिन जहाँ उसकी विपरीत प्रतिक्रियाएँ होती हैं द्वेष-भाव और झगड़े होते हैं, वह उपवास गलत है। उपवास तो वही होना चाहिए, जहाँ जिसके विरोध में वह किया जाता हो उसके प्रति हमारे मन में प्रेम हो और उपवास के बाद सामनेवाले को शर्म मालूम पड़े। उसे ऐसा लगे कि मैंने भूल की, गलती की। जिसके विरोध में मैं उपवास या सत्याग्रह करता हूँ, अगर उसके मन में ऐसी भावना न आयी तो मैं सच्चा सत्याग्रही साबित होऊँगा। सामनेवाले के मन में जब यह भावना हो कि इस व्यक्ति के मन में मेरे लिए प्रेम है, तभी मैं सच्चा सत्याग्रही साबित होऊँगा।

केवल विरोध ही सत्याग्रह नहीं

इसलिए जब मैं सत्याग्रह की बात करता हूँ, तो डरिये नहीं। यह मैं विचार को जगाने के लिए कह रहा हूँ। मेरा तो मानना है कि हमारा यह जो काम रोज से चल रहा है, वह एक किस्म का सत्याग्रह ही है। हमने भी सत्याग्रह का अध्ययन किया है इसलिए हम कुछ तो उसे समझते ही हैं। सत्याग्रह का अर्थ यह नहीं कि किसी एक मौके पर किसीके खिलाफ कुछ करना। इसलिए हमारा जो सारा काम चल रहा है—पैदल घूमना, गाँव गाँव जाकर लोगों को विचार समझाना, जमीन माँगना—यह सारा सत्याग्रह ही है।

'टंकारेणैव धनुष'

सिर्फ पिस्तौल से हिंसा हो सकती है, ऐसी बात नहीं। जैसे पिस्तौल से हिंसा होती है, वैसे उपवास से भी हो सकती है। मेरा विश्वास है कि मेरी सेना ऐसी जबरदस्त शक्ति होगी कि उसे लड़ना ही नहीं पड़ेगा। 'टंकारेणैव धनुषः' — तीर छोड़ने की भी जरूरत नहीं, सिर्फ धनुष की टंकार सुनकर ही सामनेवाला खतम हो जाता है, ऐसा कहा गया है। वैसे ही हमारी सेना की हुंकार से ही काम हो जायगा। जब लाखों गरीब लोग दान देंगे तो बिना लड़ाई के काम हो जायगा। भगवान् को जब गोवर्धन खड़ा करना था तो उसने सबसे कहा कि अपनी अपनी लाठी उसके नीचे लगाओ। यह एक जन-शक्ति निर्माण करने की बात है। इसीलिए हम गरीबों से दान लेते हैं।

चारदिमांड़
२१-७-५१

अहिंसा का रहस्य ः १०ः

हमारे साथ कुछ दिन एक जापानी समाजवादी सज्जन घूमते थे। उन्होंने एक सवाल पूछा : आपके देश को अहिंसा से स्वराज्य प्राप्त हो सका, इसका एक कारण हमें तो यह लगता है कि आपका अंग्रेजों से पाला पड़ा था। अंग्रेजों की एक सभ्यता है और दूसरों की तुलना में वे सौम्य हैं। इसीलिए अहिंसा के आन्दोलन का उनके हृदय पर परिणाम हो सका। लेकिन हमारा सोवियतवालों से पाला पड़ा है और उन्होंने तो हिंसा का एक तत्त्वज्ञान ही बना लिया है। उनके सामने अहिंसा चलेगी ही कैसे ?"

मैंने उन्हें जवाब दिया। "तो फिर आपका काम अधिक सरल है, ऐसा ही मैं कहूँगा। सामने अँधेरा जितना घना होगा, दीपक के लिए उतनी ही अधिक सुविधा होगी। अधूरा अँधेरा और अधूरा प्रकाश रहे तो दीपक उतना चमक नहीं सकता। घने अँधेरे को वह तुरन्त में भेद सकता है। काले तख्ते पर ही सफेद खड़िया चमक उठती है।

कोई भी मानव-समाज शैतान नहीं

एक जापानी मित्र ने जैसी शंका उठायी, वैसी शंका हममें से अनेक के मन में है। जापानी भाई को सोवियतवाले शैतान मालूम होते हैं। सनातनी हिन्दू को मुसलमान शैतान मालूम होता है। सोवियतवालों को जापान और जर्मनी शैतान मालूम होते हैं। सचमुच कोई भी मानव समाज शैतान नहीं है। इसके विपरीत, सभी मुल्कों के समाजों ने लोभ और डर के शिकार होकर बुरे-से-बुरे काम किये हैं। सनातनी धर्माभिमानी हिन्दुओं ने अछूतों पर कम अत्याचार नहीं किये। अंग्रेजों ने सन् '५७ में और जलियानवाला बाग में जो घोर अत्याचार किये, वे तो नाजी और फासिस्टों की तुलना में सहज ही टिक जायेंगे। स्वराज्य-प्राप्ति से ठीक पहले और स्वराज्य प्राप्ति के बाद तुरन्त, हिन्दू, मुसलमान और सिख—तीनों की मानो दुर्जनता में होड़ ही लग गयी थी। समाज में ऐसी लहरें बीच बीच में आ जाती हैं। फिर भी समाज का स्वास्थ्य कुल मिलाकर कायम रहता है। कोई भी समाज सज्जनता से वंचित नहीं है। हम कुछ पूर्वग्रह बना लेते हैं, फिर उसके अनुसार घटनाओं की ओर विकृत दृष्टि से देखते और एक काल्पनिक इतिहास बनाकर बैठ जाते हैं। इसीसे गलतफहमियाँ दृढ़ होती हैं। मन चंचल होता और मनुष्य विकारों का शिकार बन जाता है। विकारों का संतुलन नहीं रह पाता।

अहिंसा बाहरी क्रिया नहीं, हृदय की निष्ठा

विकारों का संतुलन कायम रखने और बुद्धि की समता बिगड़ने न देने का ही नाम 'अहिंसा' है। गुस्से में आकर सामनेवाले को मार देने का नाम 'हिंसा' है और गुस्से में आकर उपवास करने का नाम 'अहिंसा'—यह बात नहीं। अहिंसा सिर्फ बाहर की क्रिया नहीं, हृदय की निष्ठा है। आमरण उपवास की धमकी देना अगर अहिंसा मानी जाय, तो अपने विरुद्धवाले आदमी के खिलाफ भले ही वह लागू हो, किंतु अपने हिमायती के खिलाफ कभी लागू नहीं होगी। फिर अहिंसा का दोष सर्वव्यापी न हुआ, तो वह अहिंसा का दोष नहीं दिया जा सकता।

गीता ने यह जो बात हमारे सामने रखी है कि 'मन में गुस्से से बढ़कर

प्रणाम करनेवाला भी जैसे हिंसक हो सकता है, वैसे ही चित्त की समता न बिगड़ने देते हुए शान्त वृत्ति से प्रसंगविशेष पर धर्मविहित समझकर परिस्थितिवश शारीरिक हिंसा करनेवाला भी अहिंसक हो सकता है' यह बहुत विचारणीय है। मुझे लगता है कि दुनिया के समस्त धर्म साहित्य में यह गीता की विशेषता है। गीता के इस विवेचन से अनेक की गलतफहमी हुई है, अनेक के मन में असमंजसता पैदा हुई है और अनेक की निष्ठा भ्रष्ट हुई है। गीता ने हिंसक साधनों का आश्रय ले लिया है ऐसा उसका निष्कर्ष मानकर कुछ लोग गीता पर मुग्ध हो गए। गीता को हिंसा का बचाव नहीं करना है। आज के विज्ञान युग में हिंसा से कोई भी सवाल हल नहीं हो सकता। बल्कि हिंसा मानव का समूल नाश करेगी, यह निर्विवाद है। लेकिन गीता को एक सूक्ष्म विचार समझाना है। अशान्तवृत्ति से ऊपर ऊपर से अहिंसक साधन इस्तेमाल करनेवाले की अपेक्षा शान्तवृत्ति से स्थूल हिंसा करनेवाला अधिक धार्मिक हो सकता है ऐसा विरोधात्मक विवेचन करके गीता ने अंतःशुद्धि का महत्त्व चित्त पर अंकित कर दिया है।

शब्द से कृति महान्

विरोधाभास के द्वारा विशद विचार अंकित करने की यह कुशल गुरु की पद्धति ही है। बाइबिल में एक कथा है। एक पिता के दो लड़के थे। पिता ने दोनों को कुछ काम बताया। पहले लड़के ने कहा : ठीक है, मैं करूँगा। पर उसने किया नहीं। दूसरे ने कहा : मैं नहीं करूँगा। लेकिन उसने वह कर डाला। यह कथा कहकर बाइबिल पूछती है, दोनों में से कौन-सा लड़का आज्ञाकारी है? जो 'नहीं करूँगा' कहकर बाद में कर डालता है वही पिता की आज्ञा का पालन करनेवाला लड़का है—यह बाइबिल का अभिप्राय है। सवाल यह है कि क्या ऐसा तीसरा लड़का हो ही नहीं सकता जो कहेगा कि मैं करूँगा और वह करके दिखायेगा भी? ऐसा लड़का हो सकता है और उसका आदर भी ज्यादा ही है। लेकिन शब्द की अपेक्षा कृति का महत्त्व अधिक है यह समझाने के लिए ही यह विरोधाभासात्मक कहानी रची गयी है। गीता में भी यही बात है।

अहिंसा का सार : स्थितप्रज्ञता

चित्त को शांत और प्रसन्न रखनेवाला तथा अन्दर से भी अहिंसक साधनों का आश्रय लेनेवाला मनुष्य निरहंकारस्य अहिंसक स्थितप्रज्ञ है। ऐसे पुरुष अहिंसा के सामने चाहे जितनी बड़ी दुर्जनता टिक नहीं सकती। प्रज्ञा की स्थिरता ही अहिंसा का सार है और जिसके पास वह है, आज के विज्ञान के युग के अनुरूप कल्याणकारी अहिंसक साधनों से वह विजयी हो सकता है। फिर उसका मुकाबला चर्चिल के साथ हो या साम्राज्यवाद के साथ या शैतान के साथ हो।

'तत्र श्रीर् विजयो भूतिर् ध्रुवा नीतिः इति मतिर् मम ([illegible])।

कटोल १४५१

जमींदार भूदान का काम उठायें ११

मेरी सारी कोशिश यह है कि मनुष्य के अन्दर छिपे हुए सत्त्व-गुण को बाहर आने का मौका दिया जाय। वैसे मनुष्यों में सत्त्व, रज और तम तीनों गुण होते हैं, पर कुछ लोगों में एक गुण का दूसरे गुणों पर जोर चलता है। साधु पुरुष सात्त्विक होते हैं। उनमें रजोगुण और तमोगुण दोनों के अंश भी होते हैं, पर वे दबे रहते हैं और सत्त्वगुण ऊपर आता है। इसीलिए उनसे अच्छे काम बनते हैं। हरएक दिल में तीनों गुण होते हैं, पर कुछ लोगों के दिलों पर रजोगुण का अधिक असर रहता है, कुछ पर तमोगुण का और कुछ पर सत्त्व-गुण का।

आम जनता तमोगुणी : शिक्षित-वर्ग रजोगुणी

आज हिंदुस्तान की आम जनता तमोगुण में डूबी हुई है। उनमें अज्ञान, आलस्य, व्यसन आदि अनेक दुर्गुण हैं, जो तमोगुण की पैदाइश हैं। वे गरीबी में रहते हैं। सारी दुनिया गरीबी पाप है। तमोगुण के कारण ही वे गरीबी में रहते हैं। शहरवालों और देहात के बड़े लोगों पर रजोगुण का असर है, इसलिए वे अपनी सारी ताकत दूसरों को लूटने में खर्च करते हैं। वे यह नहीं जानते कि भगवान् ने उन्हें ताकत सेवा के लिए दी है, लूटने के लिए नहीं। बुद्धि, लक्ष्मी और शक्ति

ये सारी देवतायें हैं। लक्ष्मी, सरस्वती और शक्ति, तीनों पवित्र देवतायें हैं, पर ये लोग इनका उपयोग दूसरों को तकलीफ पहुँचाने में करते हैं। इससे ये सुख भी नहीं पाते, पर इस बात को नहीं समझते और दौलत के पीछे पड़ते हैं। फिर ये संकुचित बन जाते हैं आसपास के लोग दुःखी होने पर भी खुद सुखी रहने की कोशिश करते हैं। किन्तु भगवान् की योजना ऐसी है कि आसपास के लोग दुःखी हों तो हम सुखी नहीं रह सकते। पड़ोस में किसीकी मौत हुई तो हम आनन्द नहीं मना सकते। यही स्वाभाविक है नहीं तो हम जानवर बन जाते। इस तरह आज समाज में रजोगुण और तमोगुण की टक्कर चल रही है। तमोगुण ज्यादा ताकतवर होता है, इसलिए वह कहता है। जिनके पास अकल पैसा या शक्ति है वे दूसरों को दबाने की कोशिश करते हैं, क्योंकि उनमें रजोगुण है। हम चाहते हैं कि आम समाज और शिक्षित लोग, दोनों सत्त्वगुणी बनें।

भूदान-यज्ञ सत्त्वगुण बाहर लाने की कोशिश

भूदान यज्ञ सत्त्वगुण को बाहर लाने की एक कोशिश है। सत्त्वगुण को बाहर लाने से आनन्द निर्माण होगा और समाज आगे बढ़ेगा। गीता कहती है कि जहाँ सत्त्वगुण है वहाँ आरोग्य, सुख और उत्तम गति है। अगर हम चाहते हैं कि स्वराज्य-प्राप्ति के बाद हमारा समाज सुखी और आरोग्य-सम्पन्न हो तो यह लाजिमी है कि समाज में सत्त्वगुण फैले। आज भी सत्त्वगुण है, पर वह छिपा हुआ है। उसे बाहर लाने की कोशिश करना ही भूदान-यज्ञ का काम है। इसलिए यह काम आज तक थोड़ा ही हुआ तो भी सबको प्रिय हुआ है। अभी तक करोड़ों एकड़ जमीन पड़ी है, उसे लेना बाकी है। अभी तो लाखों एकड़ ही मिली है जो बहुत कम है। लेकिन यह काम आरम्भ हुआ है। आज समाज जिस दिशा में जा रहा है उससे बिल्कुल उल्टी दिशा में यह काम चल रहा है। वह उल्टी गंगा बहाना है, ऐसा कुछ लोग कहते हैं। परन्तु आज समाज में एक प्रवाह बन रहा है। और उसमें न आना चाहते हुए भी उसे रोक नहीं सकते। हम एक नया प्रवाह बहाना चाहते हैं। बहुत सारे लोग

इस काम के प्रति सहानुभूति बता रहे हैं। दिन-ब-दिन इसकी गति बढ़ रही है। परन्तु अभी यह काम पूरा नहीं हो रहा है।

हरएक से दान चाहिए

हम चाहते हैं कि यह काम हम जिनके दिल में भर रहे हैं, वे इस बात को समझ लें और खुद होकर इसे उठावें। सिर्फ चन्द लोग नहीं, बल्कि सभी यह काम करें। इसीलिए तो मैं छोटे-छोटे काश्तकारों से भी दान लेना चाहता हूँ। मुझसे अक्सर पूछा जाता है कि गरीबों से दान क्यों लेते हो? उन्हें तो दान देना ही है। श्रीकृष्ण भगवान् सुदामा को देने ही वाले थे, पर बिना लिये नहीं दिये। आखिर मनुष्य के हृदय के अन्दर एक भावना होती है। वह शुद्ध होती है, तो दुनिया में फैलती है। आज गरीबों का पक्ष लेनेवाले बहुत-से हैं। हम भी हैं। अक्सर लोग समझते हैं कि सारे गरीब सत्त्वगुणी होते हैं, पर ऐसी बात नहीं। उनका सत्त्वगुण छिपा हुआ है। इसलिए हमारी कोशिश यह रही है कि उन्हें सत्त्वगुण की शिक्षा और दीक्षा देनी चाहिए। उसी तरह हम रजोगुणवालों को भी सत्त्वगुण की दीक्षा देना चाहते हैं।

हमें हर घर में पहुँचना चाहिए और हरएक से दान-पत्र लेना चाहिए। अगर सौ में से एक का भी दान-पत्र नहीं मिला, तो हम मानेंगे कि हमारा काम अपूर्ण रहा। और परमेश्वर का काम अधूरा नहीं रह सकता, वह पूर्ण ही होता है। इसलिए हम सौ प्रतिशत दान-पत्र चाहते हैं। गरीब लोग 'पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम्' देंगे, पर उन सबके दिलों का प्रेमभाव प्रकट होना चाहिए। उससे एक महान् नैतिक शक्ति पैदा होगी, जिसका असर हिन्दुस्तान पर होगा। हर एक दान देनेवाले में से सत्त्वगुण पैदा होगा।

बड़े लोग यह काम उठा लें

गरीबों से दान लेने में हमें कुछ सफलता मिली है, किंतु उतनी सफलता रजोगुणवालों को सत्त्वगुणी बनाने में नहीं मिली। मैं चाहता हूँ कि बड़े लोग इस काम को विनोबा का काम नहीं, अपना ही काम समझकर उठा लें। उनमें से कुछ लोग तो उठा रहे हैं, पर बहुत-से ऐसे हैं जिनके हृदय के किवाड़ अभी

सूझे नहीं हैं। लेकिन धीरे धीरे ज्ञान फैलेगा और विचार खुल जायेंगे। इसलिए हम धैर्य से काम करते हैं। किंतु धैर्य की भी एक हद होती है। बिहार में प्रवेश करने के बाद जमींदार एसोसियेशन के सेक्रेटरी ने मुझसे कहा कि सरकार कानून के जरिये जमीन छीन रही है उसे आप रोकिये। मैं मानता हूँ कि कानून कितना भी न्याययुक्त बनाने की कोशिश करो तो भी वह तो थोड़ा होता है। इसलिए उसमें सबको पूरा न्याय नहीं मिलता। मैंने उनसे कहा कि आपकी बात ठीक है इसलिए आप मेरा काम उठा लीजिये। अगर बड़े लोग फौरन कम-से-कम छठा हिस्सा देंगे तो कानून नहीं बनेगा। हम तो प्रेम से समझायेंगे कि अभी कानून बनाने की जरूरत नहीं। उतावली से काम नहीं करना चाहिए, आगे सब लोगों की सम्मति से अच्छा कानून बनेगा। किंतु यह हम तब कहेंगे, जब आप छठा हिस्सा देंगे। वे उस वक्त इस बात के लिए अपने को असमर्थ समझते थे। हम उन्हें दोष नहीं देते, क्योंकि उस समय हमारा बिहार में प्रवेश ही हुआ था। किंतु अब तो हमें यहाँ आये छह सात महीने हो गये हैं। इसलिए मेरी बड़े लोगों से प्रार्थना है कि आप इस काम को अपनाइये। यह काम आपके हित में है।

आज मुझे कुछ जमींदार मिले थे। मैंने उनसे कहा कि आप आप थोड़ी सी जमीन देते हैं पर इससे मेरा संतोष नहीं होगा। जब आप इस काम को अपने सिर पर उठायेंगे और मुझसे कहेंगे : 'आप मत घूमिये हम घूमेंगे, आप गरीबों के पास जाइये, क्योंकि वहाँ हमारी पहुँच नहीं है परंतु श्रीमानों से दान लेना हमारा काम है" तो मुझे संतोष होगा।

दुष्काल से सबक सीखो

इतिहास में लिखा जायगा कि गांधीजी ने लोगों को अहिंसा के लिए तैयार किया, उसी तरह इंग्लैण्ड के बारे में भी ऐसा लिखा जायगा कि उसका इसमें कुछ बड़ा भाग है कि उनके हिंदुस्तान छोड़ने के बाद भी हिंदुस्तानियों ने माउंटबेटन को प्रेम से यहाँ रख लिया। यह इंग्लैण्ड की एक नैतिक विजय मानी जायगी। तात्पर्य यह, अहिंसक लड़ाई में दोनों की जीत होती है और हिंसक लड़ाई में एक की जीत या दूसरे की हार होती है। हमारी लड़ाई अहिंसक थी इसलिए उसमें हिंदुस्तान की जीत हुई और इंग्लैण्ड की भी। इसलिए मैं जमींदारों से कहना चाहता हूँ कि इंग्लैण्ड से सबक लीजिये। अगर हम इन्सान, प्रेम, भलाई और बंधु भाव को कायम रखना चाहते हों तो मौके पर आगे बढ़कर काम करना होगा। आखिर राह देखने की हद की भी एक हद होती है। गरीब कहाँ तक राह देखेंगे!

समय रहते दान दीजिये

आज मजदूर जाग्रत हो रहे हैं। हमने सुना है कि बिहार में जमीन की कीमत आधे से भी ज्यादा गिर गयी है। क्योंकि यह जो आन्दोलन चला है, उससे यह डर फैल गयी है कि जमीन सस्ती हो चुकी है। मैं भिक्षा माँगने नहीं दीक्षा देने आया हूँ। मैं चाहता हूँ कि गरीब का हक आपके ध्यान में आना चाहिए। 'हवा, पानी और सूरज की रोशनी के समान जमीन पर भी सबका हक है'—यह सुनकर गरीब जाग गये हैं। इसलिए जमींदार लोग फौरन काम करते हैं, तो उनके लिए शोभा रहेगी। आखिर लाचारी से दान देंगे, तो उस दान में रुचि नहीं रहेगी।

गीता में कहा है कि सात्त्विक दान का यह लक्षण होता है कि देनेवाला ढूँढ़ ढूँढ़ा करके देता है। दुःख से दान देता है। खुशी से नहीं देता। अगर खुशी से दिया जाय, तो थोड़ा-सा देने पर भी बहुत मिलता है। अगर बिना खुशी के, बिना प्रेम के दान दिया जाता है तो उसका परिणाम ठीक नहीं होता, जितना कि "देके भावे पावे" जैसे ठीक मौके पर दान देने से होता है। तो क्या आप दान देने का काल नहीं आया है? क्या यह देश दान देने लायक नहीं है और क्या मैं पात्र

नहीं हूँ। ठीक समय पर काम करो तो अच्छा परिणाम मिलेगा। समय रहते ही डॉक्टर को बुलाना चाहिए। देरी से बुलायें, तो पैसा जाता ही है और रोगी भी मर जाता है। इसीलिए समय रहते ही काम करना चाहिए। हरिजनों के लिए आप इस्म के मंदिर खोल दीजिये, नहीं तो उस मंदिर की पवित्रता कायम हो सकती। ठीक मौके पर ठीक काम करने से उत्तम परिणाम होता है—यह मेरी आवाज पहचानिये और मुझे ज्यादा मत घुमाइये।

क्रान्ति हिंसा से नहीं हो सकती

मैं एक गरीब की कहानी सुना रहा हूँ। ऐसी कहानी जो हमने भारत में कही थी जब बन रही है। एक तीन एकड़वाला अपनी सब जमीन देना चाहता था। मैंने उसे रोका, फिर भी उसने एक एकड़ दी। वह इतनी ज्यादा जमीन देना चाहता था कि मुझे ही कहना पड़ा 'मत दो'। मैं कहता हूँ कि बड़े लोग इसी तरह गरीबों के समान दान दें तो फिर मुझे कहना पड़ेगा कि 'इतना मत दो। कुछ कम करो।' अगर ऐसा करोगे तो हिंदुस्तान में एक ऐसी क्रान्ति होगी जो आज तक कभी नहीं हुई थी। अहिंसा से क्रान्ति करो हिंसा से क्रान्ति हो ही नहीं सकती। हिंसा एक ऐसी मूढ़ शक्ति है, जो क्रांति नहीं ला सकती। वह एक ऐसा उलटपलटा करती है कि उससे दूसरी तरह बुराइयाँ पैदा हो जाती हैं। इसलिए क्रांति तो अहिंसा से हो सकती है। ऐसी क्रांति करो तो दुनिया में आपकी इज्जत बढ़ेगी और दुनिया को आकार देने की शक्ति हमारे हाथ में आ जायगी।

क्रांतियाँ फुरसत से नहीं होतीं

आज हिन्दुस्तान की आवाज दुनिया में सुनाई देती है। इसके पहले तो सुनाई नहीं देती थी। यहाँ के लोग गांधी टैगोर आदि के ग्रंथ पढ़ते थे। क्योंकि उन्हें पढ़े बगैर चारा नहीं था। फिर भी वे सोचते थे कि ऐसे कुछ लोगों को छोड़कर हिन्दुस्तान में बाकी सब मुर्दे हैं। लेकिन आज हमारी बात दुनिया में सुनी जाती है। अगर आप भूमि का मसला शान्ति से हल करोगे तो शान्ति का इतना काम होगा जो लाखों सैनिक खड़े करने से नहीं होगा। हमें बहुत बड़ा काम

करना है, उसके लिए कार्यकर्ताओं की एक फौज खड़ी होनी चाहिए। शान्ति मुफ्त में नहीं होगी, उसके लिए तो कीमत देनी पड़ती है। इस काम में हमें पक्ष-भेदों को भी भूलना चाहिए और अपना व्यक्तिगत अहंकार भी नहीं रखना चाहिए। निरहंकार बुद्धि से गरीबों का काम करनेवाले कार्यकर्ताओं की आज आवश्यकता है।

इसुआ
१५-१-५१

सद्विचार की अमोघ शक्ति : १२ :

विचार की एक महिमा और एक शक्ति है। हम समझते हैं कि विचार की शक्ति की बराबरी करनेवाली दुनिया में दूसरी कोई भी शक्ति नहीं है। एक सवाल पूछा गया कि इधर तो आप सद्विचार का प्रचार करते चले जा रहे हैं और उधर अणु-बम की तैयारी है, उससे भी आगे हाइड्रोजन बम आनेवाला है। तब आपका यह विचार और उपदेश उसके सामने कहाँ तक टिक सकता है?

विचार का व्यक्तरूप : अणु-बम या दान-पत्र

हम सोचते हैं कि अणु-बम में जो शक्ति आयी है, वह विचार से ही आयी है। चाहे वह विचार सद्विचार हो या न हो, वह एक विचार जरूर है। विचार से ही मनुष्य प्रवृत्त होता है और दुनिया को वश करने के लिए उसने शस्त्रास्त्र तैयार इकट्ठे किये हैं। किंतु वे सारे शस्त्रास्त्र स्वयमेव कुछ रूपान्तर तो कोई काम नहीं कर सकते? उन्हें बनानेवाले ने भी विचार का ही तो आश्रय लिया था। इनकी कल्पना करनेवाले के मन में भी एक विचार आया था और उपयोग करनेवाला भी एक विचारवान् मनुष्य ही होता है। इस तरह इसके आदि, अन्त और मध्य—तीनों में विचार ही विचार है। उसका व्यक्तरूप अणु-बम भी हो सकता है और दान-पत्र भी। दान-पत्र एक कागज नहीं है और न अणु-बम दुनिया का एक मसला है। दोनों के पीछे विचार की प्रेरणा है।

मुझे तो अणु-बम की शक्ति ही बता रही है कि विचार में क्या ताकत होती है। जो सद्विचार होता है, वह टिकता है। और जो असद्विचार होता है, वह

एक क्षण के लिए दर्शन तो देता है, लेकिन दूसरे ही क्षण में उसका लय हो जाता है। एक शाश्वत विचार है, तो दूसरा अशाश्वत विचार। कौनसा विचार शाश्वत और कौनसा अशाश्वत है? इसका निर्णय और सत्य-असत्य विचार का निर्णय मनुष्य हमेशा ठीक से नहीं कर पाता। इसीलिए वह कोई भी विचार झट-से ग्रहण कर लेता है। लेकिन जहाँ उसने असद्विचार को ग्रहण किया कि उसके पीछे वह नाना कर्म करता है। नाना यंत्र तंत्र मंत्र अनेकविध योजनाएँ और कल्पनाएँ वह खड़ी करता है। किन्तु जहाँ वह पहचान लेता है कि यह विचार गलत है तभी सारा तंत्र मंत्र योजना कल्पना एक क्षण में खतम हो जाती है। तब मनुष्य उसे सहन नहीं कर सकता। उस सारी रचना को वह तोड़ डालता है। जब इस असद्विचार जान जाता है, तो इसे छोड़ देने में उसे देरी नहीं लगती। जहां ठीक दर्शन नहीं होता वहाँ सम्यक् ज्ञान नहीं होता। फिर यह मनुष्य-समाज गलत रास्ते पर जा सकता है।

विचार की सत्ता

किंतु हम तो उसे 'प्रयोग' कहते हैं। जैसे ज्ञान विज्ञान के प्रयोग होते हैं, वैसे ही समाजशास्त्र के भी प्रयोग अनादिकाल से चलते आ रहे हैं। जब से सृष्टि का निर्माण हुआ तभी से ये प्रयोग चलते आ रहे हैं। एक विचार जब असत् विचार सिद्ध होता गया तब मानव उसे छोड़ नया विचार ग्रहण करता गया। समाज शास्त्र, अध्यात्म शास्त्र, राज शास्त्र, सबमें ऐसा ही हुआ है। जीवन के प्रयोगों में ऐसा ही होता है। एक नया विचार आता है और फिर पहले के विचार को तोड़ दूसरा विचार आता है। लेकिन उसमें भी दोष दीखने लगता है तो उसके संशोधन के लिए तीसरा विचार आता है, जो अति परिशुद्ध होता है। वह जब पुराने विचार को तोड़ता है, तब तीसरा राज चलता है। आज तक दुनिया में विचार के ही राज चले हैं। एक एक विचार आता गया और जाता गया, परन्तु सत्ता विचार की थी। जहाँ तक मनुष्य का ताल्लुक है, विचार की ही प्रेरणा उसे मिली है और दुनिया में जो सारा तंत्र मंत्र चला वह भी उसीके कारण। दुनिया में राज्य विचार का ही चला है।

ऊर्ध्वमूलम् अधःशाखम्

भगवान् ने गीता में एक रूपक बताया है। पेड़ का यह रूपक है। एक ऐसा पेड़ है जिसकी जड़ ऊपर है और शाखाएँ नीचे फैली हैं। मनुष्यजाति का रूपक यह पेड़ है। मनुष्य का मस्तिष्क ऊपर है, जहाँ से सारे विचार प्रकट होते हैं। हस्तपादादि ये जो शाखाएँ हैं—जिनसे सारा काम बनता है—वे नीचे फैली हुई हैं। इसलिए मनुष्य का वर्णन 'ऊर्ध्वमूलम् अधःशाखम्' ऐसा किया गया है। यह पेड़ अश्वत्थ है, याने टिकता है। ऐसा अजीब यह वृक्ष है कि जो टिकता है और नहीं भी टिकता। इसकी जड़ ऊपर है। इसका मतलब यह है कि विचार का मूल ऊपर है और विचार के अनुसार अनेक शाखाएँ पल्लवित और पुष्पित होती हैं। पेड़ के टिकने का और न टिकने का मतलब यह है कि जब एक विचार सही मालूम होता है, तो उसके अनुसार मनुष्य अपने जीवन की रचना आरम्भ करता है। जब वही विचार स्थिर होकर ऊपर पकता है, उसीके अनुसार समाज का निर्माण होता और जीवन बनता है। मकान, रास्ते आदि सारा इन्तजाम उस विचार के अनुसार, उस विचार के पोषण के लिए मनुष्य बनाता है। इसीको 'संस्कृति' या 'सभ्यता' कहते हैं। यह सारी विचार की महिमा है। किन्तु जहाँ उस विचार में उसे अपूर्ण विचार का भाग मालूम होता है, वहाँ वह सारा ढाँचा बदल देता है। इस अर्थ में यह वृक्ष टिकता नहीं है। जहाँ उस विचार में कसर मालूम होती है, वहीं वह विचार खतम हो जाता और दूसरा आता है। परन्तु यह वृक्ष टिकता है याने मनुष्य का सारा कार्य विचार के अनुसार चलता है।

राज्य विचारों का हो

जिस जमाने में जो विचार सही मालूम होता है, उसके अनुसार सारा जीवन चलता है। विचार बदलता जाता है, पर जीवन चलता ही है उस विचार के अनुसार। याने विचार स्थिर भले ही न हो सके, विचार के जरिये नित्य-निरन्तर चलते हैं। समाज शास्त्र में इन मामलों को 'क्रान्ति' कहते हैं पर अध्यात्म-शास्त्र में उसे 'विचार-मन्थन, विचार-शोधन या संशोधन'। नाम कुछ भी हो, उसका मूल उद्गम जो होता है, वह विचार में ही होता है। इसलिए लोकसेवकोंको विचारशील

लोग, जिन्होंने दुनिया की असलियत को अच्छी मूलनीति को पहचान लिया है विचार को अपने हाथ में से नहीं जाने देते। वे विचार का निरंतर प्रचार करते रहते हैं। एक बार समझाने से विचार समझ में न आवे, तो सब्र रखते और दुबारा उसे समझाते हैं। अगर एक ही युक्ति से विचार समझ में न आवे, तो उसे समझाने में दूसरी युक्तियाँ काम में लाते हैं। जैसे विद्यार्थी को समझाते समय एक पद्धति से अगर उसकी समझ में न आयी तो शिक्षक यह मानता है कि विचार समझाने का और मौका मिला है और इसलिए वह उत्साहित होता है, वैसे ही समाज को भी हम निरन्तर विचार समझाते हैं। सारा समाज खुद व खुद अपना ढाँचा बदलेगा जब उसकी समझ में यह विचार आ जायगा। अतः एक बार विचार समझ में आ जाय तो जिन हाथों ने ये सारे शस्त्रास्त्र निर्माण किये हैं वे ही हाथ उन्हें खतम कर देंगे। जिन हाथों ने यह सारा माया का संसार निर्माण किया है, वे ही उसका संहार कर देंगे। इसलिए सत्ता तो विचार की ही चलती है।

हम अनन्त शस्त्रधारी हैं

जो विचार में श्रद्धा रखते हैं वे जानते हैं कि यह सारा मृग जल है। सूर्य की किरणों से मृग-जल लहरें मारता है लेकिन जहाँ चन्द्रमा का प्रकाश फैला कि मालूम होता है यह सब मृग जल है। मेरी आँखों के सामने मैं यह देख रहा हूँ। लोग मुझे सुना रहे हैं कि तुम्हारी तूती की आवाज इस नगाड़े के सामने कौन सुननेवाला है? वे कहते हैं जब दुनिया चारों ओर शस्त्र बढ़ाने की बात कर रही है तब कहते हैं कि देश रक्षा के लिए शस्त्र बढ़ाने चाहिए और हरएक देश अपनी आमदनी का बहुत सा हिस्सा राष्ट्र संरक्षण के नाम पर पशु शक्ति में ही खर्च कर रहा है, तो इसके सामने आपका क्या चलेगा? तब हम कहते हैं आपके पास चाहे कितने शस्त्र हों पर हम तो अनन्त शस्त्रधारी हैं। इसलिए आपके पास जो शस्त्र हैं, वे बहुत हैं फिर भी इने गिने हैं और हमारे पास जो शस्त्र हैं वे तो अनन्त हैं। विचार के जो अनन्त शस्त्र हैं उनका पता भी नहीं चलता परन्तु जहाँ विचाररूपी सूर्य-नारायण अपने अनन्त परशुओं से, किरणों

से प्रकाशित होता है, वहाँ अन्धकार टिक नहीं सकता। इसलिए हम श्रद्धा से दो साल से यही राम नाम लेते जा रहे हैं।

विचार का प्रचार आसमान से होता है

मुझे विश्वास था कि विचार-बीज बोया जा रहा है और उसका मजबूत वृक्ष होगा। मैं यह देख रहा था। मेरी आपसे भी प्रार्थना है कि आपकी विचार की श्रद्धा कभी भी ढीली नहीं होनी चाहिए। वह हमेशा मजबूत रहे। सद्विचार पर बुद्धि स्थिर रखने का ही नाम है 'श्रद्धा'। यही श्रद्धा मनुष्य को बल देती है, मनुष्य का जीवन बनाती है, उसे सब तरह से प्रेरणा देती है। किसी एक अकेले मनुष्य के मन में कोई सद्विचार निर्माण हो तो वह सारे विश्व में फैलेगा। इसे यद्यपि लोग जानते नहीं हैं, किन्तु जो सोचते हैं, वे जानते हैं कि विचार के प्रचार के लिए ही सारा आसमान खुला पड़ा है। विचार का प्रचार सिर्फ रेडियो से नहीं होता। रेडियो से भी एक शक्तिशाली साधन है, आसमान। जैसे आसमान में वायु बहती है, वैसे ही विचार भी बहते हैं। उन्हें कोई रोक नहीं सकता। वे विचार मनुष्य के हृदय में सीधे पैठ जाते हैं। सृष्टि के किसी भी कोने में जंगल में या किसी एकान्त गुफा में एक सद्विचार पैदा हुआ, तो दुनिया में फैलने के लिए उसे निकलना ही पड़ता है, उसे कोई रोक नहीं सकता, चाहे उसके फैलने में कुछ समय लगे। आकाश में हम असंख्य तारकाओं को रोज देखते हैं, पर उनका प्रकाश यहाँ तक आने में बरसों लग जाते हैं। ध्रुव को हमने आज देखा, माने तीस साल पहले जो ध्रुव था, उसे हम आज देख रहे हैं। तीस साल पहले जो प्रकाश वहाँ से निकला था, वह आज मुझे दीख रहा है। वैसे ही विचार-प्रचार की बात है।

अंधकार का प्रकाश पर आक्रमण नहीं हो सकता

प्रकाश के प्रचार के समान ही विचार का प्रचार भी आसमान से होता है, बल्कि प्रकाश के प्रचार को चाहे आसमान रोक सके, लेकिन विचार के प्रचार को वह भी रोक नहीं सकता। इसलिए विचार पर मेरी श्रद्धा है और मैं निर्भय होकर काम करता हूँ। मैं दुनिया में अनेक प्रकार देखता हूँ। अभी मध्य

शहर में आया तो मेरी ऐसी हालत हुई जैसे किसी जंगल के जानवर को राज-महल में लाने से हो जाती है। उसे यह राजमहल सुनसान लगता है क्योंकि जंगल का मजा और ही रहता है। मेरी हालत भी शहर में वैसी ही हो जाती है। यहाँ तो चारों ओर धूमधाम है। जिधर देखो उधर आपाधापी मच रही है। रेडियो बजते हैं, सारा माया का बाजार चल रहा है और लोग ठगे जा रहे हैं। किसीको फुरसत नहीं है। जो उठता है, वह कुछ-न-कुछ करने लग जाता है। ऐसा प्रकार ऐसा विस्तार मैं देखता हूँ तो मेरी हालत जंगल के जानवर जैसी हो जाती है। लेकिन मुझे कभी भी यह भास नहीं होता कि इनका मुझ पर आक्रमण होनेवाला है। क्योंकि यह तो अज्ञान है। अज्ञान का मुझ पर क्या आक्रमण हो सकता है? क्या ये सिनेमा मुझे रात को जगाने के लिए प्रेरित करेंगे? क्या यह सिगरेट मेरे मुँह में जबर्दस्ती आकर बैठ सकती है? क्या इस सिनेमा और सिगरेट का मुझ पर आक्रमण हो सकता है? यह तो सारा अज्ञान है। दीपक के सामने अँधेरा टिक नहीं सकता। दीपक से पूछें कि अरे, यहाँ तो गहरा अंधकार है, तो तेरा क्या होगा? तो दीपक कहेगा कि जितना घना अंधकार है उतना ही मेरे लिए अच्छा है, क्योंकि मैं तो उसका छेद-भेद कर सकता हूँ। इसलिए गहरा अंधकार हो तो मेरे लिए खुशी की बात है। वह कहेगा, अगर इतना घना अंधकार न हो तभी कठिन बात है। वैसे ही मैं जब यह सारा मायाजाल देखता हूँ तो यह सारी सृष्टि मिथ्या दीखती है। यह टिकनेवाली नहीं है, स्वप्न नगरी है। जैसे स्वप्न खतम होने के बाद स्वप्न नगरी नहीं रहती है, वैसे ही जब विचार ने पक्का जाना कि यहाँ यह सब खतम होनेवाला है।

नगरों का भविष्य

भगवान् ने इन्द्र का नाम 'पुरंदर' याने नगरों का विनाश करनेवाला कहा है। यह शब्द सत्य होकर रहेगा। मेरे सामने ये जो बम्बई, कलकत्ता, रायनगर जैसे बड़े-बड़े शहर हैं और जब लोग कहते हैं कि ये बढ़ रहे हैं, तो मैं कहता हूँ कि बढ़ने दो यह मृगजल बढ़ने दो। लेकिन ज्यों ही विचार समझ में आयेगा लोग यह सारा छोड़ देंगे। यहाँ यह विचार समझ में आयेगा कि रात को तो सिनेमा

नहीं देखना चाहिए, उत्तम उत्तम नाटक देखने चाहिए, जो आत्मा को ऊँचा पहुँचाते और अनंत ज्ञान देते हैं, वहीं सिनेमा बंद हो जायगा। मनुष्य सृष्टि को कम दे सकता है, पर सृष्टि मनुष्य को कम नहीं दे सकती। मुझसे एक पूछा गया कि आपको प्यास लगी, तो पानी आपको पीना ही होगा। तब क्या आपका जीवन पानी पर निर्भर नहीं रहेगा? मैंने कहा कि मैं पानी पीना चाहूँगा, तो पानी पीऊँगा लेकिन पानी खुद होकर मेरे गले में नहीं जा सकता। पानी, अन्न, यह सारी जड़ सृष्टि है और मैं चेतन हूँ।

विचार-धारा सतत बहती रहे

इसलिए मैं अपने कार्यकर्ताओं को समझाता हूँ कि वे विचार पर श्रद्धा रखें। हमारे कार्य में सातत्य की भी कमी है। इसलिए मनुष्य अधकचरा है और थोड़ी देर श्रम करके ही चुप बैठता है। लेकिन सचमुच श्रद्धा से निरंतर प्रचार करते रहना चाहिए, पर हम ऐसा नहीं करते। जैसे नदी निरंतर बहती रहती है, कभी थकती नहीं वैसे ही हमारा प्रचार निरंतर चलना चाहिए। हमारा अमर सद्विचार है, तो सारी दुनिया को उसे कबूल किये बगैर चारा नहीं। पहले लोग हमसे पूछते थे कि आपका काम अच्छा है, पर पूरा होने में कितना समय लगेगा? वे मिनिट में पूछते थे, तो मैं भी मिनिट में किन्तु गणित करके जवाब देता था कि पाँच सौ साल लगेंगे। हमारा इरादा प्राप्त करने के लिए पहले साल के हिसाब से पाँच सौ साल ही लग जाते। लेकिन हमने काम जारी रखा। हमारे मन में यह विचार ही नहीं आया कि पाँच सौ साल तक हम कैसे जियेंगे। अब हमसे कोई पूछता है, तो हम कहते हैं कि पचास साल लगेंगे, क्योंकि अब दसगुनी रफ्तार बढ़ गयी है। पर हमारा विश्वास है कि हम सद्विचार का निरंतर प्रचार और चिंतन करते रहें तो तीसरे साल कोई वजह नहीं कि और दसगुना काम न बढ़े।

मंगल के सामने अमंगल टिक नहीं सकता

यह विचार की महिमा है। "नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।" ज्ञान के समान पवित्र वस्तु कोई नहीं है। उसके सामने कोई अमंगल विचार टिक नहीं सकता। मैं जमीन का मालिक हूँ, यह एक अमंगल विचार है और मैं जमीन का सेवक हूँ यह एक मंगल विचार या सद्विचार है। दुनिया को उसे

कबूल करना ही पड़ेगा, इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है। इसलिए हम अपने कार्यकर्ताओं से कहते हैं कि सतत काम करो। हमारा शरीर कितना गंदा है! हम अन्न खाते हैं, तो भी उसका मल-मूत्र बनता है। फिर भी हम उसे हर रोज स्वच्छ रखते हैं, क्योंकि हमने स्वच्छता का व्रत लिया है। हम धोने में हार नहीं मानेंगे। हम शरीर से कहते हैं कि तू गन्दा होता रहता है, तो मैं भी तुझे धोता रहूँगा। याने यह गन्दा शरीर भी पवित्र बनता है और उससे हम अच्छे काम कर सकते हैं, गन्दे शरीर से भी स्वच्छ काम ले सकते हैं। इसलिए हम कार्यकर्ताओं को सद्विचार में दृढ़ करना, मजबूत बनाना चाहते हैं।

अब बहरा भी हमारा विचार सुनेगा

आप निराश मत होइये। यह मत सोचिये कि हमारे खिलाफ दुनिया में ताकतें खड़ी हैं। बल्कि यह सोचिये कि ये ताकतें तो जीर्ण-शीर्ण हो चुकी हैं, मर चुकी हैं। वे असद्विचार हैं। असत्कल्पना बाजार में हो, उसका कितना भी प्रचार हो और उसका भाव बढ़ा हो, तो भी वह मर चुकी है। उसकी प्रतीति ही आयेगी कि वह गलत है, इसलिए एक क्षण में नष्ट होनेवाली है। उसे नष्ट करने में हमें तकलीफ नहीं होगी। अब कार्यकर्ता कहते हैं कि लोग पूरे दिल से अभी दान नहीं देते, तो मैं कहता हूँ कि वे आज [illegible] नहीं दे रहे हैं कि कल देनेवाले हैं। यह सद्विचार है और मनुष्य विचार करनेवाला प्राणी है। मनुष्य का मतलब ही है विचार करनेवाला। 'मन्' धातु से यह शब्द बना है। इसलिए छह महीने पहले हम जितने उत्साह से विचार का प्रचार कर रहे थे, आज भी उसी उत्साह से कर रहे हैं। भगवान् चाहेगा और अगर जमीन का मसला हल नहीं होगा और जब तक हिन्दुस्तान को यह विचार कबूल नहीं होगा, तब तक हम प्रचार करते रहेंगे। जो फल की वासना नहीं रखता है, उसकी बीज पर श्रद्धा है, फल पर नहीं। वह जानता है कि बीज है तो फल है ही। इसलिए मैं श्रद्धा से सातत्य से समाज के कानों में यह विचार समझाता जाऊंगा और एक दिन आयेगा कि जब बहरा भी हमारा विचार सुनेगा।

गया

१-५-'५३

क्रान्ति विचार से ही होती है

[तरुण कार्यकर्ताओं के साथ चर्चा]

प्रश्न : "क्या भूदान यज्ञ-कार्य के लिए हम कॉलेज छोड़ें ?

उत्तर : मैंने तो कहा कि भूदान यज्ञ में काम न करना हो तो भी कॉलेज छोड़ दीजिये। हम तो सन् सोलह में कॉलेज छोड़कर ही निकले थे। पर जिन्हें एक साल के बाद मोह होगा, वे फिर से कॉलेज में जा सकते हैं। और एक साल यह काम करते हुए अगर उनका मोह छूट गया, तो ठीक ही है। जो विद्यार्थी एक साल के बाद पुरानी तालीम नहीं चाहते, उनके लिए तालीम देने की इस सेवा-कार्य के जरिये एक योजना हो सकती है। उनके लिए नयी तालीम का कुछ इन्तजाम हो सकता है। हरएक प्रान्त में एक-दो ऐसी संस्थाएँ शुरू करनी हैं। जो विद्यार्थी काम करना चाहते हैं वे तीन प्रकार के होंगे : (१) कुछ तो ऐसे होंगे जो सिर्फ छुट्टी में काम करेंगे, (२) कुछ ऐसे होंगे, जो एक साल के लिए कॉलेज से मुक्त होकर काम करेंगे, और (३) कॉलेज से बिलकुल ही मुक्त होकर काम करेंगे।

"लिंकन महाशय जब कॉलेज में थे तो बहुत ही कमजोर थे। इसलिए उन्होंने एक साल कॉलेज छोड़कर व्यायाम किया और चार साल का कोर्स उन्होंने पाँच साल में किया। उन्होंने कहा है कि 'उसमें मैंने कुछ खोया नहीं,' इसीके आधार पर जिन्दगी की तसवीरें खींचीं। उन्हें तसवीरें कितनी खींचनी पड़ीं यह तो सभी जानते हैं।

तेलंगाना में कम्युनिस्टों की जीत

प्रश्न : "लोगों का विचार है कि भूदान-यज्ञ से साम्यवाद को भारत में फैलने से रोका जा सकता है। तो क्या तेलंगाना में अब साम्यवादी पार्टी का उतना जोर नहीं है ?"

उत्तर : तैलंगाना में भूदान-यज्ञ का विशेष काम हुआ हो नहीं। जो हमने किया उसके बाद वहाँ कुछ भी नहीं हुआ। जिन्होंने हमारे साथ कुछ काम किया वे चुनाव के लिए खड़े नहीं हुए। चुनाव के लिए तो कांग्रेसी खड़े हुए और उसी समय कम्युनिस्टों ने अपनी नीति बदली, इसलिए उन्हें जेल से छोड़ा गया। इस तरह जो दो दो तीन-तीन साल तक जेल में रहे वे अब छूटकर 'हीरो' बन कर आये थे। इसीलिए वे जीते। कांग्रेसवाले खुद कुछ काम किये बिना हमारे पुण्य पर मुफ्त में नहीं जीत सकते।

'हमारा काम कम्युनिज्म रोकने का नहीं है। यह एक स्वतंत्र विचार है। यह 'पॉजिटिव' है, 'निगेटिव' नहीं। हिन्दुस्तान में गरीबी है। अगर वह अच्छे तरीके से दूर की जा सकती है तो कोई भी बुरा तरीका इस्तेमाल न करेगा। किसीको प्यास लगी है और पीने को स्वच्छ पानी मिल जाता है तो वह गंदा पानी क्यों पियेगा? लेकिन स्वच्छ पानी न मिले, तो वह गंदा पानी पी सकता है। हिन्दुस्तान में अच्छे तरीके से गरीबी की समस्या हल होगी तो बुरा तरीका नहीं आयेगा। तेलंगाना में हमने दो महीनों में बारह हजार एकड़ जमीन इकट्ठी की थी। उसके बाद वहाँ के लोगों ने कुछ भी नहीं किया। वह बारह हजार आरंभ-मात्र ही था। अगर वहाँ वालों से यह काम चले तो लोगों की श्रद्धा इस पर बैठेगी।"

भारतीय साम्यवादी

प्रश्न : 'भारतीय साम्यवादियों को आप कैसा समझते हैं?'

उत्तर : "भारतीय साम्यवादी उन्हें कहा? हिन्दुस्तान में तो हम साम्यवाद का कोई काम हो नहीं देखते। यहाँ के साम्यवादियों ने जो कुछ थोड़ा-सा किया है तैलंगाना में किया। वहाँ उन्होंने चार साल लगातार खून, लूटमार इत्यादि चलायी। लेकिन उसका नतीजा यह हुआ कि वहाँ पर किसान को कुछ भी नहीं मिला। इसलिए मैं तो समझता हूँ कि साम्यवादी लोग कुछ भी रचनात्मक काम नहीं करते सिर्फ प्रचार करते हैं। प्रचार का काम वे उत्तम रीति से करते हैं। यहाँ के कम्युनिस्ट तो सिर्फ प्रचारी ही नहीं, वह क्रूड भी हैं। बहुत ग़जब एक बात है।

इसलिए वे सिर्फ कारखानी ही होते तो कोई हर्ज नहीं होता। लेकिन वे तो अगर रूस में क्या हो रहा है, यह देखकर सारा काम करते हैं। रूस का रूप बदला तो इनका भी रूप बदल जाता है। इनकी कोई स्वतन्त्र अक्ल नहीं है। इसलिए हम इन्हें भला-बुरा कुछ भी नहीं कह सकते। जो स्वतंत्र अक्ल से काम करता है, उसीके बारे में हम अपनी राय दे सकते हैं। इसलिए अगर भला-बुरा कुछ भी कहना है, तो उन्हें कहना चाहिए, जो इनके मार्गदर्शक हैं।

"साम्यवाद का एक भ्रम है और ग्राम-समाजियों के समान साम्यवादी भी उसी विचार को प्रमाण मानते हैं, एवं परिस्थिति और अक्ल दोनों को छोड़ देते हैं। दरअसल विचार, अक्ल और परिस्थिति तीनों का समन्वय होना चाहिए। पर वे लोग ग्रंथ को वेद मानते हैं। आज मार्क्स हिन्दुस्तान की परिस्थिति में होता तो अपने विचार में अवश्य परिवर्तन करता। मैं कम्युनिस्टों से कहता हूँ कि आप मार्क्सियन् हैं, परन्तु मार्क्स खुद मार्क्सियन् नहीं था, वह मार्क्स ही था। इसलिए वह बहुत अक्लमंद था। कम्युनिस्ट लोग हिन्दुस्तान के दस हजार साल के सारे विचार-प्रवाह के बारे में कुछ भी ज्ञान नहीं रखते। उस विचार में अगर दोष हो तो उसे जानने के लिए भी उस विचार का ज्ञान होना चाहिए। इसलिए कम्युनिस्टों में दो मुख्य दोष देखता हूँ : एक तो वे पुस्तक-पूजक हैं और दूसरे, वे यहाँ के विचार-प्रवाह को नहीं जानते।

संस्था की मर्यादा

प्रश्न : "क्या इतना बड़ा यज्ञ संस्था के बिना सुचारु रूप से चल सकता है?"

उत्तर : "हम संस्था के बिलकुल खिलाफ नहीं हैं। आप स्थानिक संस्थाएँ खड़ी कर सकते हैं। लेकिन जहाँ अखिल भारतीय संस्था खड़ी करने की बात आती है, वहाँ अनुशासन आता है और फिर सारा मामला 'बोगस' हो जाता है। हम इससे मुक्त रहना चाहते हैं। जब व्यापक संस्था निकम्मी होती है, तो उसका नाहक अभिमान ही पैदा होता है और काम नहीं होता। उसका दैनिक किस्सा है—हम फलानेवाले, हम सोशलिस्ट, ऐसा कहा जाता है। हर कोई अपना अलग-अलग पंथ बनाते हैं मानो सारी दुनिया से अलग रहते हैं। सारी दुनिया

को अपना काम देने के बजाय दुनिया से ही अलग रहते हैं। अगर हम कोई खास संस्था बनाते, तो आज हमें जो सहयोग मिल रहा है, वह न मिलता।"

चीन की मिसाल

प्रश्न : "चीन की आधुनिक जन-सरकार तीन वर्ष के अन्दर ही इतनी उन्नति कर गयी कि जितने विदेशी वहाँ जाते हैं वे आश्चर्य से चकित होकर बड़ाई करने लगते हैं। क्या भारत की परिस्थिति ऐसी नहीं कि अपने देशवासियों को सुखी बनाने के लिए वह चीन का रास्ता अपनाये? क्या आपका भूदान-यज्ञ ऐसा माध्यम साबित हो सकता है कि वह इतने कम समय में चीन की तरह देश की उन्नति करे?"

उत्तर : चीन की तारीफ बहुत से लोग करते हैं। किन्तु चीन में एक राज्य-क्रांति हुई है। ऐसी राज्य-क्रांति जहाँ होती है, वहाँ दूसरे तरीके से काम होता है। उसके लिए चीन में तीस साल तक 'सिविल वार' हुआ है। पर उसे कोई नहीं देखता और सिर्फ राज्य-क्रांति के बाद का दो-तीन साल का काम देखते हैं। लेकिन राज्य-क्रांति के बाद सरकार के हाथ में जो शक्ति आती है वैसी शक्ति हिन्दुस्तान के पास नहीं है। वह शक्ति भी नहीं है और आपकी सेना भी काफी नहीं है। आज जो सेना है, उसे रखने में ही तो बजट का साठ प्रतिशत खर्च हो जाता है। इसलिए और सेना बढ़ानी हो तो सारा खर्च सेना ही खा जायगी। इसलिए चीन का उदाहरण अपने देश को लागू नहीं होता। फिर भी हम मानते हैं कि अभी हमारी सरकार जितनी प्रगति कर रही है, उससे अधिक प्रगति कर सकती है। किन्तु कांग्रेस आज राज्यकर्ता जमात बन गयी है। इसलिए उसमें पूँजीवादी भी आ गये हैं। उनके खिलाफ काम करने की हिम्मत सरकार में नहीं है। और मुख्य बात यह है कि अब तक विचार की सफाई ही नहीं हुई है।

राष्ट्रीकरण का प्रश्न

प्रश्न : "भारत सरकार बड़े-बड़े कारखानों का राष्ट्रीकरण क्यों नहीं करती?"

उत्तर : "इसका कारण एक तो यह है कि सरकार उस विचार को मानती नहीं है। सरकार पर पूँजीवाद का असर है। फिर राष्ट्रीकरण होने से बहुत लाभ होगा,

उसकी भी इस काम से परख हो जायगी। संस्कृत में श्लोक है कि 'वसंतसमये प्राप्ते काकः काकः पिकः पिकः' कौआ और कोयल दोनों काले होते हैं पर वसंत ऋतु आने पर दोनों की पहचान हो जाती है। इसी तरह इस काम में जो नकली लोग होंगे, वे ढीले पड़ेंगे। पर नया नेतृत्व इस काम में नहीं होगा तो और किस काम में होगा? यह एक ऐसा आन्दोलन निकला है, जो सारे समाज को त्याग की प्रेरणा देता है। इसमें नये-नये लोग आ रहे हैं और उससे नया नेतृत्व निर्माण होता है।

बुरों का साथ क्यों?

प्रश्न : "आप कहते हैं कि साधन अच्छे हों, यह हमारा आग्रह है। फिर आप भूदान-यज्ञ के काम के लिए बुरे मनुष्यों का उपयोग क्यों करते हैं?"

उत्तर : "जो बुरा मनुष्य माना जाता है, वह कायम का बुरा है ऐसा नहीं है। जैसा पुराना ख्याल था कि ब्राह्मण के कुल में जन्म हुआ तो वह ब्राह्मण ही रहेगा, उसमें परिवर्तन नहीं हो सकता, वैसे ही यह प्रश्न-कर्ता सोचता है। किन्तु मनुष्य में हमेशा परिवर्तन हुआ करता है। इसलिए हम मनुष्य को अच्छा या बुरा नहीं मानते। साधन कैसे हों, यह हम देखते हैं। अगर बुरा मनुष्य भी इस काम में आयेगा और धमका कर जमीन माँगेगा तो जमीन नहीं मिलेगी। अगर वह धमकाने लगेगा तो लोग उससे कहेंगे कि विनोबाजी तो ऐसा नहीं कहते। इस प्रकार से वह धमकानेवाला फीका पड़ जायगा। जो यह माने कि 'इसमें किसी भी तरह का लोभ या भय दिखाया जा सकता है' तो उससे जनता साफ-साफ कह देगी कि 'तू इस खेती में बोया नहीं देता'। इस प्रकार इस काम में प्रतिक्षण भले-बुरे की परीक्षा होती है।"

गया
५-५-'५२

एक सज्जन ने अहिंसा के विषय में कुछ विवेचन किया है। अहिंसा को माननेवाले कुछ लोग होते हैं। बहुत से अहिंसा को मानते भी नहीं। जो अहिंसा को नहीं मानते, वे कहते हैं कि उससे चाहे कोई व्यक्तिगत मसला हल हो जाय, पर जब तक समाज में दुर्जनता मौजूद है, तब तक समाज के मसले हल नहीं हो सकेंगे। हम उनकी बात छोड़ देंगे। यद्यपि हिंसा से कोई मसला हल होता है यह सिद्ध नहीं हुआ है, फिर भी अहिंसा-शक्ति सामुदायिक तौर पर सिद्ध करने की बात है। कुछ तो अहिंसा के प्रयोग हुए हैं, पर आजकल समाज जितना व्यापक बना है उतने व्यापक प्रयोग अभी तक नहीं हुए हैं। इसलिए जो अहिंसा शक्ति पर विश्वास नहीं रखते, हम उनसे कोई खास चर्चा करने की जरूरत नहीं मानते। लेकिन जो उसमें विश्वास रखते हैं उन्हें लगता है कि अहिंसा से काम तो बनेगा और स्थायी बनेगा, पर उसमें अरसा समय लगेगा। उस सज्जन ने लिखा है कि ऐसा लगता है कि अहिंसा से काम तो होगा पर धीमे ही होगा। इस लेख पर उन्होंने मेरा अभिप्राय पूछा था और मैंने आज ही उन्हें जवाब दिया है। मैंने लिखा कि 'यह बात तो ठीक है। 'भूमिदान' ने सिखाया है कि दो भिक्षुओं में कम-से-कम फासला तय कर देगा है। इसलिए अहिंसा शीघ्र परिणाम-कारी होगी ऐसी ही अपेक्षा होनी चाहिए।

अहिंसा शीघ्र परिणामकारी कब ?

अहिंसा में जो मुख्य वस्तु है वह यह कि उसकी प्राप्ति हमें कहाँ तक हुई है। अहिंसा की प्राप्ति हो जाय, तो परिणाम शीघ्र होगा, इसमें कोई शक नहीं। जो भी समय जाता है अहिंसा अपने हृदय में स्थिर करने में जाता है। उतना समय मान लें तो परिणाम शीघ्र होता है। हमारे लिए यह सोचने की बात है। एक शस्त्र का परिणाम जल्दी या देरी से—इसकी हम चर्चा करते हैं पर यह नहीं सोचते कि वह शस्त्र हमारे हाथ में है या नहीं। उसे उठाने के लिए जो

तपस्या और चित्त शुद्धि चाहिए, वह हमने कहाँ की? पर्याप्त चित्त-शुद्धि न हो या उसकी तपस्या हम न करें तो अहिंसा का उदय ही नहीं होगा। सूर्यनारायण का उदय होने के बाद अन्धकार मिटने में देर नहीं लगती। किन्तु उसके उदय में ही समय लग सकता है। वैसे ही अगर थोड़े लोगों के हृदय में भी अहिंसा का वास्तविक उदय हो जाय, तो समाज में वह फैलेगी। विचार और कल्पना में तो हम यहाँ तक मानते हैं कि एक भी मनुष्य परिपूर्ण शुद्ध हो जाय, अहिंसा का साक्षात्कार उसने किया हो तो वह अकेला समाज पर परिणाम पैदा कर सकता है। बापू कई बार यह कहा करते थे। इसलिए अहिंसा का स्थायी व शीघ्र परिणाम के बारे में सन्देह नहीं है। लेकिन अहिंसा के लिए जो आत्मशोधन, तपस्या और शुद्धि चाहिए, वह हम कहाँ तक करते हैं, यही देखना है। वह हो जाय, तो अहिंसा शीघ्र परिणामकारी हो सकती है।

अहिंसा आत्मा की शक्ति

अहिंसा आत्मा की शक्ति है। आत्मा नहीं मरता यही उसकी शक्ति है। हिंसा देह की शक्ति है, देह मारी जाती है। देह से बढ़कर आत्मा की शक्ति है, यह तो मानी हुई बात है। किन्तु हम देह-बुद्धि में फँसे रहते हैं। जिस खिड़की द्वार देखते हैं उस देह को ही मानते हैं। अगर हम देह का आवरण छोड़ देह से परे अन्दर जो वस्तु है, उसकी तरफ देखें तो हमारा सारा व्यवहार—बोलने चालने और सोचने का ढंग ही बदल जायगा। दुनिया दूसरे ही रंग से रँगी दीख पड़ेगी। ऐसा हो जाय, तो ऐसे मनुष्य के स्पर्श में जो आयेगा उस पर उसीका रंग चढ़ेगा। उस मनुष्य पर दूसरे का रंग नहीं चढ़ेगा। यह बात ध्यान में आ जाय, तो हम अगर अहिंसा में विश्वास रखते हैं, उसका सामूहिक प्रयोग करना चाहते हैं, तो मुख्य चिन्ता हमें यह होनी चाहिए कि अपने निजी जीवन में हम उसे कैसे लायें? उसकी उपासना कहाँ तक और कितनी एकाग्रता से हम करते हैं, यही सवाल है।

निज का जीवन-शोधन ही मूल वस्तु

अभी भूदान यज्ञ का आन्दोलन चल रहा है। वैसे ही समाज की आवश्यकता के अनुसार दूसरे भी आन्दोलन चलेंगे। किन्तु उन आन्दोलनों के मूल में जो श्रद्धा

है, वह हृदय-परिवर्तन में है। वह तभी दूर होगी जब हमारा खुद का हृदय परिवर्तित होगा। अक्सर हम मानते हैं कि हमारा हृदय जैसा होना चाहिए, ठीक वैसा ही है। दूसरे का ही परिवर्तन करना हो तो वह हृदय परिवर्तन ढोंग होगा या असंभव मालूम होगा। हृदय-परिवर्तन के बारे में शंका पैदा होती है, तो अहिंसा की मूल शक्ति पर ही प्रहार होता है। हृदय-परिवर्तन के लिए परिस्थिति में परिवर्तन एक अंग ही है। उसे हृदय-परिवर्तन से अलग मानना गलत है। अगर हम किसी विषय की आसक्ति छोड़ना चाहते हैं तो बाहर का वातावरण भी वैसा बना लेते हैं जिससे आसक्ति छूटे। एकाग्रता के लिए हम उसके अनुकूल एकांत ढूँढते हैं। बिना एकांत के एकाग्रता नहीं हो सकती या बिना बाह्य परिवर्तन के हृदय परिवर्तन नहीं हो सकता है—यह मानना एकांगी है। हृदय-परिवर्तन के लिए समाज और परिस्थिति में परिवर्तन करना जरूरी है, यह कहना ठीक है, पर जो चीज जरूरी है, वह हृदय-परिवर्तन से ही बनेगी। एकाग्रता से ही ध्यान होता है। एकांत में भी वह होता है। पर एकांत में चित्त इधर-उधर दौड़ भी सकता है। इसलिए एकांत बाह्य साधन है और एकाग्रता मुख्य वस्तु। वैसे ही अहिंसा-शक्ति के लिए हृदय-परिवर्तन मुख्य वस्तु है। उसके लिए बाह्य परिवर्तन जरूरी है, तो कर लेते हैं।

लेकिन अहिंसा काम करती है हृदय-परिवर्तन के जरिये ही, बाह्य परिवर्तन के जरिये नहीं। हम बाह्य परिवर्तन भी कर तो लेते हैं। लोगों से दान पत्र भरवा लेते हैं, छठा हिस्सा माँगते हैं—यह सारा एक बाह्य परिवर्तन ही है। पर उसके जरिये अन्दर का हृदय परिवर्तन न हो तो काम सफल न माना जायगा। तब तो छठा हिस्सा माँगना टैक्स के जैसा होगा। वैसे तो सरकार भी कानून बनाकर जमीन का छठा हिस्सा ले सकती है पर उससे अहिंसा-शक्ति प्रकट नहीं होगी। अगर अहिंसा-शक्ति प्रकट नहीं हुई तो समाज की प्रगति नहीं होगी। चाहे जमीन का बँटवारा आज से कुछ अच्छा हो जाय पर उससे समाज न सुधरेगा। यह सोचते हुए ध्यान में आता है कि मुख्य वस्तु अपना निज का जीवन शोधन ही है।

मारोमार
८-१ ५१

आज मैं आपके सामने अपना राजनैतिक विचार रखूँगा। आजकल राजनीति कोई ऐसा विषय नहीं रहा जो जीवन से बिलकुल ही अलग हो। पुराने जमाने में राजाओं की सत्ता चलती थी, पर वह सत्ता बहुत ही कम थी। कुछ बादशाह भी जनता को थोड़ी पीड़ा देते थे। आम जनता पर उनका ज्यादा असर नहीं हो सकता था। क्योंकि सरकार पहुँची हुई नहीं थी और न आज के जैसे आमदरफ्त के साधन ही थे। उस समय किसी बादशाह का सारे हिन्दुस्तान में संदेश पहुँचने में महीनों लगा करते थे और बादशाह का हुक्म मानना या न मानना सरदारों की इच्छा पर निर्भर रहता था। निकम्मे जैसे शक्तिशाली सरदार तो हुक्म भी मानते नहीं थे। इस तरह उस समय की सत्ता ही दूसरी थी। उस समय सरकार की सत्ता बहुत सीमित थी। सरकार बहुत ज्यादा जीवन का नियन्त्रण नहीं कर सकती थी सिर्फ विदेश के आक्रमणों का प्रतीकार करने के लिए थोड़ी-सी सेना रखना और सेना के लिए ही रोजगार रास्ते बना देना—ऐसे सीमित काम वह करती थी। जो लोकहितरत्ती राजा होते थे वे प्रजा के लिए कुछ करते थे, पर वह उनका व्यक्तिगत उपकार था। वे लोगों के जीवन का नियमन नहीं कर सकते थे।

अंग्रेज यहाँ आये, तब तक हिन्दुस्तान में कई राज्य हो चुके थे। किन्तु राष्ट्रीय सत्ता जैसी कोई भी चीज उस समय नहीं थी। महाराणा प्रताप की अपने समय पर शिक्षा थी कि उस पर जो मौजूदा मुगलों का कर्जा था, वह उन्होंने राज्य के लिए ही लिया था फिर भी वह उनका व्यक्तिगत कर्ज माना गया। आज मैं माना राजनीति में कुछ साहूकार लेकर उसके आदमी जवान दिखाएं कि हम क्या चुकायेंगे। लेकिन आज तो कई देशों पर कर्ज है। हिन्दुस्तान के सिर पर भी है। अंग्रेजों ने यहाँ जो लड़ाइयाँ लड़ीं उनका कर्ज भी हमारे ही सिर पर है। आज जो सरकार होती है वह चाहे जाती भी रही हो तो भी सरकार

होती है। पहले राज्य व्यक्तिगत इस्टेट थी। एक राजा सब व्यक्तियों के जीवन का नियंत्रण नहीं कर सकता था।

किंतु आज की राजनीति बहुत व्यापक हो गयी है। सारे जीवन पर उसका नियन्त्रण चलता है आज की सरकार अगर पापी कानून बनाये, तो व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि मैं निष्पाप जीवन बिताऊँगा। जीवन के हरएक पहलू पर आज सरकार का नियन्त्रण चलता है। यहाँ तक कि तालीम पर भी सरकार का नियन्त्रण है। पर पहले ऐसा नहीं था। ज्ञानी लोग तालीम देते थे वे स्वतन्त्र थे। पर आज सरकार एक पाठ्य-पुस्तक तय करती है और वही सब स्कूलों में चलती है। उस किताब में क्या होना चाहिए इसका भी नियन्त्रण सरकार करती है। इस तरह शिक्षण जैसा विषय भी जो बिलकुल ही स्वतन्त्र होना चाहिए था आज राज्य के नियन्त्रण में है। कुछ प्राइवेट स्कूल चलते हैं पर उनमें कुछ ही विद्यार्थी आते हैं। मैंने भी एक ऐसा स्कूल चलाया था जिसमें बहुत अच्छे विद्यार्थी तैयार हुए। लेकिन आज गाँव गाँव में जितने स्कूल बनेंगे, वे सरकार के ही बनेंगे। फिर यदि सरकार कम्युनिस्ट आयी तो स्कूल में उनका तत्त्वज्ञान सिखाया जायगा। फासिस्ट शासन हो तो लड़कों को उसी तरह की तालीम मिलेगी। याने जैसी सरकार हो उसीके अनुसार लड़कों के दिमाग बनाये जाते हैं। इस तरह आजकल दिमाग बनाने की बात चलती है। इसलिए राजनैतिक विचार करने की जिम्मेदारी हरएक व्यक्ति पर आती है।

हरएक को एक वोट का हक

आज जो मैं कहूँगा वह जीवन का एक बुनियादी विचार है। आप देखते हैं कि आजकल दुनिया में लोकसत्ता चलती है। सबको वोट का हक दिया गया है। बहुमत से चुनाव होते हैं और कानून भी बहुमत से बनता है। हरएक को एक वोट मिला है। यद्यपि हम सब मानते हैं कि हरएक का चारित्र्य और योग्यता अलग-अलग होती है फिर भी पंडित जवाहरलालजी को भी एक ही वोट का हक मिला है और किसी एक साधारण २१ साल की उम्र के व्यक्ति को भी एक ही वोट का हक मिला है। यह एक बड़ी बुनियादी बात मानी गयी है।

लेकिन कोई भी आदमी तो मालूम होगा कि व्यवहार में ऐसा नहीं होता। घर में भी घर के सब के सब व्यक्ति मिलकर चर्चा करते हैं पर हरएक का वोट का हक नहीं दिया जाता। बच्चों के बाद घर के मुख्य मनुष्य की ही बात मानी जाती है। आजकल वोट की प्रथा चली है, लेकिन सत्य का निर्णय बहुमत से नहीं होता। पृथ्वी घूमती है या सूर्य? इसका निर्णय बहुमत से नहीं हो सकता। इस बात का वोटिंग से क्या सम्बन्ध है। फिर संस्था में आजकल जो निर्णय होता है, उसका क्या मतलब है? पाश्चात्यों ने बहुत ऊपरी-ऊपरी विचार कर बहुमत से निर्णय की बात चलायी। मैंने कहा था कि हरएक को एक वोट का हक है, इसका मतलब यह है कि वे आत्मा की समता मानते हैं, हरएक में समान आत्मा है, यह बात मानते हैं। मैंने यह विवेचन इसलिए किया है कि दूसरी किसी भी दृष्टि से देखा जाय, तो व्यक्ति की योग्यता समान नहीं मालूम होती। इसके लिए मानव आत्मा की समता को ही मानना पड़ेगा। इस तरह मैंने उनके सिर पर आत्मवाद लादा है पर वे आत्मवादी नहीं हैं। पाश्चात्यों ने जो यह बात चलायी है वह अत्यन्त अस्वाभाविक है प्रकृति के और अनुभव के विरुद्ध है।

बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक के झगड़े

फिर भी यह बात चल रही है। इसीलिए आजकल वोट इकट्ठा किये जाते हैं। इस तरह एक किस्म की लड़ाई हो जाती है। फिर वोट हासिल करने के कई तरीके होते हैं। उनमें विचार समझाने की बात नहीं आती क्योंकि बहुत-से लोग विचार समझते ही नहीं। इस तरह एक अत्यन्त स्थूल यांत्रिक गणिती विचार आज समाज में रूढ़ हुआ है। इसलिए जो निर्णय होता है, वह बहुसंख्यकों का होता है और कई बार तो वह ठीक भी नहीं होता। इससे अल्पसंख्यक नाखुश होते हैं। उन्हें लगता है कि हमारा विचार सही है फिर भी वह चलता नहीं। सही विचार चाहे एक व्यक्ति का क्यों न हो सही है। अगर एक व्यक्ति ने भी पहचान लिया कि पृथ्वी घूमती है तो फिर लाखों लोग उसके विरुद्ध हों तो भी सत्य का बदलना नहीं है। जिसने इस बात का शोध किया था वह उस पर अड़ा रहा। उस समय 'चर्च' वाले लोग उसके विरुद्ध थे। वे कहते थे कि पृथ्वी घूमती है, यह

कहना ईसाई धर्म के विरुद्ध है और इसीलिए उन्होंने उसे बहुत पीड़ा दी। अधिक पीड़ा के कारण उसने एक दिन कहा कि मैं वैसा ही लिखूँगा। परन्तु जब लिखने का समय आया तो उसने लिखा : 'पृथ्वी घूमती है, मुझे अब भी वह घूमती हुई दिखाई देती है।' आखिर उसने दस्तखत नहीं किये। इस तरह बहुमत का निर्णय हमेशा सही होता है ऐसी बात नहीं। फिर भी आजकल यह माना जाता है। फिर अल्पसंख्यकों के सामने यह सवाल पैदा होता है कि हम अपना निर्णय किस तरह लादें? फिर इसीमें से हिंसा की बात आती है।

आजकल देश में बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक ऐसे दो पक्ष निर्माण हुए हैं। यह एक नया जातिभेद है। हिन्दुस्तान में तो इसके साथ-साथ पुराने जातिभेद भी आते हैं। एक पार्टी ने एक जाति का मनुष्य खड़ा किया, तो दूसरी पार्टीवाले भी उम्मीदवार चुनते समय जाति का ही विचार करते हैं। वोट इकट्ठा करने के लिए यह सब किया जाता है। विचार समझाना उस पर अमल हो, इसलिए धीरज रखना—यह बात आजकल नहीं रही। पहले जिस तरह तलवार से निर्णय लादा जाता था वैसे ही आजकल तलवार के बदले बहुमत से वह लादा जाता है। तलवार के बारे में कहा जाता है कि उसमें अक्ल नहीं होती इसीलिए हमने उसे छोड़ दिया। लेकिन बहुमत में भी अक्ल नहीं होती। सिरों की गिनती करके निर्णय लेना गलत ही है। इसका नतीजा यह है कि कमजोर पैदा होता है व कशमकश चलती है। सभी एक दूसरों को गिराने की कोशिश करते हैं इसी पर सारी रचना बनती है। आज यह सभी देशों में चला है क्योंकि सर्वत्र सिरों की गिनती करके तब कुछ चलाने की बात चलती है। सिरों के अन्दर क्या भरा है? यह नहीं देखा जाता। मेहरबानी इतनी ही है कि पागल को वोट का हक नहीं दिया गया। मगर इसका इलाज क्या है? यह हम न ढूंढें और पार्लमेण्ट सरकारी पक्ष विरोधी पक्ष उन दोनों में आपस में विरोध—यह सारा पश्चिम का ढाँचा हिन्दुस्थान में लावें, तो यहाँ और भी काम न चलेगा। एक पक्ष दूसरे पक्ष के काम बिगाड़ना ही चाहेगा।

पाँच बोले परमेश्वर

इसके लिए एक ही इलाज है। अपने यहाँ एक धार्मिक रिवाज है। अपने

अक्सर और समझ में ही यह बात है कि 'पंच बोले परमेश्वर'। अक्सर लोग इसका सही अर्थ नहीं समझते। ग्राम-पंचायत निर्णय करे इतना ही इसका अर्थ नहीं। बल्कि यह अर्थ है कि पंचों की एक राय से जो निर्णय होगा वही माना जायगा। लेकिन आज तो चार विरुद्ध एक, तीन विरुद्ध दो—इस तरह सब चलता है। यह जो 'तीन बोले परमेश्वर' की बात आज चलती है, वह खतरनाक है। 'पाँच बोले परमेश्वर' यह चले तभी ठीक होगा। आज भी 'क्वेकर्स' में यह चलता है। वे एकमत से ही निर्णय करते हैं। फिर इसमें और भी कई सवाल उठाये जा सकते हैं।

केन्द्रीकरण के दोष

कुछ लोग कहते हैं कि इसमें एक भी मनुष्य अड़ जाय, तो सारा मामला खतम हो जाता है। इसलिए आज का बहुमत का तरीका ही ठीक है। लेकिन आजकल तो एक ही मनुष्य को चुनने के लिए लाखों लोगों का वोट लिया जाता है। इतना बड़ा सामुदायिक प्रयोग चलता है, जिसमें कई बुराइयाँ पैदा होती हैं। इसलिए हमने इसके इलाज में जो बात सुझायी है वह है सत्ता का विकेन्द्रीकरण। बहुत-सी सत्ता तो गाँव में ही होनी चाहिए। फिर एक गाँव का दूसरे गाँव से जो सम्बन्ध आता है, उसका नियमन जिला करेगा। एक जिले का दूसरे जिले से जो सम्बन्ध आता है, उसका नियमन प्रान्त करेगा और दो प्रान्तों के बीच के सम्बन्ध का नियमन केन्द्र करेगा।

लेकिन आज तो केन्द्र और प्रान्त में ही हिन्दुस्तान के हरएक गाँव के सब व्यवहारों को *नियन्त्रित करने की सत्ता है। गाँववालों को कोई भी निर्णय करने का* हक नहीं है। गाँव में बाहर के व्यापारी आयें या न आयें, इसे तय करने का हक गाँववालों को नहीं। नतीजा यह हुआ कि गाँव के सारे धन्धे टूट गये। लेकिन अब ये धन्धे फिर से शुरू करना या तोड़ना इस बारे में सारी सत्ता केन्द्र में है, गाँव में नहीं। परिणाम यह होता है कि सारा व्यापार केन्द्र में होता है, गाँव में नहीं। गाँव में सिर्फ मजदूर लगाने का इन्तजाम होता है। कुछ विषयों में गाँववालों को अधिकार ही नहीं होता।

आज हिन्दुस्तान-सरकार का एक राज्य हुआ है। पुराने राजा-महाराजाओं के राज्य खतम हुए, यह अच्छा ही हुआ। फिर भी राजाओं के अलग-अलग अनेक राज्य थे तब प्रजा को कुछ तो स्वराज्य मिलता था लेकिन अब वह सब चला गया। जहाँ केन्द्र में सारी सत्ता केन्द्रित रहती है, वहाँ महत्त्वाकांक्षी लोगों को सत्ता हाथ में लेने की इच्छा होती है। फिर वे अक्लवाले हों, तो कारोबार ठीक चलता है और बेवकूफ हों तो सब मामला बिगड़ जाता है। चन्द लोगों की ही अक्ल से काम हो और बाकी सबकी अक्ल परती रहे, ऐसा अब नहीं होगा। अगर हिन्दुस्तान की थोड़ी ही अच्छी जमीन में फसल हो और बाकी सारी जमीन परती रखी जाय, तो सारे हिन्दुस्तान के लिए काफी फसल पैदा नहीं हो सकती।

विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता

आजकल गाँववालों से कहा जाता है: रास्ते बनाओ, झाड़ू लगाओ। इसका मतलब यह है कि उनके सिर्फ हाथों का उपयोग हो, दिमाग का नहीं। ऐसी हालत में उन्हें काम करने में उत्साह कैसे आयेगा? फिर जब वे काम नहीं करते, तो सरकार कहती है कि लोग आलसी हैं। अंग्रेजी में मजदूरों को 'हैण्ड्स' कहा जाता है और उनकी देखभाल करनेवाले चन्द लोगों को 'हेड्स' कहते हैं। इस तरह समाज के दो टुकड़े कर राहु-केतु निर्माण किये गये हैं। अगर किसीके हाथ तोड़कर अलग किये जायँ और फिर उनको कहा जाय कि 'काम करो' तो वे कैसे काम कर सकते हैं? हाथों से काम तब बनता है, जब हाथ के साथ दिमाग रहता है। रास्ता बनाने और झाड़ू लगाने का ही स्वराज्य गाँववालों को दिया जाय, तो फिर उनमें उसके लिए दिलचस्पी नहीं पैदा होती। अपने जीवन की मुख्य वस्तुओं पर नियन्त्रण करने की सत्ता उन्हें मिलनी चाहिए।

जिसे 'फेडरेशन' (संघ) कहते हैं वैसी ४ लाख देहातों की एक सम्मिलित सरकार निर्माण होनी चाहिए। इसमें सब गाँव अपनी अपनी अक्ल से काम करेंगे, केन्द्र सिर्फ सलाह देगा। उसे मानना न मानना गाँववालों की इच्छा पर निर्भर होगा। इसमें कुछ गाँववालों ने ठीक काम न किया तो दो-चार गाँवों का

काम बिगड़ेगा। पर प्रान्त का काम बिगड़ा तो सारे राज्य का ही बिगड़ेगा। जैसे घर में रोटी बनाने में कुछ रोटियाँ बिगड़ जायँ तो भी बाकी सब अच्छी ही रहती हैं। लेकिन 'बेकरी' में काम बिगड़ गया, तो सब रोटियाँ बिगड़ जाती हैं। पहले राज लोगों के हाथों में सत्ता होते हुए भी जो नुकसान नहीं होता था वह आज हो रहा है; क्योंकि पुराने राजाओं के हाथ में सब-का-सब बिगाड़ने या बनाने की सत्ता नहीं थी, जो आज की सरकार के हाथ में है। इसलिए आज की सरकार सब का सब बिगाड़ सकती है। पाँच साल बाद चुनाव होते हैं और उसमें नयी सरकार भी आ सकती है। लेकिन पुरानी सरकार ने जो किया वह नयी सरकार को आगे चलाना पड़ता है। नयी सरकार पुरानी सरकार के वचनों से बाध्य रहती है। अगर आज की सरकार ने विदेशियों के साथ व्यापारविषयक कुछ करार किये, तो आगे आनेवाली सरकार को उन्हें चलाना पड़ता है। इससे छुटकारा पाने के लिए रक्तरंजित क्रान्ति ही करनी पड़ती है। लेकिन ऐसी क्रान्तियाँ बार बार नहीं होतीं। इस प्रकार आज सरकार के हाथ में सारी सत्ता इस तरह केन्द्रित हुई है कि मामला सुधरा तो सारा का सारा सुधरेगा और बिगड़ा, तो सारा-का-सारा बिगड़ जायगा। इसलिए विकेन्द्रीकरण आवश्यक है।

सर्वोदय-रचना के दो सिद्धान्त

सर्वोदय-रचना में हर गाँव में एक ग्राम-पंचायत होगी और प्रान्त के लिए प्रतिनिधि चुनने का हक ग्राम-पंचायत को होगा। ग्राम-पंचायत के ही हाथ में सारी सत्ता रहेगी और ऊपर की सरकार के हाथ में नाममात्र की सत्ता होगी। ऊपर की सरकार तो सिर्फ सलाह देगी और रेलवे, रास्ते, विदेशों के साथ व्यवहार आदि पर उसका नियन्त्रण रहेगा। इससे आज महत्त्वाकांक्षी लोगों को सत्ता हासिल करने में जितना अधिक उत्साह मालूम होता है उतना फिर नहीं मालूम होगा क्योंकि तब प्रान्त या केन्द्र के हाथ में कुछ अधिकार ही नहीं रहेगा। सारा अधिकार गाँव को रहेगा और गाँव में पंचायत का काम 'पाँच बोले परमेश्वर' के नियम से ही होगा।

इस पर यह शंका पूछी जाती है कि इस योजना में एक भी मनुष्य खड़ा रहेगा

तो कोई निश्चय नहीं हो सकेगा। लेकिन अगर वो ग्राम पंचायत इस तरह कोई निश्चय नहीं कर सकेगी तो वह समाप्त हो जायगी और दूसरी ग्राम-पंचायत चुनी जायगी। ऐसी हालत में सभी को आपस में सलाह करके एकमत से राय देने की प्रेरणा होगी। पहले के जमाने में लोग इस तरह राय देते थे जैसे आज की 'ज्यूरी' का काम चलता है। अगर हम यह करते हैं तो सारी व्यवस्था अहिंसा की होती है। किसीको असन्तुष्ट होने का मौका नहीं आता। देश में सबकी अक्ल का उपयोग होता है और काम करते समय कुछ बिगड़ा तो दो-चार गाँव का बिगड़ता है, सबका नहीं।

आज किसी एक की टेक्निकल गलती के लिए 'बाइ इलेक्शन' (उप निर्वाचन) होते हैं। फिर से चुनाव के लिए हजारों लोग काम करते हैं, हजारों रुपया खर्च होता है। कितना समय बरबाद होता है और लोगों में कितना भेद भाव फैलता है! गाँव गाँव में भेद और वैर पैदा हो जाता है। अगर हम यह सारा तोड़ना चाहते हैं तो हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए, जिससे महत्वाकांक्षी लोगों के हाथों में सत्ता न रहे, पद्मुमेन' मिटें। किसी एक के या चन्द लोगों के ही हाथ में सत्ता रहने से वे दुनिया को बना सकते या बिगाड़ सकते हैं। इसके लिए एक ही इलाज है: (१) ग्रामों के हाथ में सारी सत्ता होनी चाहिए और (२) ग्राम पंचायतों का काम 'पाँच बोले परमेश्वर' इस न्याय से चलना चाहिए। यही सर्वोदय है। 'सर्वोदय' का मतलब है कि गाँव की ही सत्ता चले और गाँव का जो निर्णय हो वही सबका निर्णय हो। वही सच्चा और अहिंसक स्वराज्य होगा।

कहीं एकमत से तो कहीं बहुमत से निर्णय

बहुमत और 'अल्पमत' का सवाल कृत्रिम है। आज जो लोकतन्त्र चलता है उसीने यह सवाल पैदा किया है। अगर इससे मुक्त होना चाहते हों तो सत्ता का विकेन्द्रीकरण कर ग्रामों में 'पाँच बोले परमेश्वर' के न्याय से काम चलाना होगा। इस पर यह सवाल उठाया जाता है कि 'यह गाँव तक के लिए तो ठीक है। पर गाँव की तरफ से जो प्रतिनिधि प्रान्त के लिए चुने जायेंगे, वे तो

बहुमत से ही निर्णय करेंगे। बीच के समय के लिए वह चलेगा। परन्तु मैं इस तरह से सुझाने जाऊँगा कि उन्हें मान्य हो। ऐसी पद्धति कि ग्रामसभाओं के मुख्य निर्णय एकमत से किये जायें। जीवन की मुख्य बातों—जैसे खाना पीना कपड़ा वगैरह—की चर्चा तो गाँव में ही रहेगी। फिर जो दूसरी मामूली बातें हैं, उनमें बहुमत से निर्णय हुआ तो विशेष हित की हानि नहीं। उसमें कोई भी ऐसी बात नहीं होती कि अल्पमतवालों के दिलों में रंज पैदा हो। लेकिन अगर वहाँ अब तालीम आदि मुख्य विषयों में मतभेद होता है, बहुमत की बात चलती और अल्पमत की न चलती तो अल्पमतवालों को दुःख होता है। फिर आपस प्रतिवाद चलता है। जहाँ मान्य के हाथ में चीज दिया है वहाँ बहुमत से निर्णय हो तो कोई हर्ज नहीं। फिर उसमें भी हम ऐसे नियम कर सकते हैं कि कुछ विषयों के लिए ७ या ८ की सही मत आवश्यक होने चाहिए। आखिर समाज को यह आदत डालनी ही चाहिए कि एकमत से निर्णय हो।

केन्द्र का निर्णय तो एकमत से ही होगा। आज भी यही होता है। मन्त्रि-मण्डल में बड़े-बड़े मसलों पर एकमत से ही फैसला किया जाता है। मतभेद हो तो फैसला नहीं होता, सिर्फ चर्चा चलती है। इसलिए केन्द्र के बारे में तो कोई चिन्ता ही नहीं है।

विचार भिन्न हों, आचार एक

इस तरह गाँवों और केन्द्र के बारे में तो चिन्ता ही नहीं है और प्रान्त में भी वे लोग चुनकर जायेंगे, उन्हें एकमत से निर्णय करने की आदत होगी। इसमें सार्वजनिक हित का और बुनियादी विचार यह है कि आज देश में भिन्न भिन्न पार्टियाँ हैं। इस हालत में कोई भी देश प्रगति करना चाहता हो तो ऐसा कोई एक कार्यक्रम निकलना चाहिए, जिसमें सब पक्षों की एक राय हो। विचार में मतभेद हो परन्तु आचार में सबकी राय एक हो। ऐसा एक कार्यक्रम सबको मंजूर हो तो निश्चय ही प्रगति होगी। लेकिन अगर कार्यक्रम में ही मतभेद रहा, तो हिन्दुस्तान की प्रगति नहीं हो सकती, क्योंकि इस देश के लोग प्रगतिशील नहीं हैं। देश में बहुत आलस्य भरा है।

विचार-मंथन अवश्य हो

हरएक को विचार-प्रचार करने का पूरा हक होना चाहिए। मंथन से नवनीत निकलता है। किन्तु आजकल तो कार्यक्रम का ही मंथन चलता है और उससे जनता निष्क्रिय और हताश होती है। हमें जैसे-जैसे राज्य का अधिक अनुभव होगा वैसे-ही वैसे यह मालूम होगा कि जनता में बुद्धिभेद पैदा न करना चाहिए। कोई एक छोटा सा ही कार्यक्रम उठाना चाहिए, जिसमें सब एकमत हों। मुझे इस बात की खुशी है कि भूदान यज्ञ में सब एकमत हैं। इसलिए उतना ही कार्यक्रम लोगों के सामने रखा जाय और वह पूरा किया जाय। इस तरह एक एक कार्यक्रम को पूरा करते-करते हम आगे बढ़ें। हिन्दुस्तान में चुनाव का इतना बड़ा काम तीन-चार महीने में ही खतम हो गया क्योंकि सभी लोग उसमें लग गये थे। यद्यपि हम निष्क्रिय हैं फिर भी सब लोगों ने मिलकर उसे पूरा किया। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि उस चुनाव में दूसरे देशों की तुलना में बुराइयाँ कम हुईं और देश ने एक अच्छा काम किया। इस तरह हम एक-एक कार्यक्रम, एक-एक अच्छा काम उठाते जायँ और उसे पूरा करते जायँ तो देश का भला होगा। नहीं तो भिन्न भिन्न मतों के साथ भिन्न भिन्न कार्यक्रम भी होंगे। फिर कार्यक्रमों में टक्कर हुई, तो देश आगे नहीं बढ़ सकेगा।

चेतरा

१२ ६-५२

हम लोगों में 'नीति विचार' नया नहीं पुराना है। नीति को अक्सर 'धर्म' कहा गया है। आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध ऐहिक जीवन और उसकी समाप्ति के बाद का जीवन—यह सब उसमें आ जाता है। इस लोक में किस तरह का व्यवहार करना चाहिए, यह सारा धर्म का विषय है।

धर्म के दो अंग

आजकल हमारे राज्य को धर्म निरपेक्ष राज्य कहा जाता है। पर हमारे लिए कोई नयी कल्पना नहीं। जो सच्चा और अच्छा राज्य होता है वह धर्म-निरपेक्ष ही होता है 'धर्महीन' नहीं। धर्म में कई बातें आती हैं। धर्म का एक अंग मृत्यु के बाद का जीवन है, जिसमें आत्मा परमात्मा आदि बातें आती हैं। उनका सम्बन्ध राज्य से नहीं आता। इहलोक के व्यवहार और सत्य प्रेम न्याय आदि के सिद्धान्त धर्म का दूसरा अंग है जिनका सम्बन्ध राज्य से है। इन सिद्धान्तों पर ही राज्य निर्भर होना चाहिए। इस अर्थ में हर सरकार धार्मिक सरकार होनी चाहिए। धर्मनिरपेक्ष राज्य का मतलब 'लोकशाहिक सरकार' है। लोगों का ऐहिक जीवन अच्छा करे इतना ही बर्ताव करनेवाली सरकार 'लोकशाहिक सरकार' है। धर्म के पुराने अर्थ में हम उसे धार्मिक कहते हैं और धर्म के पारलौकिक अर्थ में उसे धार्मिक नहीं कहते।

'धर्म' एक व्यापक शब्द है। जिस नीति-विचार पर हमारा जीवन चलता है, उसे हम 'धर्म' कहते हैं। धर्म शाश्वत होता है। उसके सिद्धान्त पक्के होते हैं। जिस तरह गणित के सिद्धान्त इस देश और उस देश में तथा इस काल और उस काल में भी स्थिर रहते हैं उसी तरह धर्म के सिद्धान्तों में भी फर्क नहीं होता। धर्म के सिद्धान्त मूलभूत होते हैं, तीनों कालों और सब देशों में समान एवं अविचल होते हैं। सत्यनिष्ठा प्रेम, दया ये सद्गुण जिन्हें भगवान्

ने 'दैवी-सम्पत्ति' का नाम दिया है, वस्तुतः वही सनातन धर्म है, जो अविचल, ध्रुव शाश्वत स्थिर और नित्य होता है। यह हमने प्राचीन काल से माना है और आज भी मानते हैं।

आज की सापेक्ष नीति

बाद में समाज में एक विचार चल पड़ा—इस देश में और दूसरे देश में भी। वह विचार यह था कि 'यह अविचल धर्म और सत्य अहिंसा प्रेम आदि धर्म के सिद्धान्त सब लोगों के लिए लागू नहीं होते। इनका आचरण करनेवाला एक विशेष पारमार्थिक वर्ग होता है जिनमें सन्यासी आदि आते हैं। दूसरे लोगों को सत्य का मिश्रित पालन करना चाहिए, सत्य बिलकुल ही छोड़ना नहीं चाहिए।' इसका नतीजा यह हुआ कि सत्य अहिंसा प्रेम आदि सब सन्त लोगों के लिए रह गये और बाकी लोग धर्म के नाम पर व्यावहारिक सहूलियत से आचरण करने लगे। धर्म के हरएक नियम के अपवाद ढूँढे गये। फिर सन्यासी के लिए एक धर्म माना गया और गृहस्थ के लिए दूसरा धर्म। गृहस्थ परिग्रही हो सकता है, पर सन्यासी को अपरिग्रही होना चाहिए। गृहस्थ मौके पर हिंसा कर सकता है असत्य बोल सकता है पर सन्यासी को हमेशा अहिंसा और सत्य का पालन करना चाहिए, इस तरह विभाजन हुआ। लेकिन जहाँ गुणों का विभाजन होता है वहाँ समाज की हालत अत्यन्त खतरनाक हो जाती है। समाज छिन्न-विच्छिन्न हो जाता है। यही हालत आज अपने देश की है और दूसरे देशों की भी। हरएक स्कूल में बच्चों को सत्य की महिमा पढ़ायी जाती है। वहाँ झूठ की बात पढ़ाना कोई भी पसन्द नहीं करता। लेकिन वह सत्य स्कूल तक ही सीमित रहता है। कॉलेज की पढ़ाई में कुछ दूसरी ही बातें आ जाती हैं। जिस तरह समाज में सत्य सन्यासियों के लिए ही है उसी तरह शिक्षा में वह बच्चों के लिए ही है। परन्तु जब वे बच्चे बड़े होते हैं तब उन्हें सत्य के अपवाद सिखलाये जाते हैं।

अक्सर पिछड़ी हुई या वन्य जातियाँ अधिक सत्यनिष्ठ होती हैं। लेकिन जैसे-जैसे उनका बाहर की दुनिया से सम्बन्ध आया वैसे ही वैसे वे सत्य को भूलते गये। यह उन लोगों ने सिखा रखा है जिन्होंने उनमें काम किया है।

उन्होंने यह भी लिखा है कि 'हमारी संगति से वे कपड़े पहनने लगे, जो पहले नंगे रहते थे। हमारी संगति से वे ठीक से उच्चारण करने लगे, जो पहले वे नहीं कर पाते थे। पर पहले वे मूर्ख होने के नाते सत्य ही बोलते थे, लेकिन अब हमारी संगति से कुछ असत्य का भी प्रयोग करने लगे हैं।' इन लोगों का सत्य बोलना बच्चों के सत्य बोलने जैसा होता है। यानी वे असत्य की खूबी को नहीं पहचानते इसीलिए सत्य बोलते हैं। इस तरह सत्यादि बच्चों और आदिवासियों के लिए सत्य सीमित रखा गया तथा व्यापारी, कॉलेज के लड़के और सुधरे हुए लोगों के लिए असत्य माना गया। यही विचार आज प्रचलित है। इसीको 'सापेक्ष नीति' और 'राजनीति' कहते हैं।

गांधीजी का महान् विचार

इस नीति का गांधीजी ने घोर विरोध किया। उन्होंने कहा कि 'धर्म' सार्वत्रिक होता है। उसके पालन में हमें मर मिटना चाहिए। उसके पालन से ही हमारा कल्याण होगा। उसका पालन न करें तो हमारा भला नहीं होगा और दुनिया का भी भला नहीं होगा। यह नयी बात नहीं, इसमें धर्म में निष्ठा रखनी चाहिए, यह हमें गांधीजी ने सिखाया। हिन्दुस्तान में पहले यह निष्ठा संन्यासियों के लिए ही मानी गयी थी। परन्तु गांधीजी ने कहा कि यह निष्ठा गृहस्थ के लिए भी उतनी ही आवश्यक है, जितनी संन्यासियों के लिए। सार्वजनिक सेवा के लिए भी जीवन के कुछ नियम होने चाहिए। पहले दो विभाग माने गये थे : (१) पारमार्थिक साधन करनेवालों का, सत्य की उपासना करनेवालों का, जिनको दुनिया से कोई सम्बन्ध नहीं। उन्हें दुनिया की सेवा करने की जरूरत नहीं है। और (२) जो दुनिया की सेवा करते हैं, उनके लिए सत्य आदि तत्त्वों में अपवाद माने जा सकते हैं। किन्तु गांधीजी ने कहा कि सत्य आदि तत्त्व जितने पारमार्थिक साधना के लिए आवश्यक हैं, उतने ही सेवा परायण के लिए भी। जो सेवा-परायण होता है, उसे सत्य का पालन करना चाहिए और जो सत्य की उपासना करता है, उसे दुनिया की सेवा भी करनी चाहिए। इस तरह दुनिया के टुकड़े नहीं होते और न होने ही चाहिए—यह महान् विचार गांधीजी ने हमें सिखाया।

आज की बुरी हालत

हमारे यहाँ सत्य की इतनी महिमा मानी जाती है पर व्यापार, व्यवहार, कचहरी या शादी में बहुत असत्य चलता है। एक भाई ने कहा कि जैसे शुद्ध चाँदी के सिक्के नहीं बनते, उसमें कुछ मिश्रण करना जरूरी होता है, वैसे ही व्यवहार में शुद्ध सत्य नहीं चलता। और राजनीतिज्ञ के लिए असत्य जरूरी है यह तो माना ही गया है। धर्म के पालन में भी सत्य के विरुद्ध अहिंसा को खड़ा किया जाता है। किसीकी जान बचाने के लिए हम झूठ बोल सकते हैं—ऐसा माना जाता है। याने अहिंसा के बचाव के लिए सत्य को छोड़ सकते हैं—यह माना गया। इस तरह एक गुण के विरोध में दूसरा गुण खड़ा किया जाता है। महाभारत में भी सत्य के अपवादों की चर्चा है। भिन्न-भिन्न मौकों पर झूठ बोलना चाहिए, इसकी चर्चा है। इस तरह सापेक्ष नीति चली आयी है। हिन्दुस्तान के धार्मिक पुरुष भी कहते हैं कि सत्य भी कभी छोड़ना पड़ता है। एक धार्मिक पुरुष ने तो यहाँ तक कहा कि रामावतार के बाद कृष्ण का अवतार हुआ इसमें धर्म का विकास हुआ है। उन्होंने राम के साथ कृष्ण की तुलना करते हुए कहा कि राम का अवतार कच्चा था। अवतारी पुरुषों का भी विकास हुआ है। कृष्ण कभी कभी सत्य को छोड़ते थे। इसलिए कृष्णावतार 'पूर्ण-अवतार' माना गया है। किस सिद्धान्त का कहाँ उपयोग करना चाहिए, इस बात को वे जानते थे। ऐसा विवेचन जब एक धार्मिक पुरुष ने किया तो और लोगों के बारे में क्या कहा जाय। जो आम व्यवहार होता है, उसीका घर में प्रवेश होता है। इसीलिए बावजूद इसके कि गांधीजी अभी अभी यहाँ थे, उन्होंने हमेशा सत्य पर जोर दिया है। यहाँ तक कहा कि सत्य के लिए मैं स्वराज्य को भी छोड़ दूँगा बावजूद इसके कि हम सबने उनके साथ काम किया और उनके पीछे पीछे चलने की कोशिश की हिन्दुस्तान का वातावरण आज अत्यन्त दूषित है।

भूदान-यज्ञ पूरे अर्थ में क्रांतिकारी काम

भूदान का काम करनेवालों को समझना चाहिए कि यह काम पूरे अर्थ में क्रान्ति का काम है। जो तरीके पहले चलते थे, वे इस काम में नहीं चलेंगे।

इसमें पूरी सत्यनिष्ठा आवश्यक है। अपने हिसाब में कहीं भी गलती न होनी चाहिए। वचन की निष्ठा होनी चाहिए। जरा भी दबाव का प्रयोग न होना चाहिए। अहिंसक नीति पर पूरा आधार रखकर ही भूदान हो सकता है। हम केवल भूमिप्राप्ति पर ही जोर दें, तो दुनिया में वैसे कई काम आज तक हुए हैं। पर हम चाहते हैं कि सारे समाज का उत्थान हो, सारा समाज ऊपर चढ़े। आज हिन्दुस्तान की इतनी दुर्दशा इसीलिए है कि हर कोई अपने लिए बटोरना, संग्रह करना चाहता है। कोई भी संग्रह की मर्यादा नहीं रखता। जितना संग्रह किया जाय, उसकी मर्यादा नहीं रखता। इसी तरह साधनों की मर्यादा, नाप या परिमाण भी नहीं रहा है। हम चाहते हैं कि कोई भी अपनी सभी जमीन दान करे जिस पर उसका कानूनी हक हो। दान कोई यांत्रिक वस्तु नहीं, कोई टैक्स नहीं। वह तो हृदय से निकलनेवाली वस्तु है। जमीन के साथ हम चाहते हैं कि उसका नीति-विचार भी लोग समझें और उस पर अमल करें। आखिर जो जमीन देगा वह जमीन के साथ साथ और भी चीजें देगा और अपने जीवन में ही परोपकार की निष्ठा रखेगा। जो जमीन देगा वह अपने पड़ोसी की चिन्ता भी करेगा। इस तरह समाज का उत्थान हो यही हम चाहते हैं। इसलिए हममें से जो इस काम के लिए जीवन देना चाहते हैं वे अपने जीवन की नित्य निरंतर शुद्धि की बात ध्यान में रखकर ही काम करें।

हैदराबाद
१३-४-५१

हम एक नैतिक ताकत पैदा करना चाहते हैं। हिन्दुस्तान ने अपनी आजादी अहिंसक ढंग से हासिल की। इसलिए एक नैतिक ताकत निर्मित हुई। आज भी हिन्दुस्तान में कोई ताकत पैदा हो सकती है तो वह नैतिक ताकत ही।

नैतिक दबाव और हृदय-परिवर्तन

हम सबको यह धर्म सिखाना चाहते हैं कि मुझे पड़ोसी की चिन्ता करना हमारा कर्तव्य है। आसपास के लोगों में भूख, अज्ञान और बीमारी हो तो जिनके पास धन, बुद्धि और शक्ति है, उन्हें कभी सुख न मालूम होना चाहिए। इसीको हम 'हृदय-परिवर्तन' कहते हैं। 'नैतिक दबाव' और 'हृदय-परिवर्तन' में फर्क करना ही गलत है। बिहार में अब तक चालीस हजार लोगों ने दान दिया है। जमीन तो ज्यादा नहीं मिली, क्योंकि उसमें बहुत सारे लोग गरीब थे। किन्तु उसका प्रभाव अब बड़े लोगों पर हो रहा है। अब उनके दिल पसीज रहे हैं, उनमें एक भावना हो रही है, जिसे वे टाल नहीं सकते। इस जिले में तो एक राय हमारे पक्ष में बनकर घूम रही है। क्या यह हृदय-परिवर्तन नहीं है? परन्तु हृदय परिवर्तन हिसाब से नहीं होता। एक मनुष्य का हृदय-परिवर्तन हुआ, तो आसपास के पचासों लोगों पर उसका असर होता है। इसीको मनुष्य के 'विचार का दबाव' कहते हैं। यह हिंसा-शक्ति से सर्वथा भिन्न है। वेद में कहा है दान दिया जाता है, वह लोक-लज्जा से दिया जाता है। इसलिए लोक-लज्जा एक बड़ी बात है। सारा समाज क्या करता है, यह देखकर कुछ करना हृदय परिवर्तन ही है। हृदय-परिवर्तन की मात्रा नापनी ठीक नहीं है।

बाहर की परिस्थिति से हृदय-परिवर्तन होता है और हृदय-परिवर्तन का परिणाम बाहर की परिस्थिति पर होता है। एक-दूसरे का परिणाम एक-दूसरे पर होता है। बीज से फल पैदा होता है और फल से बीज। अगर किसी व्यक्ति

का बुढ़ापे में लड़का मर गया और उसे वैराग्य हुआ तो क्या आप यह कहेंगे कि बुढ़ापे के कारण वैराग्य हुआ है? यह सच्चा नहीं है। हाँ, यह सही है कि जब वह जवान था और उसका लड़का जिन्दा था तब उसमें आसक्ति थी। किन्तु कई लोग बूढ़े होते और कई लोगों के लड़के मर जाते हैं, फिर भी वे वैरागी नहीं बनते। इसका मतलब यह है कि उसके हृदय में पहले से ही कुछ भावना थी और लड़के की मृत्यु एक निमित्त बन गयी, जिससे अन्दर की वह भावना जाग्रत हो उठी। इसलिए हरएक मनुष्य के हृदय में अच्छी भावना है ऐसा विश्वास रखो। हमने हरएक को मत (वोट) का हक दिया है, इसके माने यही हैं कि हम मानते हैं कि हरएक के हृदय में सद्भावना है।

दोहरा काम : हृदय-परिवर्तन और परिस्थिति-परिवर्तन

हम दो बाजू से काम कर रहे हैं : (१) हरएक व्यक्ति गरीब और श्रीमान् के अन्दर जो परमेश्वर है, उस पर भरोसा रखते हैं और (२) ऐसी परिस्थिति निर्माण करना चाहते हैं, जिससे सबों में जागृति पैदा हो जिससे लोगों को दान दिये बगैर रहा न जाय। इस तरह हम नैतिक जागृति यानी हृदय-परिवर्तन और धन जागृति, ऐसी दोहरी जागृति करना चाहते हैं। केवल लोभ जागृति हो और नैतिक जागृति न हो तो परिणामस्वरूप हिंसा की शक्ति पैदा हो सकती है। और केवल नैतिक जागृति हुई तो काम बनने में बहुत समय लगेगा। इसलिए हम दोहरा काम कर रहे हैं। जैसे पक्षी के दो पंख होते हैं, वह एक पर से वह नहीं सकता, वैसे ही धर्म-कार्य दो तरह से होता है : अन्दर से जागृति निर्माण करना और परिस्थिति में परिवर्तन करना।

धर्म चक्र-प्रवर्तन

सामान्य धर्म-प्रचार और 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन' ये दो भिन्न भिन्न वस्तुएँ हैं। सामान्य धर्म तो ऋषि और संत लोग हमेशा समझाते रहते हैं। इसलिए सर्वसाधारण धर्म-प्रचार चल रहा है और बताने की कोशिश क्या है यह पहचान कर धर्म-विचार को उसके साथ जोड़ देना दूसरी बात है। गांधीजी ने देश को इसी तरीके से अहिंसा सिखायी। धर्म ने अहिंसा न लड़ने की बात तो

पुरानी ही थी पर उस में स्वराज्य के साथ नहीं जोड़ते तो उन्हें सिर्फ दस बीस अनुयायी मिल जाते। उस समय हम तलवार से लड़ नहीं सकते थे, क्योंकि निःशस्त्र थे और अंग्रेज लोग शस्त्रों में हमसे बहुत ताकतवर थे। इसलिए अहिंसा से लड़ना ही लाजिम था। परिस्थिति भी उसके अनुकूल थी। इस तरह धर्मविचार का आन्तरिक पक्ष और परिस्थिति का पक्ष दोनों को जोड़कर उन्होंने देश को अहिंसा सिखाई और उसीसे हमें स्वराज्य प्राप्त हुआ। इसी तरह आज गरीबों को जमीन की आवश्यकता है। सिर्फ हिन्दुस्तान में ही नहीं सारे एशिया में जमीन की भूख है। गरीबों को जमीन मिले और वे शान्त नहीं रह सकते ऐसी परिस्थिति है। उसीके साथ हम लोगों को धर्म विचार भी समझा रहे हैं कि अपने पड़ोसी को जमीन देनी चाहिए, जमीन परमेश्वर की देन है इसलिए उस पर सबका समान अधिकार है। अगर यही विचार हम हजार पाँच सौ साल पहले समझाते तो लोग हमारी बात न सुनते। किन्तु आज इस बात को भी हम जमाने की माँग के साथ जोड़ देते हैं, तो वह सिर्फ मामूली धर्म प्रचार नहीं बल्कि धर्म-चक्र प्रवर्तन हो जाता है। इस ओर यद्यपि मामूली धर्म प्रचार हमेशा करते ही रहते हैं परन्तु उससे धर्म-चक्र-प्रवर्तन नहीं होता। लेकिन जहाँ परिस्थिति के साथ धर्म भावना जुड़ जाती है वहाँ वह लोगों के दिल को छू लेती है। उसीमें से बड़ी क्रान्ति पैदा होती है और उससे धर्म चक्र-प्रवर्तन होता है।

एक ऐसा मौका आता है जब धर्म करने की प्रेरणा होती है। आज ही देखिए, आज ग्रहण का दिन है। कोई दान देने की बात समझाता है तो वह फौरन मन को पकड़ लेती है। वैसे दान तो हर रोज करना चाहिए लेकिन ग्रहण के दिन वह बात जल्दी समझ में आ जाती है क्योंकि वह एक मौका है। आज हमें लाखों एकड़ जमीन मिल रही है। पहले तो ऐसा कभी नहीं हुआ था। तो क्या एकदम इतने सारे लोगों के दिल धर्म भावना से भर गए? ऐसा तो नहीं हो सकता। इस दान में धर्म की भावना है परन्तु उसके साथ परिस्थिति की आवश्यकता जमाने की माँग या युग-धर्म भी है।

सबका हृदय परिवर्तन तब होता है जब जमाने की माँग और धर्म की

भावना दोनों जुड़ जाते हैं। यह बिलकुल आन्तरिक हृदय परिवर्तन तो नहीं कहा जायगा परन्तु कुछ हृदय परिवर्तन जरूर है। अगर कोई पूरे हृदय परिवर्तन के साथ दान देता है, तो उसे मोक्ष मिल ही जायगा। परन्तु यों ही धर्म-भावना से देता है, तो हमारे आन्दोलन के लिए उतना भी काफी है। हमारे आन्दोलन के लिए यह जरूरी नहीं कि हर कोई पूरी चित्त शुद्धि से ही दान दे। आज जमीन देना आवश्यक है इस बात को लोग समझ लें तो हमारे लिए इतना ही बस है।

परमेश्वर की फजीहत

यह ईश्वर का काम है और वही हमारे जैसे तुच्छ औजार के जरिये इसे करवा रहा है। नहीं तो हमारे जैसे साधारण मनुष्य के शब्दों की आज इतनी कीमत न होती। परन्तु वह जब चाहता है, तो सब कुछ हो सकता है। लोग पूछते हैं कि यह काम असफल हुआ तो क्या होगा? लेकिन हम इस तरह कभी नहीं सोचते। यह काम विनोबा का नहीं है, परमेश्वर का है। इसलिए अगर यह असफल हुआ तो विनोबाजी की नहीं बल्कि परमेश्वर की फजीहत होगी।

सिसई
२०-१ ३

अपनी इस यात्रा में हमें बहुत कीमती अनुभव आये और मानव स्वभाव का बहुत ही अच्छा दर्शन हुआ। हमारे पुराणों और दूसरे धर्मग्रन्थों में देव और दानवों की लड़ाई का जिक्र आता है। ये देव और दानव कौन हैं? कहाँ रहते हैं और आज कहाँ हैं? ये स्वभाव सहज ही पैदा होते हैं।

देवासुर-संग्राम हर हृदय में

हमारे शास्त्रकारों ने समझाया है कि देव और राक्षस दोनों मनुष्य के अन्दर रहते हैं। मनुष्य के हृदय, मन और बुद्धि में जो असद्भावनाएँ होती हैं वही राक्षसों का रूप है। इस तरह इनकी लड़ाई न सिर्फ प्राचीनकाल में हुई बल्कि हर रोज और हरएक हृदय में चल रही है। इसीको 'देवासुर-संग्राम' कहते हैं। इस तरह का देवासुर संग्राम जहाँ हुआ, वहाँ थोड़ी देर के लिए राक्षसों की जीत भले ही दिखाई दे परन्तु आखिर में देवों की ही जीत होती है ऐसा सब पुराणों में लिखा है। कहने का सार यह है कि मनुष्य के हृदय में जो अच्छी भावनाएँ हैं, वे बलवती हैं और जो बुरी भावनाएँ हैं, वे कमजोर हैं। बुरी भावनाएँ थोड़ी देर के लिए दर्शन देती हैं, तो ऐसा लगता है कि सारा समाज भ्रष्ट हुआ सर्वत्र अधर्म फैल गया। लेकिन फौरन देव जाग जाते हैं जो मनुष्य के अन्दर छिपे रहते हैं। उनके जागने पर असुर टिक नहीं पाते। जैसे सूर्योदय होने पर नक्षत्र खतम हो जाते हैं और अन्धकार नहीं टिकता वैसे ही यहाँ देव जाग जाते हैं, तब सारी बुराइयाँ भाग जाती हैं। मनुष्य के हृदय की गहराई में देव ही रहते हैं और राक्षस मनुष्य के मन और बुद्धि में छिपे रहते हैं।

दानात् देव: रक्षणात् राक्षस:

बिहार की इस यात्रा में हमें यही अनुभव आया। हम जहाँ-जहाँ गये और जिन लोगों को भूदान का सन्देश सुनाया सबने उसे पसन्द किया। कुछ लोगों ने भारी दान दिया कुछ लोगों ने हिसाब से दिया और जिन्होंने

नहीं दिया उन्होंने भी ऐसा उचित मानकर हमारे विचार को कबूल किया। इसके मानी यह है कि उन्होंने मौका आने पर ऐसा कबूल किया। अभी तक मुझे ऐसा कोई भी नहीं मिला, जिसने ऐसा कबूल न किया हो। हम इसका अर्थ यही समझें कि सत्य युग आ रहा है। पुराणों में चार युगों का जिक्र किया गया है। उनकी कुछ मियाद भी हुई है, ऐसा कहा गया है। किन्तु उन चारों युगों के अन्दर भी युग आते रहते हैं। जैसे दिन में प्रकाश और रात में अन्धकार होता है, वैसे देह में श्वास और उच्छ्वास प्रतिक्षण चलते रहते हैं या जैसे चन्द्र की लगातार क्रमवृद्धि होती है, वैसे ही एक एक युग के अन्दर भी दूसरे-दूसरे युग आते जाते रहते हैं।

इस समय चाहे कलियुग चल रहा हो, तो भी आज उसमें सत्ययुग आ सकता है और सत्ययुग चल रहा हो तो उसमें कलियुग आ सकता है। पुराणों में हम देखते हैं कि रामजी के युग में रावण जैसा राक्षस हुआ और इस कलियुग में भी अनेक सत्पुरुष हुए। इसके मानी यह है कि युग तो नाममात्र के लिए, ज्योतिष के सवाल से कुछ भी चलता हो परन्तु भावना के खयाल से एक ही युग में चारों युग होते हैं और कुल मिलाकर सत्ययुग बहुत लम्बा होता है। कलि का मतलब एक है उससे दुगुना द्वापर-युग होता है उससे तिगुना त्रेता-युग होता और चौगुना कृत युग होता है। मतलब में कलि का मतलब है एक द्वापर का मतलब है दो त्रेता का मतलब है तीन और कृत का मतलब है चार। इसके मानी यह है कि कलियुग से सत्ययुग की ताकत चार गुना अधिक होती है और मनुष्य में भी कलियुग से सत्ययुग की ताकत चार गुना अधिक होती है। बीच-बीच में कलि का जोर चलता है परन्तु सत्य अधिक बलवान् है। जिसे हम 'मानवता' कहते हैं वह दैवी सम्पत्ति भी मनुष्य के हृदय में अधिक होती है। मानव में सत्त्वगुण प्रधान है और रजोगुण और तमोगुण जैसे राक्षस गौण हैं। "सत्य दर्शन हमने बिहार में किया।

लोग कहते हैं कि हिन्दुस्तान में चारों ओर भ्रष्टाचार फैला हुआ है हिन्दुस्तान के लोग बिगड़ गये हैं। परन्तु बात ऐसी नहीं है। हमने तो देखा कि लोगों का हृदय पवित्र है। यह देखकर न सिर्फ आनन्द हुआ बल्कि हमने

पावनता भी महसूस की। ऐसी कई घटनाएँ घटीं, जिनसे हम कह सकते हैं कि सत्ययुग नजदीक आ रहा है। छोटे छोटे बच्चों ने अपने माँ-बाप से त्याग करवाया और जमीन दिलवायी। स्त्रियों ने स्वयं दान दिया और पुरुषों को भी दान देने की प्रेरणा की। छोटों और बड़ों ने सर्वस्व दान दिया। यह सब देखकर हम कह सकते हैं कि मनुष्य में देव ही प्रधान है, राक्षस तो छिपे और कमजोर हैं। मनुष्य के हृदय में जितने बुरे भाव हैं वे सब राक्षस हैं और जितने अच्छे भाव हैं वे सब देव हैं। संस्कृत में कहा है कि दानात् देवाः, रक्षणात् राक्षसाः यानी जो दान देते हैं वे देव हैं और जो अपने पास रख लेते हैं, वे राक्षस हैं। सब सद्गुणों का सार है दान देने की वृत्ति और सब दुर्गुणों का सार है, संग्रह की वृत्ति। संग्रह से बढ़कर कोई राक्षस नहीं और दान से बढ़कर देव नहीं है।

सूर्योदय की आगाही करनेवाले पक्षी

आज की परिस्थिति देखकर हमारा उत्साह बढ़ता है। हमारा विश्वास है कि जिस सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति की हम अपेक्षा करते हैं वह होकर रहेगी। जो लोग भूदान के काम में निमित्त बनकर काम कर रहे हैं वे बहुत भाग्यवान् हैं। यह जमाना आगे आ रहा है, हम उसे ला नहीं रहे हैं। किन्तु हम उसके साथ हो जायँ तो हमें यश मिलनेवाला है। जैसे दुनिया में सब कुछ तो भगवान् ही करता है परन्तु वह अपने भक्तों को यश देता है, यही उसकी खूबी है। सूर्योदय तो होता ही है परन्तु पक्षी उसकी आगाही का गीत गाते हैं तो उन्हें सूर्योदय लाने का यश मिल जाता है। लोग कहते हैं कि "पंछी बन बोले"। पक्षी सूर्य का आवाहन करते हैं इसलिए उन्हें सारा यश मिल जाता है। वैसे ही इसमें काम करनेवाले हम सब पक्षी हैं। हम गाँव-गाँव जाकर कहते हैं कि सूर्योदय हो रहा है। लोग कहते हैं कि किसान को जमीन मिल रही है। किन्तु मुफ्त में जमीन नहीं मिलेगी। जब यह काम पूरा हो जायगा तो इसका मतलब यह होगा कि सारे समाज में परिवर्तन हो चुका है।

इसमें ऐसी शक्ति है, यह अनुभव उस समय किसी ने नहीं किया और न आज भी किया था। फिर भी मेरी श्रद्धा थी। जिस दिन मैंने भगवान् का

यह इरादा पाया और काम शुरू किया उसी दिन से मेरी श्रद्धा है कि भगवान् चाहता है कि हिन्दुस्तान में यह काम हो। हिन्दुस्तान में स्वराज्य के बाद यही काम करना है। जैसे दिन के बाद रात आती है वैसे ही राजनैतिक आजादी के बाद आर्थिक आजादी सहज प्रवाह से आती है। बिना उसके हमने राजनैतिक आजादी प्राप्त की वह स्वप्न-सम्पत्ति सिद्ध नहीं सकती। यह कुछ देर तक दबी हुई-सी मालूम हो परन्तु प्रकट होनेवाली ही है, ऐसा मेरा विश्वास था। हम मानते थे कि जो पुण्य प्रभाव स्वराज्य के आन्दोलन में प्रकट हुआ और बीच में चार साल खत्म हुआ था, वही फिर से प्रकट होगा। जो जोर राजनैतिक आन्दोलन में प्रकट हुआ था उससे भी अधिक प्रभाव से इस आन्दोलन में प्रकट होगा।

भूदान से किसानों का नैतिक संगठन

यह काम शहरों में प्रचार करने, सभाओं में प्रस्ताव पारित करने, किसीके खिलाफ विरोध प्रस्ताव पास करने से या अखबारों से नहीं होगा। इसके लिए गाँव-गाँव जाना पड़ेगा। क्रान्ति की शक्ति अगर कहीं होती है तो ग्रामीणों में ही, क्योंकि ग्रामीण ही देश की रक्षा करनेवाले हैं। अक्सर कहा जाता है कि क्षत्रिय देश की रक्षा करते हैं। ये क्षत्रिय एक चुना हुआ वर्ग है। जिसे 'फौज' कहते हैं, वह नहीं है। सिर्फ फौज देश की रक्षा नहीं कर सकती। जो लोग भूमि के साथ जुड़े हुए हैं वे ही भूमि की रक्षा कर सकते हैं। आजकल की लड़ाइयों ने जाहिर कर दिया है *कि जिस देश के नेतृत्व के पीछे देश का किसान है*, वही देश बलशाली होता है। जो भूमि पुत्र हैं वे ही भूमि माता की रक्षा कर सकते हैं। स्टालिनग्राड की लड़ाई में यही हुआ। कितनी घनघोर लड़ाई हुई, कितने किसान मर मिटे। जब कि जर्मनी की सारी ताकत रूस के खिलाफ लगी हुई थी और पश्चिमवाले ऐंग्लो-अमेरिकनों से कहते ही रहे कि 'सेकण्ड फ्रण्ट' (दूसरा मोर्चा) खोलो तो भी उसे खोलने में देर लगी। ऐसे समय पर किसीको भी अन्दाजा नहीं था कि स्टालिनग्राड बचेगा। जब कि जर्मनी की सारी भार मशीनों का दबाव रूस पर था, तब किसीने नहीं सोचा था कि रूस बचेगा। किन्तु वह बचा और जीता क्योंकि वहाँ के किसान वहाँ के नेतृत्व के पीछे थे। इसीलिए जो

जमीन की काश्त करता है वही देश की रक्षा कर सकता है। ऐसे लोगों के साथ सम्पर्क रखने का एक निमित्त भूदान यज्ञ हम सबको मिला है। जिन लोगों को क्रान्ति का थोड़ा भी दर्शन है वे इस मौके को अपने हाथ से जाने नहीं देंगे। वे किसानों से सम्पर्क रखने के इस मौके से लाभ उठायेंगे और उनका नैतिक संगठन करेंगे। मैं कम्युनिस्टों से पूछता हूँ कि किसानों के नैतिक बल का संगठन करोगे या सिर्फ उत्पादन का ही? जब नैतिक शक्ति प्रकट होती है तभी न्याय मिलता है।

नीति का अधिष्ठान खेती

आखिर किसान ही तो दुनिया में पैदा करते हैं, फिर भी वे दबे हुए से हैं; क्योंकि उनकी नैतिक शक्ति जाग्रत नहीं हुई है। नैतिक शक्ति जितनी उनमें जाग्रत हो सकती है, उतनी और किसीमें नहीं। कारण नीति का अधिष्ठान खेती है। खेती सबसे उत्तम उद्योग है। खेती करनेवाला नीतिमान् होता है। वह परमेश्वर का उपासक होता है क्योंकि वह महादेव का काम करता है। वह पहले पैदा करता है फिर खाता है। वह किसीको लूटता नहीं। वह निर्माण का ही कार्य करता है। इसीलिए वेदों ने आज्ञा दी है कि कृषिमित् कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमान। खेती करो। व्यापार में जितना ज्यादा पैसा मिलता है उतना खेती में नहीं मिलेगा। किन्तु खेती में जो फसल पैदा होती है वह अन्न है। चाहे वह पैसा आराम के लिए काफी न हो फिर भी खेती में से लक्ष्मी पैदा होती है। और दूसरे उद्योगों में तो सिर्फ धन पैदा होता है लक्ष्मी नहीं। धनपति कुबेर हैं तो लक्ष्मीपति भगवान्। यह जो सारी सृष्टि दीखती है यह जो धनभी और लक्ष्मी है जो तरकारी अनाज और घास पैदा होते हैं सृष्टि में मनुष्य के प्रयत्न से जो सारी सुन्दरता निर्माण होती है वही लक्ष्मी है। लक्ष्मी प्रसन्न होकर किसान के पास जाती है। उस किसान से सम्पर्क रखने का भूदान यज्ञ से बेहतर दूसरा कोई तरीका नहीं।

क्रांति के दर्शन से पक्षभेद मिटेगा

कुछ लोग कहते हैं कि चुनाव में किसान के पास पहुँचने का मौका मिलता है। किन्तु वह तो किसानों से लाभ उठाने का मौका है और भूदान यज्ञ में

किसानों को काम कराने का मौका है। ऐसे किसानों को लूटने के लिए चोर भी रात को उनके पास जाते हैं, लेकिन उससे किसानों का सम्पर्क नहीं बढ़ता। चुनाव में तो आत्म-स्तुति पर-निन्दा और मिथ्या भाषण ये तीन कार्यक्रम होते हैं और इन्हीं को लेकर लोग जनता के पास जाते हैं। इनसे जनता का उत्थान नहीं हो सकता। इसलिए हम राजनैतिक नेताओं को आगाह कर देना चाहते हैं कि यह जो पार्टियों का और बड़े-बड़े चुनावों का जिसमें करोड़ों लोगों को लाया जाता है तरीका उन्होंने पश्चिम से लाया है, उसमें बहुत बड़ा खतरा है। इसलिए हमें दूसरा कोई तरीका ढूंढना होगा। चुनाव में जो जनसम्पर्क होता है, उसकी भूदान-यज्ञ के जनसम्पर्क से कोई तुलना ही नहीं हो सकती क्योंकि भूदान-यज्ञ से जनता की चित्त-शुद्धि या देवत्व प्रकट होने का मौका मिलता है। इसीलिए तो जिन्हें शान्ति की दृष्टि है ऐसे लोग इस काम में लगे हैं। अध्यात्मवादी इस काम में लगे हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि विशाल और व्यापक है। उन्हें दर्शन है कि दुनिया में शान्तियाँ कैसे दूर और भौतिक साधनों से पर कैसी होती हैं। इसीलिए वे रात दिन इस काम में लगे हैं। अगर हम लोगों को शान्ति का ऐसा दर्शन होगा तो हमारे सारे भेद मिट जायँगे। सूरज उगने पर तारे मिट जाते हैं वैसे ही हमारे सारे पक्ष भेद, जाति-भेद और व्यक्ति भेद खतम हो जायँगे।

रांची
१०-५१

अपने आन्दोलन की गहराई पर जब मैं सोचता हूँ तब मुझे ढाई हजार साल पहले हिन्दुस्तान में उठे उस बड़े भारी आन्दोलन का जिसमें भगवान् बुद्ध और भगवान् महावीर ने अपने अपने ढंग से काम किया था स्मरण हो आता है।

प्राचीन जमाने में दुःख अधिक था

उन दिनों लोगों की हालत आज की हालत से बहुत बेहतर थी ऐसा मानने का कोई कारण नहीं। अक्सर हम पुराने जमाने की अच्छाई याद रखते और बुराई भूल जाते हैं। इसीलिए जो चीज जितनी पुरानी होती है उसका उतना ही अधिक आकर्षण मालूम होता है। किन्तु सत्व, रज और तम ये तीनों गुण हर हालत में रहते हैं। इसलिए आम जनता का हाल उस समय आज से अच्छा था, यह मानने का कोई कारण नहीं। अगर अच्छा हाल होता तो इस ढंग से सोचा ही नहीं गया होता कि सारी दुनिया दुःख से भरी हुई है और उस दुःख को मिटाना ही धर्म-कार्य है। तब दूसरे ही ढंग से सोचा गया होता। जिन्दगी का उद्देश्य दुःख निवृत्ति ही है, ऐसा मानने की प्रवृत्ति तब होती है जब दुःख बहुत ज्यादा होता है। जब दुःख बहुत ज्यादा नहीं होता तब जीवन का उद्देश्य सुख और दुःख दोनों से कुछ भिन्न मानने की प्रवृत्ति होती है। लेकिन जहाँ दुःख मिटाने की बात आती है वहाँ उसका अर्थ काम क्रोध आदि से मुक्ति किया जाता है। तभी वह बात तत्त्वज्ञान में टिकती है। सिर्फ दुःख मुक्ति की बात तत्त्वज्ञान में नहीं टिकती परिस्थिति में टिकती है।

आज कम्युनिस्ट कहते हैं कि दुःखमुक्ति ही हमारा उद्देश्य है। याने दुःख एक ऐसी बात है जिससे मुक्ति पाना ही इस जीवन की परम सीमा मानी गयी है। सबको खाना पीना और कपड़ा मिले, सबको तालीम मिले, दवा-दारू मिले, न्याय मिले, यही हमारा उद्देश्य है—ऐसा वे कहते हैं। ये बातें उनके लिए

बहुत महत्त्व की हो गयी है। किन्तु हम जरा सोचेंगे तो मालूम होगा कि ये जीवन की साधारण बातें हैं। खाना पाना तो मामूली बातें हैं। पर क्यों दुःख बहुत बढ़ जाता है? यहाँ तत्त्वज्ञान में भी दुःख मिटाने की बात आती है। लेकिन तत्त्वज्ञान में उस दुःख का अर्थ गहरा करते हैं तब दुःखों से मुक्ति पाना। इसे वे परम पुरुषार्थ मानते हैं। सब दुःखों से मुक्ति याने काम क्रोध से मुक्ति ऐसा वे करते हैं। यह तत्त्वज्ञान उस समय बैठता है क्योंकि लोग बहुत दुःखी रहते हैं।

इसलिए बुद्ध भगवान् के ऐसे तत्त्वज्ञान से मालूम होता है कि उस समय समाज दुःखी था और वह स्वाभाविक भी था। बड़े बड़े जंगल पड़े थे जंगली जानवरों से मुकाबला नहीं होता था। विज्ञान की प्रगति नहीं थी सृष्टि पर विजय पाना मालूम नहीं था। किसीका दाँत दुखता हो तो उसे उखाड़ने की कला मालूम नहीं थी। किसीके पेट में दर्द हो तो आपरेशन करना मालूम नहीं था। ढोरों के मुताबिक मनुष्य को भी काटते थे लोग आज के जैसा आपरेशन करना नहीं जानते थे। जिस जमाने में ऐसी सब हालत थी विज्ञान का थोड़ा सा आरम्भ ही हुआ था उस जमाने में मनुष्य जीवन सुखी था यह मानना ही गलत है। फिर भी बड़े बड़े महल बने बड़े बड़े शहर बने तथा मगगाया निर्माण हुए यह सब कैसे हुआ? बेहालों को लूटकर ही हुआ।

बुद्ध भगवान की दुःख-मुक्ति की खोज

बुद्ध भगवान के पिता जी ने इसकी फिक्र रखी कि अपने बच्चे को दुःख का दर्शन न हो क्योंकि अगर बच्चे को दुःखी दुनिया में सैर करने देते तो वह उस पक्ष में शामिल न होता। इसीलिए उन्होंने उनके लिए जिधर देखो उधर आराम, बगीचे और सुख निर्माण किया। ऐसी सृष्टि में उसे रखा, फिर भी उसने एक दफा दूसरे लोगों के दुःख का दर्शन कर ही लिया। वह बुद्धिमान् था इसलिए उसने सोचा कि बावजूद इसके कि मैं राजपुत्र हूँ और मुझे दुःख से दूर रखा है, इतना दुःख दिखाई देता है तो दुनिया में कितना दुःख होगा। इसलिए यह सारा मामला बनावटी है। वे जो सुख भोगते हैं वे दुनिया को

दुःख पैदा किये गये हैं। इसीलिए उन्होंने घर छोड़ा और तपस्या की। फिर उन्हें दर्शन हुआ कि वासना बढ़ाने से दुःख होता है। अन्य लोग अपनी वासनाएँ इतनी बढ़ाते हैं कि उनके लिए उन्हें दूसरों को लूटना पड़ता है। आखिर मनुष्य-देह के साथ कुछ वासनाएँ तो जरूरी ही हैं परन्तु उन्हें कब्जे में रखो। यह समझो कि हमारी जैसी दूसरों की भी वासनाएँ हैं। इसलिए वासनाओं को मर्यादित रखो। यह रास्ता बुद्ध भगवान् ने बताया और उस जमाने के दुःखी लोगों को यह शिक्षा दी।

उन्हें पहला शिष्य मिला उनके पिताजी। इस तरह उन्होंने दुःख निवारण का काम राजमहल से शुरू किया। उन्होंने लोगों को समझाया कि तुम दूसरों को दुःखी बनाकर सुखी नहीं हो सकते। आँख को दुःखी बनाकर पाँव सुखी नहीं हो सकता। सब एक ही शरीर के अवयव हैं। एक के दुःख से दूसरा दुःखी होता है, क्योंकि उनका दुःख जुड़ा हुआ है। उन्हें कुछ लोग ऐसे मिल गये जिन्हें उन्होंने इन्सानियत का पाठ पढ़ाया। इसका मतलब यह है कि उस जमाने में लोग आज से सुखी थे, ऐसा मानने की जरूरत नहीं। आज जिस तरह लूट चलती है वैसे ही उस जमाने में भी चलती थी। केवल उस लूट के तरीके भिन्न थे। उससे मुक्त होने का रास्ता बुद्ध भगवान् ने बताया यह बड़ी भारी चीज है। दुनिया उसे हमेशा याद रखेगी।

बुद्ध भगवान का महान् कार्य

आज बुद्ध-धर्म एक धर्म के रूप में हिन्दुस्तान में प्रचलित नहीं है परन्तु हरएक हिन्दू धर्म-कार्य करते समय कहता है कि 'बौद्धावतारे' यानी आज भी बुद्ध का अवतार चल रहा है। मुझे याद आता है कि बुद्ध भगवान् ने भक्ति-संघ और भिक्षु-संघ निर्माण किये थे। भक्ति का मतलब है श्रम करने वाला और 'भिक्षु' का मतलब है जो दुनिया की निरंतर सेवा करता है और दुनिया जो खिलाती है वही खाता है। खाना चाहे कुछ भी मिल जाये, वह काम करता जाता है। उन्होंने इस तरह के भक्त सेवावाले हजारों की तादाद में निर्माण किये, जब कि उस जमाने में आमदरफ्त के साधन नहीं थे। वे भिक्षु गाँव-गाँव घूमे और उन्होंने लोगों को धर्म की दीक्षा दी।

बुद्ध भगवान् की एक कहानी है : एक दफा एक शिष्य एक भाई को भगवान् के पास ले आया और उनसे कहा : इसे दीक्षा दीजिये। भगवान् ने उससे पूछा : क्या तुम्हारा आज खाना पीना हुआ है? तब उसने बताया कि मैंने दो दिन से कुछ खाया नहीं तो भगवान् ने अपने शिष्य से कहा : इसे पहले खाना खिलाओ। इसको उपदेश देने के लिए मेरे पास दूसरा कोई उपदेश नहीं है। यही है बुद्ध धर्म। इसीके प्रचार से हम तो उस समय भारत में इन्सान बन गये। यही सिलसिला अफगानिस्तान में हुआ यहाँ 'रहीम' और 'रहमान' का नाम लेकर एक फकीर पैदा हुआ और उसने यहाँ के लोगों को इन्सान बनाया। यही सिलसिला फिलस्तीन में हुआ, यहाँ ईश्वर के पुत्र ने बताया कि प्रेम ही ईश्वर का रूप है। ईश्वर क्या मूर्ति या चित्र है? वह तो हमारे ध्यान के लिए एक उपाय बनाया गया है, पर ईश्वर का असली रूप प्रेम है।

तो, मैं कह रहा था कि बुद्ध भगवान् ने चाहा कि भिक्षु समाज के सबसे छोटे और दुःखी लोगों के लिए अपना सबकुछ छोड़ें। भिक्षुओं को उनको सुखी बनाने के लिए त्याग करना और गाँव गाँव घूमना चाहिए। जब मैं भूदान-यज्ञ के बारे में सोचता हूँ, तो उन भिक्षुओं का स्मरण हो जाता है। वे कैसे घूमते होंगे, इसका मुझे स्मरण हो जाता है। एक कहानी है : एक दिन आनन्द ने एक बहन को भगवान् के पास लाकर कहा कि अब तक आप पुरुषों को ही दीक्षा देते थे, लेकिन अब इस बहन को भी दीजिये। तब उन्होंने उसे भी दीक्षा दी। फिर स्त्रियों को दीक्षा देना आरम्भ हुआ और हिन्दुस्तान में हजारों स्त्रियाँ साध्वी और सन्यासिनी बनकर घूमती थीं। जब मैं इसे याद करता हूँ तो मुझे गौरव मालूम होता है कि मैं ऐसे देश में पैदा हुआ हूँ। इतनी महान् मिसाल और किसे मिली होगी?

भिक्षु की वृत्ति चाहिए

अभी जो यज्ञ शुरू हुआ है, उसके लिए हमें सर्वस्व छोड़नेवाले शक्ति और भिक्षु चाहिए। फिर भी जैसा कि मैंने चाण्डिल में कहा था, मैं संघ नहीं बनाऊँगा, बल्कि एक वृत्ति निर्माण करूँगा। वृत्ति निर्मित होने पर वे लोग अपने जीवन

में परिवर्तन करेंगे। जैसे दीपक से दीपक जलता है, वैसे ही एक-एक व्यक्ति के जरिये दूसरे व्यक्तियों के जीवन में परिवर्तन होगा। विचार प्रचार के लिए सब स्थान पर तो संकुचितता आ जाती है विचार को खुला या मुक्त छोड़ना ही जरूरी है। एक बार एक भाई ने मुझसे पूछा कि हम भूदान का काम करना चाहते हैं परन्तु हमारा घर है और घर में खेती का काम है। इसलिए उस काम के लिए भी कुछ समय देना पड़ेगा। मैंने उससे पूछा कि अगर आप जेल में होते तो क्या करते? उसने कहा : जेल में होता तो फिर घर बार की चिन्ता छोड़नी ही पड़ती। मैंने कहा : जेल में होते, तो जो करते वही अब करो। घर का काम जैसा चल रहा है वैसा चलने दो। आखिर यहाँ से एक दिन उठना ही है। फिर जब जाओगे तो घर का क्या होगा? मैंने ऐसे भी बेदरकार और [illegible] लोग देखे हैं, जो बीवी और चार-पाँच बच्चों को छोड़ बिना नोटिस के एक क्षण में चले जाते हैं। इसलिए उसकी चिन्ता न करनी चाहिए।

भिक्षु और यति घर छोड़कर जाते थे। इस तरह छोड़ने की शक्ति जब तक हममें नहीं आती तब तक काम नहीं होगा। जब तक मनुष्य सोचेगा कि पुराने सब पाप कामों के साथ एक यह भी नया काम उठा लूँ, तो क्रान्ति नहीं हो सकती। समर्थ विचार जहाँ फैलना होता है, वहाँ छोड़ने की ताकत चाहिए। इसीको संन्यास कहते हैं। ऐसा फकीरी बाना लेकर, सब छोड़कर नम्र बनकर काम करनेवाले कार्यकर्ता चाहिए। हमें पाँच करोड़ एकड़ जमीन का बँटवारा करना है एक क्रान्ति करनी है ऐसा हम कहते हैं। किन्तु त्याग बगैर कैसे काम होगा? लोगों के हृदय में परिवर्तन लाने का काम छोटा नहीं।

कुछ लोग सर्वस्व त्याग करें

कम्युनिस्ट लोग कहते हैं कि आपको कुछ लाख एकड़ जमीन मिली तो उससे क्या हुआ? वे ठीक कहते हैं थोड़ी जमीन हासिल करने से हमारा काम नहीं होगा। हमें तो हृदय परिवर्तन करके जमीन प्राप्त करनी है। हम चाहते हैं कि जिन्होंने जमीन दी वे गरीब को अपने घर का लड़का मानें। मानव के मन में ऐसा परिवर्तन लाने की हिम्मत होनी चाहिए। यह हिम्मत वे ही कर सकते हैं,

या अपने मन में परिग्रह रखते हैं, निरन्तर व्यापार करते और अहंबुद्धि की रक्षा कोशिश करते हैं। कम्युनिस्ट भी कहते हैं कि सारे समाज का ढाँचा बदले बगैर काम नहीं होगा। उनके कहने में कुछ सार जरूर है, पर मैं चाहता हूँ कि यह काम शान्ति और प्रेम से हो। जो ताकत शान्ति और प्रेम में है, वह अशान्ति और द्वेष में नहीं। अशान्ति और द्वेष से अगर कुछ काम बना भी तो दोगुना दुःख पैदा होता है। इसीलिए हम प्रेम का रास्ता लेना चाहते हैं।

यह काम आत्मशुद्धि और सर्वस्व त्याग के बगैर नहीं होगा। हम सारी दुनिया का मसला हल करने के लिए नहीं बैठे। दुनिया में तो सिर्फ यही करते हैं कि गरीब को घर में रखकर उसे दिखावे का दान करो। आपके हृदय में गरीब के लिए प्रेम पैदा हो यही हम चाहते हैं। इसीलिए पूरे प्रेम से और समझ बूझकर दान देनेवाले लोग हमें चाहिए। लेकिन इसके लिए कुछ लोगों को सर्वस्व छोड़ना होगा। सबको परिमित और समान भोग देने के लिए कुछ लोगों को सर्वस्व त्याग करना होगा। लोगों को जब हम थोड़ा-सा त्याग सिखाना चाहते हैं, तो कुछ लोगों को असीम त्याग भी करना होगा। सूर्य जब तपता रहता है, तभी हमारे शरीर में ९८ डिग्री उष्णता रहती है। अगर वही ९७ हो जाय, तो हमारी क्या हालत होगी? अगर हम चाहते हैं कि लोगों का जीवन प्रेममय हो तो हमें अपना जीवन पूरा प्रेममय बनाना होगा।

राँची
९-७-५१

बनी-बनायी संस्था से क्रांति नहीं होती : २१

हमें ध्यान में रखना चाहिए कि क्रांति कभी बनी-बनायी संस्था से नहीं होती। कोई कितनी भी बड़ी संस्था हो फिर भी वह एक पार्टी है नेशन (राष्ट्र) नहीं। चाहे कुछ भी हो वह पार्टी शासन पर चलेगी। लेकिन क्रान्तियाँ पार्टी-शासन से नहीं होतीं। क्रांति के अग्रदूत हमेशा व्यक्ति होते हैं। क्रांति का झंडा व्यक्ति से ही उठाया जाता है। वे आम समाज में जाते, उन्हें संदेश सुनाते और समाज का कोई कार्यक्रम उठा लेते हैं। जिन्हें क्रान्ति का दर्शन होता है, वे सीधे जनता में जाकर काम करते हैं। जो राजनैतिक और संकुचित दायरे में सोचते हैं वे Strength (शक्ति) और Power (प्रभुत्व) का भेद नहीं पहचानते। Power को ही Strength समझते हैं।

यह काम मेरे लिए है।

हमें सारे समाज में परिवर्तन करना है, तो हममें धीरज की अहिंसा चाहिए। इसीलिए कोई हमारा विरोध करे तो उससे हमेशा प्रेम से बोलना चाहिए। इस क्रान्ति के लिए सबसे बड़ा तेज औजार है निरंतर समाधानीपन। हमारी वृत्ति मेरु पर्वत के जैसी स्थिर होनी चाहिए और विचार अधिकाधिक शुद्ध होना चाहिए। मैंने तो अपने मन में समझ लिया था कि यह काम मेरे लिए है। और किसीके लिए है या नहीं यह वे ही जानें। किंतु यह काम मेरे लिए है और मैं इसीमें खतम हो जाऊँगा।

एवरेस्ट और ऊँचे व्यक्ति

हम लोगों में एक बहुत बड़ी खामी है। हिन्दुस्तान में बड़े बड़े ऊँचे लोग रहते हैं कि दुनिया के किसी भी देश के ऊँचे लोगों के मुकाबले में वे टिक सकते या उनसे भी ऊँचे साबित हो सकते हैं। फिर भी हिन्दुस्तान की आम जनता का स्तर (level) दूसरे देशों की आम जनता के स्तर से कम है यह एक बड़ी विचित्र बात है। इसका कारण यही है कि यहाँ जो महापुरुष हुए, उन्होंने ध्यान

योग आदि की साधना बहुत की है। उन्होंने दुनिया से अपने को अलग रखने की हिम्मत की, परन्तु उससे एकरूप होने की हिम्मत नहीं की। जहाँ कहीं गन्दगी होती या बुराई दिखाई देती है, वहाँ से दूर ही भागने की उनकी प्रवृत्ति रही है। ऐसे स्थान में जो हमारी व्यापक कसरत है, उसे उन्होंने कभी नहीं साधा। एकान्त में जाने में उन्हें भारी तकलीफ उठानी पड़ी। हिमालय तक गये और उन्होंने सहन की, पर सामाजिक तकलीफ उठाने की कोशिश नहीं की। यहाँ के कुछ ऊँचे लोग 'एवरेस्ट' जैसे अगम्य रहे हैं। लेकिन अब लोग एवरेस्ट पर भी पहुँचे हैं, तो हम उम्मीद करते हैं कि साधारण लोग भी उन ऊँचे सज्जनों के पास पहुँच सकेंगे। गांधीजी ने रास्ता खोल दिया है। अब तो ऊँचों की साधारण लोगों में दिलचस्पी निर्माण होगी। गांधीजी के जमाने में ही यह हुआ है। उसी जमाने में हम एवरेस्ट तक पहुँचे।

रांची

१-७-५३

आज के युग में आत्मौपम्य : २२ :

इस दुनिया में विविधता है और भिन्नता भी। किसी एक का चेहरा दूसरे के चेहरे के साथ नहीं मिलता। हरएक का चेहरा दूसरे के चेहरे से अलग होता है। यहाँ तक कि एक पेड़ पर जो पत्ते होते हैं, उनमें भी अपनी-अपनी विशेषता रहती है। इस तरह सारी सृष्टि में विविधता, विभिन्नता और विभिन्नत्व है।

आन्तरिक एकता ही

किन्तु यह भिन्नता बाहर की है। अन्दर से तो हम एकता ही महसूस करते हैं। प्यास और भूख की भावना सभी में समान रूप से पायी जाती है। प्रेम को भी सभी महसूस करते हैं। इस तरह कुछ बुनियादी भावनाएँ सबमें समान रूप से काम करती हैं। इसीलिए शास्त्रकारों ने हमें समझाया है कि हम अपने पर से दूसरों का खयाल करें। हमें भूख लगती है और उस समय खाना मिलने से खुशी होती है, तो दूसरों को खिलाकर खाना हमारा धर्म हो जाता है। अगर हमें भूख

नहीं लगती, तो दूसरों को खिलाकर खाने का धर्म हमें नहीं मिल पाता। किन्तु चूँकि हमें भूख और प्यास है, इसलिए दूसरों की भी भूख और प्यास का खयाल करना चाहिए। सब धर्मों ने यह सीधी-सादी-सी शिक्षा दी है कि आत्मौपम्य भाव से काम करो।

हनुमान् रावण के सामने खड़ा होकर कह रहा था कि तुम भी गृहस्थ हो और रामजी भी गृहस्थ। तुम्हारे भी पत्नियाँ हैं और रामजी के भी पत्नी है। इसलिए तुम्हें भी उन भावनाओं का अनुभव है जिनका रामजी को है। ख्याल करो कि अगर तुम्हारी पत्नी का कोई हरण करता है, तो तुम्हें कितना दुःख होगा ! यही सोचकर सीताजी को छोड़ दो तो रामजी इतने क्षमाशील हैं कि वे तुम्हें क्षमा कर देंगे। इस तरह हनुमान् ने रावण को आत्मौपम्य का बोध दिया।

धर्म की बुनियाद आत्मौपम्य

आत्मौपम्य से काम करो यही तो धर्म की बुनियादी बात है। आज यह रामायण की बात चलती है। भगवान् ने जिसे ज्यादा बुद्धि शक्ति या संपत्ति दी है, उन ताकतों का उपयोग वह व्यक्ति दूसरों को दबाने में करता है। लेकिन जब तक यह व्यवस्था रहेगा, तब तक मनुष्य-समाज में मानवता नहीं रहेगी और वह आसुरी समाज बन जायगा। आज विज्ञान के कारण मानव के हाथ में कई प्रकार की शक्तियाँ और सिद्धियाँ आयी हैं। मानव अगर उनका उपयोग आत्मौपम्य से करेगा, तो दुनिया का स्वर्ग बन जायगा। एक जमाना था जब कि कुदरत के साथ लड़ने में मनुष्य की बहुत-सी ताकत खर्च होती थी; क्योंकि उस कुदरत के कानूनों का ज्ञान नहीं था। आज भी पूरा ज्ञान तो नहीं है फिर भी कुछ ज्ञान है, इसलिए कुदरत के साथ लड़ने में उतनी शक्ति खर्च नहीं करनी पड़ती जितनी उस समय खर्च करनी पड़ती थी। इसलिए आज हमारे हाथ में ऐसी शक्ति आयी है जिससे दुनिया पर स्वर्ग ला सकते हैं। विज्ञान के साथ हिंसा को जोड़ दिया तो दुनिया का खात्मा होगा।

मैं विज्ञान की बहुत प्रगति चाहता हूँ क्योंकि मैं मानता हूँ कि विज्ञान के कारण मनुष्य का जीवन सरल बन सकता है, समृद्ध बन सकता है। किन्तु उसके

साथ और एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि वैद्य बीमार को दवा बताता है और उसके साथ पथ्य भी। वैद्य कहता है कि यह दवा असरकार और वीर्यवान् है, परन्तु उसके साथ इस पथ्य का पालन जरूरी है। अगर पथ्य का पालन नहीं करते हो तो यह दवा जितनी असरकार और वीर्यवान् है उतना ही शरीर का नाश करेगी। इसी तरह विज्ञान के लिए अहिंसा का पथ्य जरूरी है। पहले के जमाने में जब कि मनुष्य अपने मसलों को आम तौर पर हिंसा से हल करता था, हिंसा उतनी बड़ी नहीं थी। इसलिए वह हिंसा उतना नाश नहीं कर सकती थी। बिहार में प्राचीन काल में भीम और जरासन्ध की कुश्ती हुई थी। उस द्वंद्व युद्ध में जरासन्ध खतम हुआ और इसी तरह फैसला हुआ। किन्तु उससे दूसरे लोगों को तकलीफ नहीं हुई, क्योंकि उस समय हिंसा सीमित थी। इसलिए वह हिंसा ज्यादा नाश नहीं कर सकती थी। किंतु आज वह द्वंद्व युद्ध का जमाना नहीं रहा है। आज हिंसा से कोई मसला हल करने की कोशिश करें तो दूसरे पचास मसले खड़े हो जाते हैं। आज तो भयानक परिमाण में लड़ाई होती है। अतः हिंसा से आज मसला हल करने का सोचा कि दूसरा मसला खड़ा हो जाता है। इसलिए विज्ञान के साथ अहिंसा का पथ्य जरूरी है।

अगर हम यह पथ्य नहीं चाहते, तो हमें दवा भी नहीं लेनी चाहिए। फिर तो विज्ञान की प्रगति रोकनी पड़ेगी। किंतु कोई भी विज्ञान की प्रगति रोकना नहीं चाहता। चाहेंगे तो भी रोक न सकेंगे, ऐसी आज की हालत है। हम तो चाहते हैं कि विज्ञान बढ़े, पर उसके लिए जरूरी है कि मानव के मसले अहिंसा से ही हल किये जायें। इसलिए हिंसा को छोड़ना होगा और सारे मसले आत्मौपम्य भाव से ही हल करने होंगे।

रामगढ़
१२-७-५२

जब मुझे पहले गोरक्षा बंदी के लिए अनशन करनेवाले बीरजी के सामने मन अपनी बात रखी। उन्होंने मेरा विचार कबूल किया और अनशन छोड़ा। उनके सामने मैंने जो बातें कहीं उनका थोड़ा सार अभी मैं आपके सामने रखूंगा क्योंकि उसमें एक धर्म विचार है।

अनशन कब किया जाय?

कर सकता है। किन्तु एक एक मसले के लिए किसीको तीव्रता मालूम हो और वह सरकार के खिलाफ उपवास करे, तो इसमें अहिंसा नहीं होगी।

इसका मतलब यह नहीं है कि सत्याग्रही को अनशन का मौका नहीं मिलेगा या उसे अनशन का हक नहीं है। हम मानते हैं कि अनशन सत्याग्रही का उत्तम शस्त्र है। हम सत्याग्रही को निःशस्त्र बनाना नहीं चाहते, परन्तु उस शस्त्र की सफलता इस पर निर्भर है कि उसका ठीक उपयोग हो। नहीं तो वह बेकार साबित होगा। जहाँ सरकार गुमराह हो और जनता कुछ भी न सुने, वह भटक गयी हो वहाँ अत्यन्त व्याकुल होकर सत्पुरुष परमेश्वर की प्रार्थना के लिए उपवास कर सकता है। किन्तु जहाँ सरकार किसी विषय पर खींच रही हो और वहाँ की सब जनता के आन्दोलन चलाने के लिए जनमत तैयार करने की गुंजाइश हो वहाँ उपवास नहीं करना चाहिए। जहाँ जनता और सरकार, दोनों गुमराह हों और जैसा कि व्यास भगवान् ने आखिर में कहा था 'न च कश्चित् शृणोति मे'—मेरी कोई सुनता नहीं ऐसी हालत हो, वहाँ वह सत्पुरुष—जो अपने हृदय में शुद्धि पाता हो और जिसने दुनिया की बहुत सेवा की हो—उपवास कर सकता है। किन्तु ऐसे प्रसंग कम ही आते हैं। साधारण हालत में उपवास करना गलत है।

सत्याग्रह धमकी नहीं, प्रेम का प्रकार

मेरा यह भी कहना नहीं कि जहाँ जनता की शक्ति प्रकट है, जनता के हाथ में सत्ता आ गयी है वहाँ सत्याग्रह के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं। सत्याग्रह तो कुटुम्ब में भी हो सकता है। इसलिए अपना राज्य होने से सत्याग्रह नहीं करना चाहिए ऐसी बात नहीं। सत्याग्रह कोई धमकी नहीं वह तो प्रेम की प्रक्रिया है वह एक सौम्य उपाय है। सामनेवाले को अपनी आत्मा में स्थान देना है, इसी वृत्ति से सत्याग्रह हो सकता है। सत्याग्रह करने का हक तो माता का है। माँ-बाप बच्चों के खिलाफ या बच्चे माँ बाप के खिलाफ सत्याग्रह कर सकते हैं—जैसे प्रह्लाद ने अपने पिता के सामने अत्यन्त निर्वैर भाव से सत्याग्रह किया था। इस तरह अपने राज्य में भी सत्याग्रह का मौका आ सकता है। अन्तिम सत्याग्रह 'अनशन' है। जहाँ प्रेम का प्रसंग हो वहीं पर वह हो सकता है। पर दूसरों को मार-पीट नहीं कर सकता, तब उपवास किया जाय, ऐसी बात नहीं।

अभी आपाजार प्रान्त रचना के लिए उपवास हुए। उसके साथ-साथ हिंसा भी चली। उपवास और हिंसा दोनों मिलाकर एक मसला हल करने की कोशिश हुई। इस तरह का उपवास प्रेम समर्पण का चिह्न नहीं। वह तो एक दबाव डालने का तरीका है। इसलिए उसकी गिनती एक किस्म की हिंसा में ही हो सकती है। उससे तो शस्त्र से भी ज्यादा हिंसा हो सकती है। अतः विवेक रखकर ही उपवास के प्रयोग किये जाने चाहिए। हिन्दुस्तान में जहाँ-जहाँ मेरी यह आवाज पहुँचेगी वहाँ-वहाँ मैं चाहता हूँ कि अनशन करने का मौका आने पर मेरी सलाह ली जाय। गीता ने भक्तों का यह लक्षण बताया है कि वे एक-दूसरे से सलाह करके अपने काम करते हैं — बोधयन्तः परस्परम्। इस तरह सलाह करने से वे कुछ भी न खोयेंगे बल्कि बहुत पायेंगे। अगर सलाह हो, तो मुझ जैसा मनुष्य अनशन की बात नहीं करेगा। इसलिए मैं चाहता हूँ कि जो कोई अनशन करना चाहता है वह पहले मुझसे सलाह करे।

प्लानिंग में मूलभूत गलती

हम अखबार में रोज पढ़ते हैं कि लोग उठते हैं और ट्रेन रोकते हैं और फिर पुलिस द्वारा पीटे जाते हैं। आखिर यह सब क्यों होता है? उधर मद्रास में राजाजी ने तालीम में परिवर्तन करना चाहा। उन्होंने एक नयी योजना बनायी जिसके अनुसार विद्यार्थी तीन घंटे पढ़ाई करेगा और बाकी का समय [illegible] चुनकर शिक्षक इनमें से किसीके पास उद्योग सीखने में बितायेगा ताकि उसका दिल और दिमाग दोनों विकसित हो सकें। लेकिन कुछ लोगों को यह विचार पसन्द नहीं आया। वे कहने लगे, 'आप शहरवालों की बुद्धि तो बढ़ने देते हैं और हमें ही श्रम करने के लिए कहते हैं। हमें कहते हैं कि आटा पीसते और हल चलाते रहो।' इस तरह कुछ लोगों ने इसका विरोध किया। उन्होंने इसके विरोध का तरीका निकाला ट्रेन रोको, गड़बड़ करो। उधर बंगाल में भी यही बात हो रही है। इसलिए हमें सोचना चाहिए कि यह जो हिंसा की शक्ति काम कर रही है इसका मूल कारण क्या है?

साफ है कि हमें स्वराज्य तो मिल गया लेकिन सारे मसले अभी तक वैसे

ही पड़े हैं। पाँच साल के लिए सरकार ने एक योजना बनायी और उसमें से आधा समय बीत जाने के बाद अब ध्यान में आता है कि बेकारी बढ़ रही है। इसका मतलब यही है कि हमारा दिमाग सुस्त है। वह ठीक ढंग से नहीं सोच रहा है। मैं मानता हूँ कि कोई भी योजना कामयाबी तौर पर नहीं बनती, वह अधूरी होती है। किन्तु हमने एक योजना बनाकर दिल्ली के लिए रास्ता बनाया और उस रास्ते से कुछ चलने पर बीच में मालूम हुआ कि हम कलकत्ते की ओर जा रहे हैं, दिल्ली की तरफ नहीं तो कहीं चिन्तन में गलती जरूर है। चाहे हमारा वेग कितना ही कम क्यों न हो, हमें कुछ तो दिल्ली के करीब जरूर आना चाहिए था। उसमें कुछ थोड़ा सा सामान्य परिवर्तन करने से भी काम न होगा, क्योंकि मूल में ही गलती हुई है। आज के योजना बनानेवाले बहुत बड़े देश-सेवक हैं। उनमें कई मेरे मित्र भी हैं। उन्होंने देश के लिए अपना शरीर खपाया और आज भी खपा रहे हैं। वे देश-सेवा ही करना चाहते हैं। किन्तु जहाँ देश का मसला हल करना है, वहाँ बुनियादी तौर पर न सोचा जाय तो क्या फल होगा? मैंने दिल्ली में प्लानिंग कमीशन के सामने बड़े प्रेम से कहा कि आप इस देश में बेकारी का मसला हल करने की जिम्मेदारी नहीं उठाते तो आपका प्लानिंग 'नेशनल प्लानिंग' (राष्ट्रीय नियोजन) नहीं बल्कि 'पार्शियल प्लानिंग' (आंशिक नियोजन) होगा। क्योंकि 'नेशनल प्लानिंग' का यह सीधा अर्थ है कि इससे हम देश के सब लोगों को काम दे सकते हैं। यह कोई सिद्ध करने की बात नहीं है। भूमिति के स्वीकृत तत्त्व सिद्ध नहीं करने पड़ते। इसलिए जिस किसीने यह मान लिया कि देश के चन्द लोगों को हम काम नहीं दे सकते, तो उसका मतलब हुआ उसने नेशनल प्लानिंग करने में अपनी नालायकी जाहिर कर दी। कोई भी बाप कितना ही गरीब क्यों न हो, यह नहीं कहता कि मैं अपने घर के चन्द लोगों को ही खिला सकता हूँ और दूसरों को नहीं खिला सकता। हरएक पिता यही कहता है कि इस कुटुम्ब में जो कमाई होगी, वह कुटुम्ब के सभी व्यक्तियों में बँटेगी।

इसी दृष्टि से मैंने यह बात देश के सामने रखी। मैंने कहा कि अक्सर हर एक घर में पाँच भाई होते हैं। इसलिए छठा भाई दरिद्रनारायण का प्रतिनिधि

नम्बर मैं आता हूँ ऐसा माना। यह आवश्यक है, परन्तु नारायण आवश्यक ही होता है। इसलिए उस पर श्रद्धा रखकर उसके लिए कुछ हिस्सा दो। मैं मानता हूँ कि हमारी राष्ट्रीय सरकार भी सब लोगों से ऐसी ही माँग कर सकती है। उसे वैसी माँग करने का हक है और उसे सहयोग देना लोगों का कर्तव्य भी है। अगर ऐसा हो जाय तो देश में कोई भी भूखा नहीं रहेगा। सबको तकली देने से सबको काम मिलता है, तो हम तकली दें। चरखा देने से काम मिले, तो चरखा दें। यन्त्र का ही आग्रह न रखना चाहिए। 'भारत की बेकारी का यंत्र' ऐसा सवाल आपके सामने हो तो हम यन्त्र ही स्वीकार करेंगे, ऐसा कहना और यंत्रों की आसक्ति रखना ठीक नहीं है। मैं यन्त्रों का विरोधी नहीं हूँ।

यन्त्रसम्बन्धी विवेक

इसका यह अर्थ नहीं कि मैं यन्त्रों का विरोधी हूँ। यन्त्र तीन प्रकार के होते हैं: (१) समयसाधक (२) संहारक और (३) उत्पादक। इनमें समय-साधक यन्त्रों का मैं विरोध नहीं करता। ट्रेन हवाई जहाज जैसे यन्त्रों से उत्पादन नहीं बढ़ता बल्कि समय बचता है। इस प्रकार घोड़ों से हवाई जहाज की बराबरी नहीं हो सकती। इसलिए ऐसे यन्त्रों को हम चाहते हैं। किन्तु तोप बन्दूक बम जैसे संहारक यन्त्रों का अहिंसा में स्थान नहीं है। इसलिए ऐसे यन्त्रों को हम नहीं चाहते।

तीसरे प्रकार के उत्पादक यन्त्र दो प्रकार के होते हैं: (१) पूरक और (२) मारक यंत्र। जहां लोग अधिक हों वहाँ यदि कोई यन्त्र लोगों को बेकार बनाता है, तो वह मारक यन्त्र है। पर जहाँ मनुष्य शक्ति कम और काम ज्यादा हो, वहाँ वही यन्त्र मारक नहीं पूरक साबित होगा। एक देश में एक यन्त्र पूरक है, तो वही दूसरे देश में मारक। हिन्दुस्तान में बड़े-बड़े ट्रैक्टर जैसे यन्त्र लाने से लाजिमी तौर पर बेकारी बढ़ेगी। पर अमेरिका और रूस जैसे देशों में वे ही यन्त्र मारक नहीं, उत्पादक साबित होंगे। इसी तरह एक ही यन्त्र एक काल में मारक बन जाता है तो दूसरे काल में पूरक। इस तरह देश काल और परिस्थिति के अनुसार कोई भी यंत्र पूरक या मारक साबित होता है। इसलिए हम किसी यंत्र का

'यंत्र' के नाते न स्नेह रखना चाहते हैं और न द्वेष। किसी यंत्र की उपयोगिता देखकर ही हम उसका उपयोग करेंगे। किन्तु अगर हम यंत्र की आसक्ति रखते और कहते हैं कि मिल की कपड़ी बनानेवाले 'एफीशियण्ट' (सक्षम) औजार ग्रामोद्योग के नहीं हैं, इसलिए हम उनका उपयोग नहीं करेंगे तो कहना होगा कि ऐसा कहनेवाला देश के लिए जैसा चिंतन करना चाहिए, वैसा चिंतन नहीं करता। अगर हम कोई बात केवल पश्चिम में चल पड़ने के कारण उसके बारे में और मुल्क में आकर करते हैं—बावजूद इसके कि गांधीजी ने हमें आगाह कर दिया था—तो अवश्य गलती करते हैं।

मैंने यह भी देखा कि हम जहाँ समता की बात करते हैं, वहाँ ग्रामोद्योग उसके विरोध में विषमता की बात तो नहीं कर पाता, पर समता की बात जरूर करता है। वह कहता है कि आप समतावादी हैं, तो हम समतावादी। इस तरह एक गुण के विरुद्ध दूसरा गुण खड़ा करता है जिससे लड़ाई चल सकती है। आजकल पूँजीपतियों ने इसी समता का नारा अपनाया है। मैं भी समता चाहता हूँ पर यह नहीं चाहता कि कुटुम्ब में कुछ लोगों को खाना मिले और कुछ को नहीं। मैं चाहता हूँ कि सबको खाना मिले। अगर आज की हालत में ग्रामोद्योग के औजार सबको खाना देने में समर्थ हैं, तो उनका उपयोग करना चाहिए। चंद लोगों के लिए बाकी लोगों को बेकार रखकर हम कभी भी सक्षम बनने का दावा नहीं कर सकते। मुझे खुशी है कि अभी आगरा में कांग्रेस-कमेटी की बैठक में ग्रामोद्योग पर ध्यान दिया गया है।

आज के असंतोष का कारण बेकारी

आज हिन्दुस्तान में सर्वत्र असंतोष व्याप्त है। किसीके दिल में समाधान नहीं है। असंतोष किसी-न-किसी कारण प्रकट होता है। कई मसले लेकर लोग हिंसा करने को प्रवृत्त होते हैं, क्योंकि उनके दिल में समाधान है और वह हिंसा के रूप में फूट निकलता है। मैं जब तमिलनाड में काम कर रहा था, तब मैंने देखा कि वहाँ के मारवाड़ी व्यापारी सिंधी व्यापारियों का विरोध करते थे और वहाँ मारवाड़ी-सिंधी का वाद चलता था। मैंने कहा कि यह वाद तो निकम्मी बात

है। यह एक निमित्त बना है, कभी मारवाड़ी विरुद्ध सिंधी कभी तेलुगु विरुद्ध कन्नड़ कभी बिहारी विरुद्ध बंगाली और कभी हिन्दू विरुद्ध मुसलमान, ये जो सारे वाद चलते हैं, उनमें मूल बात यह है कि हिन्दुस्तान में आज उत्पादन अत्यन्त कम है और बेकारी व्याप्त है। इसी कारण यह असंतोष निर्माण हुआ है। यह किसी न-किसी तरह फूट निकलता है। इसके लिए कुछ किया जाना चाहिए। असंतोष मिटाने की कोशिश होनी चाहिए।

पहले मुखिया

गांधीजी की यह खूबी थी कि वे पहले जिसे मदद की सबसे अधिक जरूरत है, उसे मदद देते थे। अभी कवि 'गुलाबजी' ने मुझे सुनाया कि मदद देने का क्रम यह है कि पहले मुफ्लिस फिर दुखिया और बाद में मुखिया। किंतु आज तो इससे उल्टा क्रम चलता है। गांधीजी हमेशा यही सोचते थे कि जिन्हें मदद की सबसे प्रथम आवश्यकता है, उन्हें मदद देने का तरीका ढूँढा जाय। इसीमें से चरखा निकला है। यह उनकी अद्‌भुत प्रतिभा थी। यह काव्य शक्ति थी। सिर्फ कुछ शब्दों लिख डालने से कोई कवि नहीं बनता। शंकराचार्य ने कहा है "कविः क्रान्तदर्शी"—जिसे क्रान्त दर्शन होता है जिसे दूर का दर्शन होता है जिसे सूक्ष्म दर्शन होता है वह कवि है। इसी अर्थ में गांधीजी कवि थे। उन्होंने कई साल पहले से कह दिया था कि हिन्दुस्तान के लिए ग्रामोद्योग जरूरी है। उन्होंने नयी तालीम, राष्ट्रभाषा जमीन का बँटवारा आदि के सम्बन्ध में कई साल पहले से कह रखा था। कितना उनका उपकार है, कितनी उनकी महान् बुद्धिमत्ता है कितनी उनकी प्रतिभा है, कितनी उनकी सफलता है! इतना सब होने पर भी उनसे इतना प्रकाश पाकर भी हम आज लड़खड़ाते हैं, तो हम कितने कम-नसीब हैं।

सरकार को जनता का सहयोग हासिल होगा, तभी काम आगे बढ़ेगा। किन्तु जनता का सहयोग तो तब हासिल होता है जब उसे यह महसूस होता है कि साक्षात् उसके लिए कुछ हो रहा है। कम्युनिटी प्रोजेक्ट में जनता का सहयोग इसीलिए नहीं मिल रहा है कि चिन्तन का ढंग ही ठीक नहीं है। ग्राम को आधार

निर्यात पर रोक लगाने का हक होना चाहिए। गाँव में जो कच्चा माल पैदा होता है और जिसके पक्के माल की उसे जरूरत है, उसे गाँव में बाहर से ढूँढा जाय। जनता को विश्वास हो कि उसकी भलाई की बात हो रही है। तात्पर्य अगर हम देश में शान्ति चाहते हैं तो जनता के हित का बुनियादी चिन्तन होना चाहिए।

हिंसा कदापि न हो

दूसरी बात है कि अगर हम देश में शान्ति चाहते हैं, तो हमारे हृदय से हिंसा का कलुष निकल जाना चाहिए। हिंसा से यह देश बरबाद होगा। यह देश पिछड़ा है, यहाँ वर्षों से लक्ष्मी की अकृपा रही है। अगर हम लक्ष्मी, सरस्वती और शक्ति की उपासना करना चाहते हैं तो अज्ञान, भूख और बीमारी इन तीन राक्षसों को हटाना चाहिए। इसके लिए चित्त में हिंसा के भाव न रखकर परस्पर सहयोग का भाव होना चाहिए। मैं जैसे आप लोगों को देख रहा हूँ, वैसे ही अपने सामने इस चीज को अत्यन्त स्पष्ट रूप से देख रहा हूँ कि हिन्दुस्तान की विभिन्न राजनैतिक पार्टियाँ अगर आपस में सहयोग करना न सीखेंगी तो देश की बरबादी हो जायगी।

चुनाव रोको, लड़ो मत

मुझे बिहार में ही यह प्रेरणा हुई कि मैं पक्षों का मसला हल करूँ। ऋषियों की भाषा है 'चरैवेति चरैवेति।'

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठन् त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन्॥

इस श्रुति पर विश्वास रखकर मैंने चलना शुरू किया। मैं चाहता हूँ कि दिल जुड़ जायँ। लोग कहते हैं कि आप जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े कर रहे हैं तो मैं कहता हूँ कि अरे, यहाँ दिल टूटे हैं, वहाँ जमीन की क्या सोचते हो! पहले दिल जुड़ने दो। अगर दिल जुड़ जाय तो सारी दुनिया जुड़ जायगी। और जमीन के टुकड़े कहाँ हैं? मैं तो यहाँ देखता हूँ, यहाँ अनन्त आसमान, अखण्ड पृथ्वी और परमेश्वर की असीम कृपा ही देखता हूँ। आप "वन्दे मातरम्" कहते हैं और भाई-भाई आपस में लड़ते हैं। जो "वन्दे मातरम्" के साथ "वन्दे भ्रातरम्" नहीं कहते, उन पर माता प्रसन्न नहीं होती, ऐसा रवीन्द्रनाथ ने कहा है। इसलिए मैं

आपसे कहता हूँ कि चुनाव खेलो, 'चुनाव लड़ना' मत कहो। 'चुनाव लड़ना' यह जो अंग्रेजी भाषा का प्रयोग है, वह हमें बरबाद कर देगा। हमारे ऋषियों ने कहा है कि 'दुनिया एक खेल है'। जैसे कुश्ती में जीतनेवाले को इनाम मिलता है और लोग उसकी जयजयकार करते हैं और हारनेवाले की भी जयजयकार होती है, और उसे नारियल मिलता है, ऐसी दृष्टि रखकर चुनाव खेलो।

एक बार हमारे आश्रम में एक भाई आये, जो एक राजनैतिक नेता थे। मैंने उनसे कहा : आपके और मेरे विचार भिन्न हैं, फिर भी आप मेरे परम मित्र हैं। मैं आपके लिए प्राण दे सकता हूँ, क्योंकि आप पर मेरा बहुत प्रेम है। लेकिन मैं आपको वोट नहीं दे सकता, क्योंकि आपके विचार मुझे जँचते नहीं। आप और हम एक साथ काम करेंगे, एक ही आश्रम में रहेंगे, लेकिन जब तक आपके और मेरे विचार में फर्क है, तब तक मैं जनता से कहूँगा कि यह मेरा मित्र है, पर इसे वोट मत देना, क्योंकि इसका विचार गलत है। और आप भी जनता से कहेंगे कि विनोबा मेरा मित्र है, पर उसे वोट मत देना, क्योंकि उसका विचार गलत है। फिर जनता हम दोनों में से चाहे जिसे चुनेगी। उसके बाद जिन्हें वोट मिलेंगे, वे सरकार में जाकर जनता की सेवा करेंगे और जिन्हें वोट नहीं मिलेंगे, वे सीधे जनता में जाकर सेवा करेंगे। इस तरह दोनों जनता की सेवा करेंगे और दोनों एक-दूसरे से प्यार करेंगे। अगर ऐसा नहीं हुआ, तो परिश्रम से आयी हुई यह चुनाव प्रणाली इस देश को खत्म किये बगैर नहीं रहेगी, क्योंकि इस देश में पहले ही जाति, भाषा भेद आदि के कितने ही भेद हैं।

शंकर और विष्णु जैसे सेवक

इसलिए चुनाव चलते समय भी प्यार रखो। जनता चाहे जिसे चुने। जो जनता में जाकर सेवा करेंगे, वे शंकर भगवान् जैसे होने चाहिए और जो तख्त में जायेंगे, वे विष्णु भगवान् जैसे सत्ता और सम्पत्ति में अनासक्त और अलिप्त रहें। जो तख्त में बैठें, वे राजा जनक जैसे होंगे और जो तख्त में नहीं जायेंगे, वे शुकदेव जैसे होंगे। राजा जनक वैभव और भोग, दोनों में अत्यन्त अनासक्त और विरक्त थे। लोग उनके बारे में कहते थे कि "जनकको जनक हरि है पता

जाजलीति"—यह जनक आ रहा है, मेरा बाप आ रहा है, ऐसा कहकर लोग उनके पास दौड़ जाते थे। उनके बारे में कहा जाता है कि वे सोते थे, तो पास में सब की अग्नि होती थी। अगर नींद में कहीं उनका पाँव उस पर पड़ा तो भी वे न जागते थे। इतने वे अनासक्त और विरक्त थे और शुकदेव तो विरक्त थे ही। विष्णु भगवान् लक्ष्मी से अलिप्त रहते थे। लक्ष्मी उनके चरणों के पास पड़ी रहती तो भी वे उसकी ओर ध्यान नहीं देते थे। इसलिए जिन्हें राज्य में जाना हो उन्हें जनक या विष्णु बनना चाहिए और जिन्हें राज्य में न जाना हो उन्हें शुकदेव या शंकर बनना चाहिए। आज देश के लिए यह जरूरी है कि कोई ऐसा कार्यक्रम बनाया जाय, जिसमें सबका सहयोग प्राप्त हो सके। भूदान यज्ञ के पीछे अगर कोई चीज है, तो यही है कि यह एक ऐसा कुशल कार्यक्रम है जो सबको एक साथ ला सकता है, और सबको एक दूसरे से प्यार करने का मौका दे सकता है।

मैंने अभी दो मुख्य बातें बतायीं। एक तो यह कि जनता के दुःखों के निवारण का बुनियादी चिन्तन होना चाहिए और दूसरी बात यह कि सब पक्षों को परस्पर प्रेम करने का मौका मिलना चाहिए। मैत्री वृत्ति और अपनी मानसिक शान्ति आवश्यक है। भूदान यज्ञ के जरिये ऐसा मौका मिल सकता है। अगर हिन्दुस्तान में ये दो बातें नहीं चलीं तो हमारी आजादी कमजोर साबित होगी।

हजारीबाग
१८-७-५१

कोरिया का युद्ध, जो तीन साल से चल रहा था अब शान्त हो गया और वहाँ सुलह हो गयी है। अब इस सुलह को मजबूत बनाने का काम करना होगा। लेकिन बहुत खुशी होती है कि एक बार इस युद्ध युद्ध का अन्त तो हुआ। इसके कारण जागतिक युद्ध की आशंका हो रही थी इसलिए दुनिया की निगाहें इस पर लगी थीं। समझौते की चर्चाएँ तो चल ही रही थीं, पर उनमें अनेक विघ्न बाधाएँ भी उपस्थित होती जाती थीं। लेकिन परमेश्वर की कृपा से उनका निर्विघ्न अन्त हो गया। इसलिए हम परमेश्वर की कृतज्ञतापूर्वक मानसिक पूजा करते और उससे प्रार्थना करते हैं कि वह हम मानवों को सद्बुद्धि दे ताकि ऐसे भयानक युद्ध पड़े ही न हों।

आज के युद्ध प्राकृतिक नियम के विरुद्ध

ऐसे युद्ध क्यों होते हैं? युद्ध होने पर किसीको अच्छा तो नहीं लगता। जो इस युद्ध में शामिल होते हैं, वे लाचार ही हो जाते हैं। इन दिनों जो युद्ध चलते हैं, वे तो बड़े ही भयानक और खतरनाक होते हैं। तीन साल से चल रहे इस युद्ध के बाद उस देश को फिर खड़े होने में न मालूम कितने साल लगेंगे। इससे जो नुकसान हुआ है, कहा नहीं जा सकता कि उसकी कैसे पूर्ति होगी। इस युद्ध में जो मरे, वे तो छूट गये। पर जितने मरे होंगे, उनसे कई गुना अधिक जख्मी होकर जीवनभर के लिए भारभूत हो गये होंगे। आजकल के युद्धों में बड़ी खतरनाक बात यह होती है कि ये युद्ध प्रकृति के वैज्ञानिक नियमों के विरुद्ध होते हैं। प्रकृति का नियम है सरवाइवल आफ दी फिटेस्ट (सबसे शक्तिशाली ही जीवित रहता है)। लेकिन इन हिंसात्मक युद्धों में जो आजकल वैज्ञानिक ढंग से चलाये जाते हैं बड़े पैमाने पर जवानों की आहुति दी जाती है। जो 'फिटेस्ट' होते हैं उनकी आहुति दी जाती है और जो अनफिटेस्ट होते हैं, वे घर बैठते और बच जाते हैं। यह सृष्टि के कानून के विरुद्ध बात होती है। अब इनके कारणों का शोधन होना चाहिए।

विश्वास है कि यह काम होकर रहेगा और जल्द-से-जल्द होगा। इस काम से ऐसे गुण और ऐसी कुंजी हासिल होगी जो पचास सालों को लग सकती है। उसमें थोड़े मसले हम हो सकते हैं। जमीन कितनी मिली और पैसी मिली इसका हिसाब-किताब हम रखते हैं। यह जरूरी हिसाब है, इसके साथ हम यह भी कसौटी रखते हैं कि हमें कितने कार्यकर्ता मिले जो मानवता पर विश्वास और विचार पर निष्ठा रखते हैं। ऐसे सेवकों को हम एक बात बताते हैं कि आपको अपने साथियों पर आन्तरिक श्रद्धा होनी चाहिए, जैसे माँ का बच्चे पर विश्वास होता है। बच्चे ने कितने भी बुरे काम किये, तो भी वह मानती है कि वह अंदर से अच्छा ही है। बच्चे ने थोड़ा सा अच्छा काम करते ही उसने मन से यह निश्चय कर लेती है कि लड़का सुधर गया। पचास काम बुरे करने पर भी वह लड़के के लिए श्रद्धा रखती है। ऐसी ही श्रद्धा हमें साथियों और विरोधियों के भी प्रति रखनी चाहिए। साथियों की बुराई सुनें तो उस पर विश्वास न करना चाहिए, पर यदि उनका अच्छा काम सुनाई पड़े तो हमें फौरन उस पर विश्वास कर लेना चाहिए। मनुष्य के हृदय में परमेश्वर रहता है, उसीके द्वारा अच्छे काम होते हैं।

बुराई के लिए सबूत चाहिए

हम स्कूल में व्याकरण पढ़ते थे। उसमें एक वाक्य आता था : 'कि स्पृष्ट इव ह गुण ह भी ह'। अर्थात् यह सागर इतनी अच्छी है कि कष्ट हो ही नहीं सकती। हमारे मन में आता था कि ऐसा क्यों? पर अभी मालूम हुआ कि 'कि स्पृष्ट इव ह गुण ह भी चाहिए'। अर्थात् यह सागर इतनी अच्छी है कि गलत हो ही नहीं सकती। वह सत्य होनी चाहिए। किसीमें इतनी अच्छाई नहीं हो सकती, यह बात तो हमें एकदम मानवता के विरुद्ध ले जाती है। कानूनदाँ जानते हैं कि कानून में एक बात है कि चाहे दस गुनहगार छूट जायें, लेकिन एक भी निर्दोष को सजा न होनी चाहिए। जहाँ जरा संशय हो, वहाँ उसे संशय का लाभ मिलना चाहिए। संशय का लाभ अच्छाई की तरफ होना चाहिए, बुराई की तरफ नहीं। कानून की यह बात बहुत अच्छी है और वह मानवता पर आधृत है। मनुष्य के हृदय में जो अच्छाई होती है, उसके लिए

कोई सबूत की जरूरत नहीं होती, बुराई के लिए ही सबूत की जरूरत होती है। सबूत मिलेगा, तो विश्वास करेंगे, अन्यथा सबूत मिलने तक समझेंगे कि बुराई नहीं है।

यह मानव पर परम श्रद्धा है। कानून ऊपर से लादे नहीं जाते। मानव में जो अच्छाई है उसी पर से वह आता है। मानव में यदि अस्ल में बुराई होती तो उसे बुराई पर इनाम मिलता, अच्छाई के लिए नहीं। अगर मानव के हृदय में बुराई ही होती, तो बुराई के लिए सजा न होती; बल्कि गुनहगार को बुलाया जाता और यदि साबित हो जाता कि उसने अच्छा काम किया तो उसे सजा देते और बुरा काम किया तो छोड़ देते। लेकिन कानून तो अच्छाई को इनाम देता है और बुराई को सजा। इसका मतलब यही है कि मानव के हृदय में अच्छाई है। यह श्रद्धा हम न खोयेंगे, तो समाज में शांति के तौर पर क्रान्ति ला सकते हैं, यह एक बुनियादी विचार है। अगर हममें ऐसी श्रद्धा हो तो हम यह भूदान-यज्ञ सफल कर सकते हैं।

जुलाई ५१

भूदान-यज्ञ : धर्म का एक नया पहलू : २५ :

पिछली बार जब हम यहाँ आये थे, तब यहाँ के महंतजी ने हमें कुछ जमीन दी थी। लेकिन वह तो पहला कदम था। उसके बाद भूदानवाले उनसे मिलने आये और फिर उन्होंने कुछ जमीन दी। आज भी वे कुछ देंगे। किन्तु इससे भी अधिक खुशी की बात आज हुई है। कुछ किसान अपनी शिकायतें ले आये थे। महन्तजी के मैनेजर के विरुद्ध उनकी शिकायतें थीं। उसमें तहकीकात करके उचित कार्रवाई करने का वचन उन्हें दिया गया। इस बात को हम बहुत ज्यादा महत्त्व देते हैं। इसके सामने उन्होंने जो भूदान दिया, उसकी भी कीमत कम है। आसपास के किसानों के दुःख समझकर हम उन्हें दूर करते हैं, तो उससे सारा वातावरण सुगंधित हो जाता है और जो भूदान के लिए जाते हैं, उससे भूदान का वातावरण बन जाता है।

भगवान् शंकर का अद्भुत काम

इन दिनों कुछ बड़े लोगों ने भी हमें दान दिया है। इनमें से कुछ लोगों ने मजदूर ही दरिद्रनारायण की सेवा की दृष्टि से दान दिया है। कुछ ऐसे लोग हैं, जो दान देकर साथ साथ हमारे काम के लिए भी निकल पड़े हैं। धर्म का यह सब प्रकट हो रहा है। धर्म का उदय हो रहा है। हमने गीता में सुना है कि जब-जब धर्म की ग्लानि होती है, तब-तब भगवान् धर्म-बुद्धि जगाता और फिर से धर्म प्रबल और मजबूत हो जाता है। आज हिन्दुस्तान में धर्म-बुद्धि जाग रही है, यह खुशी की बात है। यह आश्चर्य की बात नहीं कि हम (बोध गया में) हैं, जहाँ से जमीन मिली है। यह सब भगवान् शंकराचार्य का है। आखिर उन्होंने सब सिखाया है।

> न कर्मणा, न प्रजया न धनेन।
> त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।

यह वेद का एक वचन जिसके आधार पर भगवान् शंकराचार्य धर्म प्रचार के लिए हिन्दुस्तान में पैदल पैदल घूमते थे। हम भी घूमते हैं, परन्तु हमें काम न समझने के लिए हमारे आगे पीछे मोटरें चलती हैं। उन दिनों ऐसी कोई व्यवस्था नहीं थी। फिर भी एक दस-ग्यारह साल का बालक घर-बार छोड़कर निकल पड़ा। वह पैदल ही पैदल घूमने लगा। उसने बचपन से ही ग्रन्थों की टीका की जिसके लिए उसे बहुत विरोध सहना पड़ा। उसने अनेक ग्रन्थ लिखे और असाधारण ग्रन्थ लिखे जिनकी प्रभा आज तक हिन्दुस्तान में फैल रही है। शंकराचार्य ने अद्भुत कार्य किया। आम लोगों के लिए स्तोत्र लिखे जो समझने में भी मीठे हैं।

शंकराचार्य का संदेश

संन्यास और तपस्या और त्याग का सन्देश लेकर वे गाँव गाँव घूमे। ब्रह्मज्ञान के तरह ऊँचा और बढ़कर कोई धर्म नहीं है। उन्होंने त्याग से बढ़कर कोई चीज नहीं यह मानकर समझाया कि यह दुनिया एक माया है। वैसे तो यह मायावाद बड़ा

प्राचीन पुरातन है, लेकिन इसे अगर किसीने अत्यन्त लोकप्रिय बनाया है, तो वह भगवान् शंकराचार्य ने ही। वे तो ब्रह्मचारी थे उनके कोई सन्तान नहीं थी। लेकिन जो धर्म के सत्पुरुष हो गये, वे सारे इनकी सन्तान हैं। स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस आदि सभी सत्पुरुष शंकराचार्य की राह पर चलते थे। यह मठ भी उन्हींके नाम पर चल रहा है। इसलिए इससे हम अपेक्षा करते हैं कि ये लोग अपनी कुछ सम्पत्ति सब गरीबों को बाँट गरीबों की सेवा के लिए निकल पड़ें। 'शिवोऽहम्' —हम तो शिव हैं, सेवक हैं। शंकराचार्य को गरीबों का कितना अभिमान था! योगभ्रष्ट पुरुष के वर्णन के प्रसंग में गीता ने लिखा है : योगी अगर इस जन्म में कुछ पूरा नहीं कर पाते, तो कुछ खोते नहीं अगले जन्म में वे श्रीमान् या बुद्धिमान ब्राह्मण के घर जन्म पाते और अपना कार्य पूरा कर लेते हैं। इस तरह अपूर्ण योगी सुन्दर जन्म पाते हैं। जो श्रीमान् होते हैं उनके घर जन्म लेकर क्या भाग्य मिलता है! जो पवित्र हैं और श्रीमान् भी जैसे राजा जनक, उनके घर में जन्म लेना भाग्य की बात है। पर उससे भी श्रेष्ठ जन्म शंकराचार्य ने लिखा है : 'धीमतां दरिद्राणां कुले' जो पवित्र श्रीमानों के कुल में जन्म पाते हैं उनकी तुलना में दरिद्र योगियों के घर जन्म पानेवाले परम भाग्यशाली हैं। शंकराचार्य ने ऐसे ही दरिद्र कुल में जन्म पाया था। हमें आश्चर्य लगता है कि फिर भी उनके भक्तों के पास इतनी माया, और क्यों! हम यह भी जानते हैं कि माया-मोह एकदम छूटता नहीं। इसलिए हम परमेश्वर से प्रार्थना करेंगे कि ऐसे लोगों को जो शंकराचार्य को मानते हैं, वह सद्बुद्धि दे।

हिन्दू-धर्म की उदारता

हिंदू-धर्म को अगर किसीने मजबूत बनाया है तो वह शंकराचार्य ने। जो काम भगवान् बुद्ध ने किया उसीको इन्होंने आगे बढ़ाया। बुद्ध के जमाने में परयाग, कर्मकाण्ड चलते थे। लोग हत्या करते और परमेश्वर को उसका नैवेद्य चढ़ाते थे। निष्ठुरता को भी लोगों ने धर्म बना लिया था। इससे अधिक मानवता का पतन क्या है? बुद्ध भगवान् ने इसी पर प्रहार किया। शंकराचार्य ने

भी सीधे कर्मकांड पर प्रहार किया। उन्होंने इस पर जोर दिया कि इसी शरीर और जीवन में हृदय की शुद्धि और आत्मा की अनुभूति मिल सकती है। इसीमें सच्ची शुद्धि है और यही धर्म का सार है। शंकराचार्य ने कर्मकाण्ड से हमें मुक्त कर दिया, फिर भी कहीं-कहीं वे चलते ही हैं। हिन्दू धर्म में किसी भी चीज का आग्रह नहीं है। हिन्दुस्तान में कई विचारों, धर्मों और पन्थों के लोग हैं। जो मूर्ति-पूजा को मानता है वह हिन्दू हो सकता है और जो नहीं मानता, वह भी। यहाँ तक कि ईश्वर को माननेवाला हिन्दू होता है और न माननेवाला भी। इतनी परम उदारता हिन्दू-धर्म में आयी इसका सारा श्रेय हम शंकराचार्य को देते हैं। यह कोई नयी चीज नहीं है। जो वेदों और उपनिषदों में थी उसीको उन्होंने जनता के सामने रखा और इन बातों का विशेष जिक्र किया।

बुद्ध और शंकर

इसका परिणाम यह हुआ कि लोग कहने लगे कि शंकराचार्य तो "प्रच्छन्न-बुद्ध" यानी ढँका हुआ बुद्ध है। लोग कहते थे कि यह शंकर तो है, पर भगवान् बुद्ध का दूसरा अवतार है। इन दोनों में बहुत ही थोड़ा अन्तर था। वह था ब्रह्मजिज्ञासा के बारे में। बुद्ध भगवान् उस विषय में शान्त रहे। वे इसकी चर्चा में कभी नहीं पड़े। उनके शिष्य लोग जब इसके बारे में पूछते थे, लेकिन वे शिष्यों से कहते कि जीवों की सेवा करो, इसीमें शान्ति है। यही सच्चा कार्य है। आत्मा की बहस में मत पड़ो। लेकिन उनके जाने के बाद उनके शिष्य वादों के चक्कर में पड़े। शंकराचार्य ने उनकी न्यूनता बतायी। इतना ही शंकराचार्य और बुद्ध में विरोध था। बाकी जो सन्यास भगवान् बुद्ध ने माना था उसीको शंकराचार्य ने आगे चलाया। कर्मकाण्ड का वैसे ही विरोध किया और वैसे ही यज्ञों का निषेध एवं धर्म का अनुसरण किया।

हिन्दू-धर्म का सार : वेदान्त और भूतदया

हमें यह सुनकर बहुत खुशी होती है कि इस मन्दिर में दूसरी बुद्ध और हिन्दू दोनों हैं। हम मानते हैं कि बुद्ध धर्म का उत्कृष्ट आचरण हिन्दुस्तान में बन्द हुआ है। हम यह जरा नहीं कहते कि हमने बहुत अच्छी तरह से आचरण किया। पर

था भी किया। उस पर से हम कहते हैं कि बुद्ध का संदेश हमारे जीवन में उतर गया है। उनका मुख्य संदेश अहिंसा का था। अहिंसा जितनी यहाँ फूली-फली उतनी दूसरे देशों में फूली-फली है या नहीं हम नहीं जानते। बुद्ध धर्म की दया और करुणा और हिंदू धर्म की आत्मविद्या मिलकर आज का हिंदू धर्म बना है। हिन्दू धर्म में सिर्फ दो बातें हैं: एक ब्रह्मविद्या जिसे वेदान्त कहते हैं और दूसरी भूत-दया। इनमें से एक भी न हो तो वह हिन्दू धर्म नहीं हो सकता। शंकराचार्य ने एक स्तोत्र बनाया है जो रोज उनके मठों में पढ़ा जाता है। वह षट्पदी प्रार्थना है, जिसका एक श्लोक यह है :

> "अविनयमपनय विष्णो दमय मनः शमय विषयमृगतृष्णाम् ।
> भूतदयां विस्तारय तारय संसारसागरतः ॥"

अर्थात् भगवन्, तू ही मेरी भूतदया का विस्तार कर। यही भगवान् बुद्ध ने भी कहा है। इसलिए 'ब्रह्मविद्या और भूतदया' दो शब्दों में हिंदू-धर्म और बुद्ध धर्म का सार है। इसीको लेकर रामकृष्ण और विवेकानन्द आगे बढ़े।

भूदान-यज्ञ में धर्म का नया प्रयोग

इस भूदान-यज्ञ में धर्म का नया प्रयोग, नया पहलू शुरू हुआ है। हम तो केवल निमित्तमात्र बने हैं। हिंदुस्तान में जो धर्म की भावना है, उसीका यह फल है। वेदांत में बताया है कि हम सब आत्मरूप हैं, समान हैं, कोई ऊँच नहीं कोई नीच नहीं। इससे बढ़कर समता का कोई तत्त्व नहीं हो सकता, आधार नहीं हो सकता। समता का नाम तो रूस ने लिया, ब्रिटेन ने लिया और अमेरिका ने भी लिया, लेकिन वेदान्त में समता का जो आधार मिलता है, वह कहीं नहीं मिलता। भारतीय संस्कृति के दो मूल विचार हैं, जिनमें एक यह आत्यंतिक समता है और दूसरा है भूतदया। अर्थात् सब गरीबों का भूमि पर हक है, दूसरों को खिलाकर खाया जाय और पिलाकर पीया जाय। भूदान के मूल में ये ही दो विचार हैं। इसमें सबके लिए समान बुद्धि है और दया भी। इस्लाम धर्म में भी भूतदया का आविष्कार है। कुरान में लिखा है कि 'सब पर रहम करो'। ईसाई धर्म में भी ये ही दो बातें आती हैं। इस तरह भूतदया का विचार सब धर्मों में

मान्य है। ये बहुत सारे धर्म हिंदुस्तान में फले-फूले हैं। फिर भी हिंदू धर्म की अपनी एक विशेषता है और वह है समन्वय। हम इसी परिशुद्ध धर्म-विचार का प्रचार करना चाहते हैं। इसी धर्म-विचार को प्रकाशित करना चाहते हैं। इसके लिए भूदान का निमित्त मिल गया, क्योंकि वही आज के जमाने की समस्या है। अतः हमें इसीको आज हल करना चाहिए।

बोधगया
१-८-५१

नया अध्याय : २६

तेलंगाने में हमने जब काम शुरू किया, तब दो-तीन जमींदारों ने दान दिया था। उन्होंने दान माँगने का भी काम किया था। तब भी जमींदारों ने मदद की थी, लेकिन वह व्यक्तिगत तौर पर थी। लेकिन आज जमींदारों का समाज यह काम उठा रहा है, यह एक ऐतिहासिक की बात है। इसीलिए हम कहते हैं कि भूदान-यज्ञ के इतिहास में यह एक 'नया अध्याय' शुरू हुआ है। जिसकी हम कल्पना करते थे, वही आज साकार होता दिख रहा है। ये लोग अब अपना काम कर सारा समाज एकरस बनाने में मदद देंगे।

हमने वकील साहब से अच्छी जमीन की माँग की है। लोग हमें खराब जमीन भी देते हैं। हम उसे 'ना' नहीं कहते। अपने देश की जमीन न लेना हम मातृ-भक्ति के विरुद्ध समझते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को स्वीकार किया, इसमें विशेषता नहीं थी। लेकिन उन्होंने कुब्जा को भी स्वीकार किया—जिसके आठों अंग वक्र थे—इसीमें उनकी विशेषता है। इसलिए हमें आप जो भी देते हैं, उसे स्वीकार करते हैं। लेकिन खराब जमीन से यज्ञ का काम पूरा नहीं होता, इसलिए इसमें अच्छी जमीन ही देनी चाहिए। हमने वकील साहब का काम अच्छी जमीन का ही माँगा है।

गया
४-८-५१

आज अगस्त की नौ तारीख है। इस जमाने के इतिहास में इस दिन का नाम सबके हृदय में अंकित है। इस दिन देश के सामने एक मंत्र रखा गया। स्वराज्य का ही यह मंत्र था लेकिन उसका यह आखिरी पहलू था।

स्वराज्य का मंत्र

'स्वराज्य' शब्द का उच्चारण तो सन् १९०६ में दादाभाई नौरोजी ने किया। उसके पहले लोगों की छोटी-मोटी शिकायतें और उनके दुःख उस जमाने की सरकार के सामने यहाँ के शिक्षक तथा नेता रखते और एक-एक दुःख के निवारण की कोशिश करते थे। बहुत कोशिश करने के बाद समझ में आ गया कि इन दुःखों का मूल पारतंत्र्य है। जब तक देश स्वतंत्र नहीं होगा, तब तक वे दूर नहीं होंगे। जब इस चीज का दर्शन हुआ तभी से महर्षि दादाभाई नौरोजी ने यह 'स्वराज्य' का मंत्र देश के सामने रखा। तभी से इस मंत्र की साधना शुरू हुई और इसकी आखिरी आवृत्ति 'भारत छोड़ो' आज के दिन लोगों के सामने आयी। तब देश में एक बड़ी हलचल चल रही थी। एक बड़ी ताकत देश के सामने पड़ी थी। उससे लोहा लेना था। उसके पास शस्त्र थे और देश तो निःशस्त्र था। उसी हालत में अहिंसा की शक्ति पर आधार रखकर 'भारत छोड़ो' मंत्र का उच्चार हुआ। इसका तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि हजारों लोग गिरफ्तार हो गये, जिनका लाखों पर कुछ असर था। बाकी लाखों ने, जो नेतृत्वहीन हो गये थे, जो मन में आया सो किया। सरकार ने अपनी ताकत के अनुसार आन्दोलन दबाने की चेष्टा की और पूरी ताकत से उसे दबाना चाहा। ऊपर-ऊपर से दीखने लगा कि आन्दोलन बंद हो गया, दब गया और लोग पस्तहिम्मत हो गये। उसी जमाने में उधर बंगाल में अकाल पड़ गया जिसमें कई लाख लोग मर गये। इस तरह हिन्दुस्तान की बहुत ही बुरी हालत थी।

हम लोग उस जमाने में जेल में थे। हम लोगों में आपस-आपस में बहस

हो रही थी कि देश कैसे एक सका यह भय ऊपर कैसे उठेगा। लेकिन मंत्र कभी दबते नहीं। उनके पीछे ध्यान और शक्ति होती है। दर्शन से जब मंत्र की प्राप्ति होती है, तब वे मंत्र और पंख के उड़ने लगते हैं और सब प्रसारित होते हैं। जिस तरह सूर्यनारायण की किरणें हर जगह पहुँचती हैं, वैसे ही मंत्र हर जगह पहुँचते और हर हृदय में प्रवेश करते हैं। उस जमाने में चारों ऊपर से अँधेरा छाया था, फिर भी आन्दोलन के अन्दर की ज्योति जल रही थी। वह बुझनेवाली नहीं थी। नतीजा यह हुआ कि इस मंत्र-उच्चारण के पाँच साल बाद अंग्रेजों को हिंदुस्तान छोड़कर जाना पड़ा, यह आपने देख लिया। यह आन्दोलन आज के ही दिन हुआ था। इसीलिए यह दिन हमारे लिए प्रेरक है। इस दिन की याद से हमें प्रेरणा मिलती है, स्फूर्ति मिलती है और नये काम के लिए नया जोश मिलता है। ऐसे दिन का स्मरण हम कायम रखना चाहते हैं।

मन्त्रों के अवतार

जहाँ एक मंत्र समाप्त होता है, वहाँ परमेश्वर दूसरा मंत्र देता और फिर उसका काम चलता है। इस तरह मंत्रों का अवतार होता है। मंत्र का अवतार ही वास्तविक अवतार है। हम राम कृष्ण आदि को अवतार मानते हैं लेकिन वे तो निमित्तमात्र अवतार थे, जिनके जरिये मंत्र प्रकट हुए। मंत्र में शक्ति होती है, वो आम समाज की भावना और कुछ व्यक्तियों को विशेष स्फूर्ति देती है। तो उन व्यक्तियों के नाम पर बड़े बड़े काम हो जाते हैं। लोग उन्हींका नाम लेते और कहते हैं कि वे अवतार हैं। लेकिन अवतार वस्तुतः मंत्र के ही होते हैं। राम के पास मंत्र था, जिसे लेकर वे घूमे और ऋषि-आश्रम में पहुँचे। वहाँ एक ढेर लगा था। उन्होंने पूछा : 'यह कैसा ढेर है?' ऋषि ने उन्हें जवाब दिया : 'ऋषि अविरोधी होते हैं। उनके विरोध में जिन राक्षसों ने काम किया, उन्हींकी ये हड्डियाँ हैं।' रामचन्द्र ने कहा : 'इन ऋषियों की तपस्या से मुझे प्रेरणा मिली है। यह सारी भूमि राक्षसहीन होगी।' तात्पर्य ऋषियों की तपस्या ने एक मंत्र दिया और उसकी सिद्धि रामचन्द्र ने की। फिर भी लोग रामचन्द्रजी का स्मरण करते और उन्हें अवतार कहते हैं। वास्तव में वे तो एक कर्मपुरुष थे, उनके पीछे जो मंत्र था उसीने सारा काम किया।

परमेश्वर एक परम तत्त्व है। उसी तत्त्व से मंत्र स्फुरित होते और महापुरुषों को उनसे स्फूर्ति मिलती है। महापुरुषों के विचार समाज को चेतना देते हैं। इस तरह स्फूर्ति का स्थान और मंत्र का मूल परमेश्वर ही है। मंत्र के रूप में यह परमतत्त्व प्रकट होता है। जहाँ एक मन्वन्तर की पूर्ति होती है वहाँ दूसरा मन्वन्तर आता है जिससे दुनिया में सदा ताजगी रहती है। यही ईश्वर की लीला है। रामचन्द्र के जमाने में एक मंत्र हुआ, कृष्ण के जमाने में दूसरा मंत्र और बुद्ध के जमाने में तीसरा मंत्र हुआ। इस तरह मंत्र मिलते गये और दुनिया आगे बढ़ती गयी।

स्वराज्य के बाद सर्वोदय का मंत्र

एक मंत्र दूसरे मंत्र को जन्म देकर लुप्त हो जाता है। इस तरह बीज से फल होता है और फल से फिर बीज होता है। एक-एक बीज खतम होता और दूसरा बीज उगता है। इस तरह एक मंत्र जब सम्पूर्ण होता है तब दूसरा मंत्र आता है। दुनिया में कोई चीज विनाशी नहीं है यही विज्ञान ने हमें सिखाया है। स्वराज्य के मंत्र के साक्षात्कार की पूर्ति हो गयी तो गांधीजी ने दूसरा मंत्र देश के सामने रखा। उन्होंने उसकी तैयारी तो पहले ही कर रखी थी। उस नये मंत्र का नाम है: 'सर्वोदय'। उस मंत्र का बीज स्वराज्य के आन्दोलन में पहले ही डाला जा चुका था। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद वह अंकुरित हुआ है। जब तक 'स्वराज्य' मंत्र था तब तक यह बीज दबा था, अंकुरित नहीं हुआ था। पर जब 'स्वराज्य' फलित हुआ तो जो 'सर्वोदय' बोया था वह बीज जल्द अंकुरित हुआ। इस तरह सर्वोदय का आन्दोलन जारी हुआ।

मंत्र शब्दों में आता है, उसके बाद समाज में कुछ हलचल चलती है। उसमें कुछ प्रेरणा मिलती है और उसके बाद काम होता है। इसी तरह 'सर्वोदय' का काम चला। पहले 'सर्वोदय' शब्द आया। इसका अर्थ महान् है। यह शब्द सब अर्थों को एकदम प्रकट नहीं कर सकता, एक एक पहलू को प्रकट करता गया। उससे सबको प्रेरणा मिली। गांधीजी के बाद सेवाग्राम में एक सम्मेलन हुआ, जिसमें गांधीजी के अनुयायी इकट्ठा हुए थे। उन्होंने मिलकर तय किया कि हम गुरु

के नाम पर कोई सम्प्रदाय या पंथ नहीं खड़ा करना चाहते। वे तो निमित्तमात्र थे। उन्होंने हमें जो मन्त्र दिया, उसकी पूर्ति हमें करनी चाहिए। मैंने कहा : मन्त्र का मूल परमतत्त्व में होता है। अनेक सत्पुरुषों के जरिये वे प्रकट होते हैं। अव्यक्त रूप में तो वे सारे रहते ही हैं। 'सर्वोदय' कोई नयी चीज नहीं, नया मन्त्र नहीं, वह तो पुराना ही मन्त्र है। ऋषियों ने कहा था : "सर्वभूतहिते रताः"। हम सबका उदय चाहते हैं। सबके भले के लिए हमें काम करना है। यही तो सर्वोदय है।

'विज्ञान' अपूर्ण और 'सर्वोदय' पूर्ण मंत्र

इन दिनों, जब से वैज्ञानिक युग आया है, लोग नये ढंग से सोचने लगे हैं। नये-नये विचार सामने रखते और पुराने शब्दों को नये अर्थ देते हैं। उससे अनर्थ होता है, क्योंकि विज्ञान अपूर्ण है। वे अपूर्ण विज्ञान से अपूर्ण और अधूरे मन्त्र दुनिया के सामने रखते हैं। आज पाश्चात्यों का जो विज्ञान चल रहा है, वह अधूरा है। उसने एक विचार दिया है : 'अधिक से अधिक लोगों का अधिक-से-अधिक भला' (ग्रेटेस्ट गुड ऑफ दि ग्रेटेस्ट नम्बर)। यह एक उपयोगितावाद शब्द निकला है। विज्ञान के युग में जब यह शब्द निकला, उसकी चमक-दमक में आकर हमने इसे अपने हित का मान लिया। लेकिन उसमें से भेदासुर का निर्माण हुआ। फिर 'कम संख्या ज्यादा संख्या' इसमें से संख्यासुर भी निकला। जब से यह 'मेजॉरिटी माइनॉरिटी' की चक्कर में हम लोग पड़े, तभी से दुनिया के हर देश में झगड़े चलने लगे। इन अधूरे मन्त्रों के कारण से विचार भी एकांगी ही हो गये।

भारत में इसकी पूर्ति तो आत्मज्ञान के दर्शन से हो सकती है। पूरा विचार तो यह है कि 'सबका भला होना चाहिए', अधिक-से-अधिक लोगों का नहीं, क्योंकि उसमें जो कम-से-कम लोग हैं उन पर अन्याय होता है। हम अपने परिवार में ऐसा नहीं सोचते कि नौ मनुष्य का भला हो और एक का भला न हो। पर जब समाज का सवाल आ गया, तो विज्ञान ने कह दिया : 'अधिक से अधिक लोगों का अधिक-से-अधिक भला होना चाहिए।' लेकिन हम तो सबका भला चाहते हैं। विज्ञान अपूर्ण मन्त्र है और सर्वोदय पूर्ण मन्त्र। सर्वोदय में आत्मा का विचार है। उसका सम्बन्ध आत्मा के ज्ञान से है। सर्वोदय में पूरा विचार

दिया है। यह पूर्ण सही और शुद्ध है। 'बीस विरुद्ध पचीस' ऐसी बात लेना हम गलत मानते हैं। समाज के टुकड़ों का गलत विचार आत्मज्ञान में नहीं है। आत्मा तो एक, अविभाज्य पूर्ण समान और निर्दोष है। वह हरएक प्राणी में समान रूप से है। 'हम पूर्ण हैं यह भी पूर्ण है, वह भी पूर्ण है और पूर्ण से पूर्ण ही निष्पन्न होता है। आत्मज्ञान पूर्ण है, इसीलिए उसमें से पूर्ण विचार निकलते हैं। उसमें 'मेजॉरिटी माइनॉरिटी' की गुंजाइश नहीं है। यह विचार हमारे सामने आ गया है। इसका एक-एक पहलू लेकर हम काम कर सकते हैं। यह भूमि की समस्या सर्वोदय का बुनियादी पहलू है।

पूर्ण मन्त्र में एकता की ताकत

यह अभी आरम्भ हुआ है। यह सर्वोदय के विचार का पहला ही कदम है। स्वराज्य के बाद हमें सर्वोदय का नया मन्त्र मिला है। जहाँ नदी का आरम्भ होता है, वहाँ उसका परिशुद्ध रूप होता है। वैसे ही सर्वोदय की नदी आगे बढ़ रही है। एक एक मनुष्य उसके लिए अनुकूल होता जा रहा है। आज हिंदुस्तान में पुराने ख्याल की कितनी ही संस्थाएँ चलती हैं। कांग्रेसी, सोशलिस्ट, हिंदू महासभाई आदि अनेक विचारवाले हैं। जैसे-जैसे वे सोचते चले जा रहे हैं सर्वोदय के विचार की पकड़ उनके मन पर पक्की होती जा रही है। कारण, पूर्ण मंत्र में एकता की शक्ति है और अधूरे मन्त्र में खण्डित विचार रहता है। पूर्ण मन्त्र अपनी एकता की शक्ति से अनेक को एक बनाता है। आखिर अधूरे मन्त्रों को मन्त्र ही क्यों कहा जाय? वे तो गलत विचार ही हैं। समाज के टुकड़े करनेवाले वे अधूरे विचार हैं। पर लोग उन्हें भी मान लेते हैं। आज दुनिया में समाज के टुकड़े करनेवाले बुरे विचार और समाज को एकरस बनानेवाले सर्वोदय के विचार, ऐसे दो विचार चल रहे हैं। दुनिया में इस पर बहस हो रही है। इन दो विचारों में संघर्ष चल रहा है। यह झगड़ा दिन दिन बढ़ रहा है। सर्वोदय के हाथ में शस्त्र नहीं विचार है, और हम विचार से हथियार को तोड़ सकते हैं। हथियार आज एटम बम तक आ गये हैं। दुनिया पर इनका असर हो रहा है। पर सर्वोदय में जो आध्यात्मिक शक्ति है, वह अवश्य काम करेगी और उसका विचार अवश्य काम करेगा।

अद्वैतवादी सर्वोदय

हिंदुस्तान में भिन्न-भिन्न दल हैं। वे आपस में भेद-भाव करते हैं, पर भूदान का काम सभी कर रहे हैं। उन्होंने इसे मान लिया है। इसके विरोध में अभी तक तो हमें कोई नहीं मिले। उनमें एक-दूसरे के विरोध में विचार रखते रहते हैं लेकिन भूदान के लिए एक ही मंच पर आकर कन्धे से कन्धा मिलाकर सभी काम कर रहे हैं। ये दृश्य 'कन्धा-से-कन्धा' दीख रहे हैं। आगे आप देखेंगे कि सारे दल इस काम में लग गये हैं। सारे समाज को एकरस बनाने का हमारा यह प्रयत्न अवश्य सफल होगा और उसीसे एक महान् शक्ति प्रकट होगी।

स्वसिद्धान्तव्यवस्थासु द्वैतिनो निश्चिता दृढम्।
परस्परं विरुध्यन्ते तैरयं न विरुध्यते॥

जो समाज को नहीं मानते, जो अंश को मानते हैं—चाहे वह अंश कितना ही बड़ा हो—वे अंशवादी होते हैं। उन्हें 'द्वैतवादी' कहते हैं। वे अपने निश्चय वाले होते हैं। अपने-अपने विचार पक्षों को देते और उसे दृढ़ मानते हैं। इसलिए वे एक-दूसरे के विरोध में खड़े होते हैं। वे अपने-अपने धर्म, पार्टी और पक्ष को महत्त्व देना चाहते तथा आपस-आपस में झगड़े पैदा करते हैं। लेकिन उन सब पक्षों का समावेश सर्वोदय के पेट में होता है। सर्वोदय का किसीसे विरोध नहीं है। वह सबको अपने पेट में समा लेता है। वह अद्वैतवादी है।

जो भूदान में आते हैं वे सब एकसाथ काम करते हैं। पहले उनके मन में भेद रहता है, लेकिन जैसे-जैसे काम करते जायँगे, वैसे-ही-वैसे भेद मिटेंगे और एक-दूसरे के प्रति द्वेष भावना नहीं रहेगी। यह दृश्य आज दीख रहा है। जो अब तक एक-दूसरे से बात तक नहीं करते थे, वे आज मिलकर काम कर रहे हैं। हाँ, दिल में तो कुछ खिचखिचाहट होती है लेकिन अब विरोधी विचार नहीं रहेंगे। और सारे एक विचार के बनेंगे, सारा समाज एकरस बनेगा, ऐसी हम अपेक्षा रखते हैं। सर्वोदय विचार की खूबी है कि वह परस्पर-विरोधी सब पक्षों को अपने पेट में समा लेता है। इसी विचार से हमें प्रेरणा मिलती है।

मन्त्र से छोटे बड़े बनते हैं

आज ढाई साल से हम घूम रहे हैं। यह मन्त्र हमें नित्य नया विचार और निरंतर प्रेरणा देता है। हम आपसे कहते हैं कि आप छोटे नहीं, महान् हैं। आपके सामने यह मन्त्र प्रकट हुआ है। यहाँ कोई छोटे नहीं रहते। जहाँ राम के सामने मन्त्र प्रकट हुआ वहाँ बन्दर बन्दर नहीं रहा, भालू भालू नहीं रहा साधारण मनुष्य साधारण नहीं रहा। एक मन्त्र आया और उसने उनके शरीरों को अभिमंत्रित किया। तब वे शरीर 'शरीर' नहीं रहे, उस मन्त्र के वाहन बन गये। छोटे छोटे लोग इसमें काम करते हैं। हमें आश्चर्य लगता है कि इन्हें यह प्रेरणा कैसे मिल रही है। बच्चों स्त्रियों छोटे-बड़ों सबको प्रेरणा मिल रही है और वे दान दे रहे हैं। भंगी ने भी दान दिया है। और अब तो एक नया अध्याय शुरू हुआ है। जमींदार भी अब जाग गये हैं। ऐसा विश्वव्यापक मन्त्र जहाँ प्रकट हो जाता है, वहाँ हम छोटे नहीं रहते। वहाँ हम मन्त्र से प्रभावित हो जाते हैं। ऐसी श्रद्धा रखकर काम में लग जाइये। सर्वोदय में विश्वास रखिये। सर्वोदय साधने के लिए अपना एक हिस्सा दूसरे को दीजिये। जो अपना है, वह अपना नहीं रहता है। इसीलिए एक हिस्सा दीजिये।

यज्ञ में भी नहीं आसक्ति जलानी है

'अग्नये इदं न मम' जो अपना है, उसका एक हिस्सा अग्नि को अर्पण कर दो। यह हिस्सा अग्नि के लिए है हमारे लिए नहीं। छोटे-छोटे टुकड़े से उत्पादन घटता है ऐसी बात नहीं है। जब यज्ञ में घी की आहुति दी जाती थी तो लोग कहते थे कि 'यह तो घी जल रहा है' पर ऋषि ने कहा : 'यह घी नहीं जल रहा है, आप लोगों की आसक्ति जल रही है। वह जमाना था जब जंगल तोड़ते, जलाते और मनुष्यों को बसाते थे। तब अग्नि की स्थूलरूप से उपासना चल रही थी। किन्तु अब तो अन्दर की अग्नि जलानी है। अन्दर की अग्नि की ही उपासना उन्होंने सिखायी है। उसमें अपने स्वार्थ की आहुति देनी है। जिस तरह हमारी पूरी आसक्ति हो गयी है हमें उस भूमि का मोह छोड़ना होगा और अपनी धरती की आहुति इस यज्ञ में देनी होगी। मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि चाहे इससे देश का उत्पादन घटता हो तो भी हमें यह मंजूर है। क्योंकि

पुर जाते हैं, वहाँ उत्पादन सौगुना हो जाता है। किसान अच्छे-से-अच्छे बीज बोता है। उस समय दीखता तो यह है कि अच्छा बीज नष्ट हुआ पर थोड़ा सब्र करने पर यही दीख पड़ता है कि हमने कुछ खोया नहीं बल्कि सौगुना पाया है। एक बीज बोते हैं तो वह सौगुना हो जाता है।

इसलिए आप अपनी जमीन गरीबों को बाँट दीजिये। बाँटने से दिल जुड़ेंगे, फिर चाहे जैसे टुकड़े जमीन के हो जायँ। आप जैसी चाहें उसमें से फसल पैदा कर सकते हैं। आप सहयोग से काम करेंगे तो फिर उसमें से सौगुना पैदा होगा। भूमि में भी नाश नहीं होता बल्कि वह शतगुणित होता है। मेरी आँखें देख रही हैं कि वह शतगुणित हो रहा है। यह तो मैंने मिसाल दी। मैं कबूल करता हूँ कि इस जमाने में कोई भी चलायेगा और यह करेगा तो मुझे जँचेगा नहीं। जिस जमाने में यह चल रहा था, वह उस जमाने के लिए ठीक था।

यह छोटी दृष्टि अब छोड़ो और बड़ी नजर रखो लम्बी नजर रखो। हमारा उद्देश्य जमीन तोड़ने का नहीं है हमें तो दिलों को जोड़ना है। दिलों के टुकड़े हो चुके हैं, उन्हें हमें जोड़ना है। हम दिलों के टुकड़े को कपड़े के समान सी रहे हैं। हम जोड़ने के लिए काट रहे हैं। दर्जी से पूछो कि कपड़ा क्यों काटते हो? तो वह कहेगा कि इसे काटकर मैं सीना चाहता हूँ। यह सारी भूमि जर्जर हो गयी है। उसके टुकड़े हो गये हैं। यह भूमि छिन्न-विच्छिन्न हो गयी है। इसीलिए हम गरीब को उसे बाँट देंगे और एक बार तोड़कर ही क्यों न हो, हम सारे देश को एकरस बनायेंगे।

कृष्णासमुद्रम
३-८-'५२

आज सुबह नालन्दा के खँडहर देखने गया था। यह एक प्राचीन ऐतिहासिक स्थान है। पुरानी स्मृतियाँ मनुष्यों को उत्साह दिलाती और कर्तव्य के लिए प्रेरणा देती हैं। हमारे अपने इतिहास में जो कुछ हुआ सब अच्छा ही है ऐसी बात नहीं। कुछ खट्टा भी है और कुछ मीठा भी।

इतिहास में कुछ खट्टा और कुछ मीठा

अक्सर लोग इतिहास में सब अच्छा-ही-अच्छा मानते हैं और बुराइयाँ देखते ही नहीं। किन्तु यह गलत है। हमें अपने दोष और गुण दोनों का ज्ञान रखना चाहिए। विवेक और समन्वय की बुद्धि रखकर इतिहास का दर्शन करना चाहिए, तभी काम होगा। आज स्कूलों में बच्चों को कई मूल राजा-महाराजाओं के नाम याद करने पड़ते हैं। किन्तु इतिहास का तात्पर्य राजा-महाराजाओं का इतिहास नहीं है। अपने जीवन के लिए जो चीज जरूरी और अच्छी है, वह अगर पुराने इतिहास के अनुभवों से मिलती है तो वही हमें लेनी है और उससे काम उठाना है। अगर उसमें बुराई है, तो उससे हमें बचना ही होगा। इसलिए हमें इतिहास के केवल अभिमान से प्रयोजन नहीं उसका दर्शन होना चाहिए।

विद्या की प्राचीन परम्परा

नालन्दा का सारा दृश्य बहुत मधुर और अच्छा लगा। हजारों विद्यार्थी यहाँ आते और अध्ययन करते थे इसका दर्शन यहाँ होता है। लेकिन यह बात हमारे लिए नयी नहीं है। नालन्दा की युनिवर्सिटी बहुत प्राचीन जरूर है पर हमारे पुराने ग्रन्थों में भी हमें यह दीखता है कि विद्या का अध्ययन हमारे यहाँ बहुत प्राचीनकाल से—नालन्दा से भी बहुत पहले—चल रहा है। विद्यार्थी उषःकाल से ही अपने गुरु के पास विद्याध्ययन करते, मनन और चिन्तन करते थे। प्रातःकाल के समय सोते रहकर वे अपना अमूल्य समय नहीं खोते थे। वेदों में कहा है :

यो जागार तं ऋचः कामयन्ते।

जो जागते हैं, उन्हें भगवान् स्मरण करते हैं, ऋचाएँ उन्हें स्फुरित होती हैं।

यह परम्परा अनन्त काल से चली आ रही है। बुद्ध भगवान् के जमाने में भी यह चली। लेकिन जब से अंग्रेजी विद्या आयी, यह धर्म हमने छोड़ दिया। विद्या शहर में आ गयी। यह विद्या 'विद्या' नहीं, यह तो पेट भरने के लिए है। इसे 'अविद्या' ही कहा जायगा। नतीजा यह हुआ कि पढ़नेवाले लोग शहर में चले गये और उन्होंने गाँव में रहना छोड़ दिया। लेकिन बहुत थोड़े लोग अंग्रेजी विद्या सीख पाये और बाकी सारे अज्ञानी रह गये। जो सीख गये, वे अपने संस्कार यहाँ छोड़कर चले गये और हमारी संस्कृति से विपरीत विचार सीखने लगे।

उपनिषत्कालीन राज्य का वर्णन

एक राजा उपनिषद् में अपने राज्य का वर्णन करता है :

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
न अनाहिताग्निः न अविद्वान् ॥

अर्थात् मेरे राज्य में कोई चोर नहीं है। कोई कंजूस नहीं है। जहाँ कंजूस होते हैं, वहाँ चोर होते हैं। हमने कई दफा कहा है कि कंजूस चोरों का बाप है। कंजूस ही चोरों को बढ़ावा देते हैं। उसने यह भी कहा था कि मेरे राज्य में कोई भी मद्य नहीं पीता। उस समय हिन्दुस्तान में कोई भी मद्य नहीं पीता था। लेकिन अंग्रेजों ने शराब की फैशन बनायी और शहरों में शराब खूब चली। आज उसे रोकने में भी हमें डर लगता है। उस राजा ने यह भी कहा कि मेरे राज्य में कोई अविद्वान् नहीं है—ऐसा कोई नहीं है, जो पढ़ना लिखना नहीं जानता। और मेरे राज्य में ऐसा भी कोई नहीं है, जो भगवान् की पूजा नहीं करता। याने बहुत ही प्राचीनकाल से यहाँ विद्या चली आ रही है। किन्तु आज हमें आत्मज्ञान और विज्ञान दोनों का अध्ययन करना है। प्राचीन काल से चला आनेवाला ज्ञान हासिल करना है और पश्चिम की ओर से विज्ञान भी लेना है। मधुमक्खी के उदाहरण हमें यही सिखाते हैं। इसी तरह हमें अपने गुणों का विकास करना चाहिए।

बल से धर्म का प्रचार नहीं हो सकता

यहाँ पर भी सीखने को मिला कि हमें क्या न करना चाहिए। हमने यहाँ एक चित्र देखा। एक मूर्ति शंकर पार्वती के सिर पर खड़ी है। मतलब यह कि कोई बौद्ध राजा उन्मत्त हुआ होगा। तब किसी मूर्तिकार ने ऐसा चित्र बनाकर बताया कि धर्म की जीत हुई है। उस राजा के आधार पर भी यहाँ जिना सिद्धान्त गयी। लेकिन हम नहीं समझते कि इस तरह किसी धर्म की जय किसी धर्म का उदय हो सकता और एक धर्म दूसरे धर्म को जीत सकता है। बुद्ध धर्म के नाश के जो कई कारण है, उनमें एक यह भी है। इसीलिए यहाँ बुद्ध-धर्म टिका नहीं। जहाँ बल आता है, वहाँ धर्म क्षीण हो जाता है। धर्म के प्रचार में जब ताकत लगायी जाती है तब धर्म टिकता नहीं। सिर्फ बौद्ध-धर्म में यह बात है, ऐसा नहीं। और वैष्णव आदि सब धर्मों में ऐसा ही हुआ। जब धर्म के प्रचार का उत्साह बढ़ जाता है, तब उसमें विवेक नहीं रहता। जब राजा महाराजाओं का साथ लेकर धर्म का जबरदस्ती और बल से प्रचार होने लगता है तब धर्म धर्म नहीं रहता। बलात्कार से कोई धर्म टिक नहीं सकता। वह तो अधर्म हो जाता है। प्राचीन काल से ऐसा ही होता रहा है।

परशुराम ने निःक्षत्रिय पृथ्वी बनाने का प्रयत्न किया। उसने इक्कीस बार पृथ्वी निःक्षत्रिय बनायी। फिर भी पृथ्वी पर क्षत्रिय बने रहे, क्योंकि परशुराम स्वयं तो थे ब्राह्मण पर उन्होंने काम किया क्षत्रियों का ही। इसी कारण क्षत्रियत्व का एक बीज बोया गया। ब्राह्मण होकर भी वे शान्त नहीं रहे। और उन्होंने क्षत्रियों का हथियार खुद उठा लिया। इसलिए उनका काम नहीं हुआ। यदि वे शान्ति से काम करते तो काम बनती। लेकिन उनका खुद का 'क्षत्रियत्व' हो गया।

बलात्कार से धर्म का प्रचार मुसलमानों ने भी किया। लेकिन कुरान में लिखा है कि धर्म के बारे में जबरदस्ती नहीं हो सकती। समाज के सामने सत्य और मिथ्या, दोनों रखने चाहिए और समाज पर ही यह निर्णय छोड़ देना चाहिए कि वह क्या चाहता है। सत्य और मिथ्या दोनों छिप नहीं सकते। इसलिए लोगों को जो सही मालूम होगा उसे वे लेंगे और जो मिथ्या लगेगा उसे

छोड़ेंगे। यद्यपि कुरान में ऐसा लिखा गया, फिर भी मुसलमान राजाओं ने जबर्दस्ती से ही धर्म का प्रचार किया। उससे तो द्वेष ही फैला। अगर आज मुहम्मद पैगम्बर होते तो उन्हें जबर्दस्ती-धर्म से खुशी न होती।

अवश्य ही सभी धर्मों ने सत्ता का सहारा लिया पर सत्ता में धर्म नहीं रह सकता। वह तो एक निर्मल परिशुद्ध तत्त्व है। मनुष्य की मनुष्यता बढ़ाना ही सब धर्मों का कार्य है। यही करने के लिए भिन्न भिन्न ऋषियों ने समाज के सामने भिन्न भिन्न ढंग से धर्म को रखा और खुद उसका आचरण किया। उन्होंने सरल बुद्धि से धर्म विचार रखे। किन्तु जब आगे चलकर आचारों को जबर्दस्ती से भी रखने का प्रयत्न हुआ, तो वह सफल न हो सका क्योंकि जबर्दस्ती से हम अविचार भी नहीं हटा सकते। आचार विचार जबर्दस्ती सिखाना अधर्म होता है।

जबर्दस्ती से धर्म मिट जाता है

कोई शंकर-पार्वती की पूजा करना धर्म समझता है तो कोई उनकी पूजा को अधर्म मानता है। जो गलत मानता हो वह उसे न करे उसे अपनी भूमिका के अनुसार अपना काम करना चाहिए। जिसकी भूमिका में मूर्ति पूजा मान्य है वह मूर्ति पूजा करेगा और जिसके नहीं है वह नहीं करेगा। किन्तु अपनी भूमिका दूसरे पर लादना और वह भी जबर्दस्ती से यह अधर्म है। इसीसे धर्म मिट जाता है। इसी कारण सब धर्मों के प्रति नौजवानों और लोगों में अश्रद्धा पैदा हुई है, नास्तिक लोग बढ़ गये। आज इतने नास्तिक दीख पड़ते हैं, वह इसी कारण। धर्म सत्ता बल से नहीं बढ़ता अपने निर्मल और परिशुद्ध प्रचार से ही बढ़ता है। इसमें हम किसीकी निंदा नहीं करना चाहते हैं बल्कि सब धर्मों में जो दोष हैं, उनका दर्शनभर कराना चाहते हैं। उनसे हमें सबक सीखना चाहिए।

हम चाहते हैं कि भूदान का काम १९५७ तक पूरा हो। परन्तु हम यह काम शांति और प्रेम से समझा-बुझाकर करना चाहते हैं। हम जबर्दस्ती से काम नहीं लेंगे हमें सब से काम लेना है। हम सब को तोड़ेंगे, तो शक्ति भी खो देंगे। वैसे तो जबर्दस्ती से काम होता ही नहीं और अगर हुआ भी तो गलत होता है।

इसे जबर्दस्ती से जमीन अधिक मिली तो उससे न दुनिया का काम बनेगा और न हमारा ही। इसीलिए हमें इसकी हमेशा फिक्र रहती है कि हम अपना विचार लोगों को समझायें और उसे समझकर ही लोग हमें जमीन दें।

भूदान शुद्ध धर्म-कार्य

यह शुद्ध धर्म-चक्र-प्रवर्तन का काम है। इसलिए हम शुद्ध भाव से जमीन माँगते हैं। अगर आज बुद्ध भगवान् होते और वे उस मूर्ति को देखते कि शिव-पार्वती के सिर पर एक बोझ लदा है, तो क्या वे प्रसन्न होते? उन्हें यह देखकर कितना दुःख होता! लेकिन जो अभागी होते हैं वे उत्साह और आवेश में आकर ऐसा काम कर डालते हैं। वैष्णवों ने भी ऐसे कार्य किये हैं। ये सब तामस भाव की बुद्धि के लक्षण हैं। धर्म-कार्य में जबर्दस्ती अत्याचार नहीं चल सकता यह सबक हमें इन खंडहरों ने सिखाया। धर्म-कार्य पवित्र कार्य होता है। वह अहिंसा से ही होना चाहिए, भले ही उसे पूरा होने में देर लगे।

हम यह कभी नहीं कहते कि भूदान को १९५७ तक पूरा करने के लिए हिंसा से भी मदद लो तो चलेगा। हम तो अहिंसा और प्रेम से ही समझा-बुझाकर यह करना चाहते हैं। अगर प्रेम से यह काम नहीं होगा, तो '५७ ही क्या हजार सालों में भी पूरा नहीं होगा। आखिर एक की जमीन दूसरे को देने का यह गोरख धंधा हमें क्यों सूझा? हमारा उद्देश्य यही है कि लोगों में प्रेम, त्याग और परस्पर सहयोग की भावना निर्माण हो। और इसीलिए हमने यह भूमि का मसला हाथ में लिया है। ऐसा कोई भी मसला हाथ में लेकर धर्म प्रचार किया जाए, तो लोग उसे फौरन समझ लेते हैं। लोगों के जीवन पर उसका असर हो जाता है। और अगर केवल विचार प्रचार किया जाए तो लोग फौरन नहीं समझते। सिर्फ धर्म का उपदेश करने पर वह हवा में उड़ जाती है और उसका असर हुआ भी तो वह बहुत सूक्ष्म होता है। इसलिए उस उस जमाने के लोगों ने अपने-अपने तरीके से उस उस जमाने के मसले हाथ में लेकर ही धर्म का प्रचार किया है। वह शुद्ध धर्म विचार का प्रचार था।

भूदान के वाहन पर आरूढ़ हो धर्म-चक्र-प्रवर्तन

हमें भी जमीन का यह मसला केवल एक निमित्त मिला है। उसमें से

हम तो शुद्ध धर्म का प्रचार करना और उसके साथ त्याग और प्रेम की भावना फैलाना चाहते हैं। यह भूदान का काम भी हमारे लिए एक वाहन है, जैसे भगवान् विष्णु का वाहन गरुड़ है और भगवान् शंकर का वाहन बैल। वाहन इसलिए चाहिए कि बिना उसके काम नहीं चलता। बस सवार नहीं, मकसद रहता है। भूदान का मसला हमारे लिए वाहन बन गया है। इसीलिए उस पर सवार हो हम धर्म-चक्र-प्रवर्तन का प्रचार करने के लिए निकले हैं।

सत्य सर्वश्रेष्ठ धर्म

हमने इस विचार को भी दृढ़ किया कि हमें अपने धर्म में जरा भी आसक्ति न रखनी चाहिए। हमें ध्यान रखना चाहिए कि आसक्ति के कारण कोई बुराई न आ जाय। जैसे स्वच्छ, शुद्ध दूध में हम जरा भी कचरा सहन नहीं कर सकते—खाद्य-मात्र खानेवाला शायद थोड़ा कचरा सहन भी कर सकता है—वैसे ही धर्म-कार्य में हम किंचित् भी अधर्म आने पर उसे सहन नहीं कर सकते। हम यह नहीं सोचते कि धर्म अधर्म के आधार पर भी चल सकता है। धर्म तो अपने परिशुद्ध रूप पर फैलता है। हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई आदि सभी धर्मों को यह सीखना चाहिए। उन्होंने धर्म के नाम पर बहुत ही जुल्म किये हैं। नतीजा यह हुआ कि लोग ऐसा कहने लगे, हम आपके धर्म में विश्वास नहीं रखते। हम सिर्फ सत्य, न्याय और दया चाहते हैं। इस तरह उनमें सब धर्मों के प्रति अश्रद्धा पैदा हुई है। लेकिन हम कहते हैं, ठीक है भाई, आप जिस पर विश्वास करते हैं, उसीको हम धर्म मानते हैं। सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। 'नास्ति सत्यात् परो धर्मः' सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं हो सकता। किसी भी धर्म को मानते हो तो मानो, लेकिन सत्य का हर धर्म में स्थान है।

धर्म का सार, अभिमानरहित दया

उत्तम पके आम में भी गुठली और छिलका होता है, जो उसकी रक्षा के लिए है। किन्तु जैसे हम गुठली और छिलका छोड़कर उसमें का रस ही खाते हैं, वैसे ही धर्म-ग्रन्थ के मुख्य तत्त्व और सार का ही ग्रहण करना चाहिए।

सब धर्मों का सार है : 'दया' और 'प्रेम'। दया रखो और सचाई पर चलो। तुलसीदासजी ने कहा है : "दया धर्म का मूल है।" और फौरन उन्होंने दूसरी बात भी लिख डाली : "पाप मूल अभिमान।" लोग दया करते हैं, फिर भी मालिक बनकर बैठते हैं। वे संपत्ति का संग्रह करते हैं। पर मालकियत की वृत्ति रखने से दया कैसे कर सकेंगे? क्योंकि दया में मैं मालिक हूँ और यह हीन, ऐसी भावना रखने से तो अहंकार होगा, पाप होगा। यह अहंकार भावना आ गयी, तो पाप ही है। दया कैसी होनी चाहिए? तुकाराम ने कहा है : जिस तरह बाप अपने बेटे पर दया करता है, उसमें अभिमान का अंश भी नहीं रहता, वैसी ही दया हमें प्राणिमात्र पर करनी चाहिए।

भूदान के कार्य में ऐसी ही भावना होनी चाहिए। हम लोगों से भिक्षा नहीं माँगते। हम लोगों को अपना विचार समझाते हैं, इसलिए वे हमें दान देते हैं। लेकिन अगर हम मालिक बने रहेंगे और दान भी देते जायेंगे, तो कोई लाभ नहीं होगा। हमें तो मालकियत छोड़नी ही होगी। हम आपसे गरीबों के लिए जमीन माँगते हैं, हमें उनका हिस्सा चाहिए। इसे अगर आप गरीबों का हक समझकर देंगे, तो आपको मालूम होगा कि आपने कोई उपकार नहीं किया, बल्कि आप पर ही उपकार हुआ है। जहाँ यह नहीं मालूम होगा, वहाँ सच्ची दया नहीं होगी। सच्ची दया अभिमानरहित होती है। उन धर्मों का यही सार है, दया करो और अभिमान छोड़ो। इसी पर हम हमेशा जोर देते और प्रचार करते हैं। बुद्ध भगवान् के नाम से गया में हमने संकल्प किया कि "जब तक बिहार की समस्या हल नहीं होगी, हम बिहार नहीं छोड़ेंगे।" हमने यह भगवान् बुद्ध की शरण से ही लिया। हम हिन्दू धर्म, बौद्ध-धर्म ऐसा फर्क नहीं करते। धर्म अलग-अलग होते हैं, लेकिन उनका मूलतत्त्व एक ही है।

मुक्ति के लिए एक ही मार्ग है। हमें असत्य में से सत्य में जाना है। 'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय' हमें अँधेरे में से उजाले में जाना है। और 'मृत्योर्मा अमृतं गमय' विकार में से निर्विकार की तरफ जाना है। अलग-अलग तरीकों से यही समझाया गया है। हम सब ऋषियों को मानते हैं, चाहे वे किसी भी धर्म के हों। उन्हींकी प्रेरणा और आशीर्वाद ने हमारा काम चलाया है।

उन्हींके आशीर्वाद से हमारा कार्य चल रहा है। हमें आज यहाँ बहुत सीखने को मिला। इस नालन्दा में आने और सीखा कि "हमें कौन सी चीज खानी चाहिए" और "कौन सी चीज देनी चाहिए" तथा "क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए" यह भी हमने यहाँ से सीखा।

नालन्दा
१०-८-५२

अपरिग्रह में शक्ति भी है : २६ :

सम्पत्ति-दान का विचार, जब से मैंने जमीन की माँग की, तभी से मेरे मन में था। लेकिन एक-एक कार्य में प्रगति लाये बिना दूसरे काम में शक्ति लगाना ठीक नहीं था। बिहार में जब मैंने प्रवेश किया, तब यह जाहिर था कि यहाँ एक बड़े पैमाने पर काम करना होगा। वैसे तो हर जगह बड़े पैमाने पर काम करना ही है, लेकिन बिहार में उसका आरंभ था। इस आरम्भ के समय में ही मैंने सोचा कि केवल भूमि लेने-देने से काम पूरा नहीं होगा। भूमिहीनों को और भी मदद देनी होगी। इसी दृष्टि से आज से करीब एक साल पहले पटना में मैंने सम्पत्ति-दान की बात रखी। यद्यपि उसके पीछे एक-डेढ़ साल का चिन्तन तो था ही, लेकिन मैंने उसके बारे में पहला विवरण पटना में किया।

सम्पत्तिदान 'निधि' नहीं

यह बात समझ लेना चाहिए कि सम्पत्तिदान में कोई 'निधि' इकट्ठा करने की कल्पना नहीं है। इस यज्ञ की यही विशेषता है कि इसमें चलने का तरीका अलग है। यदि यहाँ एक जगह निधि इकट्ठा करने की कल्पना होती तो इसे यज्ञ नहीं कहा जाता। इसमें 'यज्ञ' शब्द निरर्थक नहीं, पूरा समझ-बूझकर जोड़ा गया है। यह एक ऐसा विचार है, जिसमें कोई जकड़न नहीं। हरएक को इसमें आहुति देने का मौका मिलता है। जो धर्म-कार्य सबको लागू होते हैं—जैसे जप आदि, जो अनिवार्यतः सार्वजनिक यानी सब लोगों के लिए हैं—उन्हींको 'मुख्य धर्म' या 'प्रथम धर्म' कहा जाता है : 'तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।'

संपत्ति-दान यज्ञ आजकल की दूसरी निधियों से बिल्कुल भिन्न है। इसमें हम दान पत्र लेते हैं, पैसे नहीं। दान का विनियोग दाता स्वयं ही गरीबों की सेवा के लिए करता है। लेकिन गरीबों को भी वह पैसे के रूप में मदद नहीं करेगा। कुछ लोगों ने यह शंका उठायी है और वह ठीक भी है कि इसमें पैसे का दुरुपयोग होगा। लेकिन संपत्ति दान में तो किसी व्यक्ति के लिए पैसे का उपयोग होगा ही नहीं। सामुदायिक कामों के लिए हो सकता है जैसे कुएँ के लिए सीमेंट खरीद ली या दो-तीन किसानों को मिलाकर एक-बैल जोड़ी दे दी। अब यह कल्पना करना कि वह बैल-जोड़ी भी बेच देगा और इस तरह पैसे का दुरुपयोग होगा, यह कुछ अधिक कल्पना है। हमारी सद्भावना से उसके हृदय में भी सद्भावना पैदा होगी इसी श्रद्धा पर हम लोग चलते हैं। यह कोई असम्भवता नहीं अनुभवमता है।

सामूहिक लक्ष्मी

जब हम लोग हर गाँव में पहुँचकर घर-घर से छठा, आठवाँ या दसवाँ हिस्सा लेंगे तब उनसे कोई पैसा तो नहीं लेंगे। लोग अनाज देंगे या दूसरी कोई चीज। ये जो चीजें मिलेंगी वे भी समूह को मिलेंगी गाँवों को मिलेंगी और इस प्रकार गाँव गाँव में सामूहिक लक्ष्मी इकट्ठी होगी। मैं पैसा या संपत्ति शब्द इस्तेमाल नहीं करता क्योंकि उसमें गलतफहमी होने का सम्भव है। मैं 'लक्ष्मी' कह रहा हूँ। जैसे, बढ़ई पाँच हल बना देगा दूसरा कोई दूसरे साधन देगा। तो यह सब मिलाकर सामूहिक लक्ष्मी ही बनेगी। यही चीज हम गाँववालों से कहेंगे और यही शहरवालों से भी। हम उनसे कहेंगे कि आपकी संपत्ति में दूसरों का भी हिस्सा है। आप अपने आपको उसका मालिक क्यों समझते हैं? आप भी अपनी संपत्ति के एक हिस्सेदार ही हैं। ऐसा क्यों समझते हैं कि आपका और समाज का कोई विरोध है?

विपरीत-बुद्धि

आखिर कारखाने के मालिक और मजदूर दोनों के हित परस्पर विरोधी क्यों समझे जायँ? क्या यह कभी देखा है कि बाप और बेटे का अलग-अलग संगठन होकर वे एक दूसरे से झगड़ते हैं? एक अखिल भारतीय बेटों की संस्था हो और दूसरी

आर्थिक मारकीम अर्थों की संस्था हो तथा दोनों अपने अपने हित की रक्षा के लिए एक-दूसरे के विरोध में क्या काम करें ? किन्तु आज तो शिक्षकों और विद्यार्थियों के भी संघ बनते हैं ऐसा मानकर कि हमारे हित परस्पर विरोधी हैं। और फिर क्रिया भी शुरू चलती है। यह सब विपरीत बुद्धि है, आसुरी संपत्ति के लक्षण हैं।

शारीरिक श्रम करनेवाले भी हमारी सम्पत्ति के सहभागी हैं, यह विचार हम सम्पत्तिवालों को समझाना चाहते हैं। आजकल लोग शेर का हिस्सा (lion's share) माँगते हैं। यह बड़ा भयानक शब्द है। जंगली जानवरों में यह कानून है कि बड़ी गाय खाता है, जो प्रबल हो खाता है। इसलिए जो समाज की सम्पत्ति में से शेर का हिस्सा माँगते हैं उनसे मैं पूछता हूँ कि हम अपने पर जानवरों का कानून लागू क्यों करें ?

जीवनभर एक हिस्सा देने का विचार

हमारा कानून तो वैसा होना चाहिए जैसा ईसामसीह ने कहा था कि 'आज की रोटी भगवान् हमें आज दे'। कल की रोटी की फिक्र हम आज न करें। 'कल का' उन्होंने पाप समझा और कहा कि 'आज का पाप आज ही के लिए काफी है'। हर धर्म ने यही बात कही है : 'कल' सपना था था। इसलिए कल की चिन्ता छोड़ दीजिये, आज की चिन्ता कीजिये। क्या आपके बाल-बच्चे समाज के बाहर रहते नहीं हैं ? व्यापार में जिस प्रकार साझा होता है, उसी प्रकार मजदूर और मालिक का साझा क्यों न हो ? हाँ, यह सच है कि मैं समाज की बात कर रहा हूँ। मैं शहरवालों को यही समझाऊँगा कि गाँवों में से आपने भर-भरकर पाया है तो गाँववालों का भी अपनी संपत्ति में एक हिस्सा समझो। केवल एकमुश्त दान देकर छूट जाना मत चाहो। आदमी एक बार शराब पीता है तो क्या छूट जाता है या बँधता है ? किसी धर्म कार्य से आदमी छूटना नहीं चाहता। हाँ पाप-कार्य से छूटना चाहता है। वह कहता है कि एक बार पाप हो गया अब दुबारा नहीं करूँगा। इसीलिए मैं संपत्ति-दान देनेवालों से कहता हूँ कि क्या यह पाप कार्य है कि आप छूट जाना चाहते हैं ? इसे धर्म कार्य समझकर बार बार करते रहें जीवनभर करते रहें।

लोग कहते हैं कि यह बहुत कठिन काम है। लेकिन मैं कहता हूँ कि कठिन नहीं है। एक आदमी ने कहा कि हम हर महीने आपको पचीस रुपये देंगे और ज़िंदगीभर देते रहेंगे। मैंने कहा यह ठीक नहीं है अगर कल आप दरिद्र बन गये, तो आपको अपनी प्रतिज्ञा तोड़नी होगी। लेकिन निश्चित रकम के बदले अगर आप अपना छठा या कोई भी हिस्सा देने का तय करेंगे तो उसका जीवन भर पालन करना आपके लिए संभव होगा। फिर आपको अगर आधी रोटी ही खाने को मिले, तो उसमें से भी छठा हिस्सा आप दे सकेंगे और अगर फाका करना पड़े तो उस फाके का भी छठा हिस्सा दे सकते हैं। इस प्रकार यदि मेरा विचार समझ में आ जाय तो उसका बोझ नहीं महसूस होगा। जिस प्रकार आदमी को शरीर का बोझ नहीं लगता उसी प्रकार धर्म का बोझ भी नहीं लगना चाहिए। धर्म-विचार जीवनदायी विचार होता है।

शुद्धि नहीं शक्ति भी

खासकर हमें एक चीज यह देखनी है कि अपरिग्रह में शक्ति भी है। अपरिग्रह में शुद्धि है इसका भान तो हमें रहा है लेकिन उसमें शक्ति है, इसका भी ख़याल करना चाहिए। उसमें उत्पादक शक्ति है जिससे जीवन उत्तम बनता है। मान लो कि 'गांधी-स्मारक-निधि' के दस करोड़ रुपये इकट्ठे हुए हैं उसके बदले सौ करोड़ इकट्ठे होते तो उससे क्या होता? हमारी पद्धति में तो घर-घर में बैंक हो जाता है। उसकी शक्ति की कोई सीमा नहीं। आदान-प्रदान भी उसमें स्थानिक ही होता है। इसलिए वह अतिसूक्ष्म योजना बन जाती है। उसमें से सीधी सामूहिक शक्ति पैदा होती है रचना और सफलता होती है। त्याग और संयम का महत्त्व हमने माना है लेकिन ये सब शक्तियाँ हैं, इस दृष्टि से हमें सोचना और समझना होगा। हमें जो जमीन आज तक मिली है उसकी औसत कीमत अगर सौ रुपया एकड़ समझ लें तो भी बीस लाख एकड़ के बीस करोड़ रुपये हुए। यदि मैंने बीस करोड़ रुपये इकट्ठे किये होते तो उसमें से कितनी झगड़े पैदा होतीं और कितना पाप होता!

कागज माँगनेवाला भगवान्

एक अख़बारवाले ने मुझ पर व्यंग्य किया था कि 'विनोबा को तो न ज़मीन

चाहिए और न संपत्ति, उसे तो केवल दान-पत्र चाहिए। वह तो कागज माँगनेवाला देव है। इस से संतोष माननेवाले देवों को जिस तरह हम फूलों की माला चढ़ा देते हैं उसी तरह इसके गले में दानपत्र डाल दो तो तुलसी चढ़ाने की जरूरत नहीं पड़ती, कहो है भैया राम गोविन्द हरि'।" उसने तो और व्यंग्य किया था लेकिन दरअसल बात सही है। हमारे दिल में उस आदमी के पैसे के बनिस्बत उसके वचन की कीमत कहीं अधिक है। क्योंकि दान में आज तो यह तरकीब है कि उसका विनियोग कैसे होगा इसका निर्देश मैं दूँगा। लेकिन जब करोड़ों दान इस प्रकार मिलने लगेंगे और निर्देश देना भी संभव नहीं होगा तब तो अपने आप बँटवारा होने लगेगा। इच्छा करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठेगा। पुराने धर्मों के साथ इस योजना का वास्ता भी संभव नहीं है यह ठीक समझ लेना चाहिए। बाहर से एकत्र करनेवाली किसी योजना का इसमें समावेश नहीं है।

कालियम (केरल)
१-१-५७

जनता की प्रत्यक्ष इच्छा से ही मसले का हल : ३० :

हम चाहते हैं कि जिस प्रकार बारिश बूँद-बूँद बरसती, उसी प्रकार भूदान-यज्ञ, सम्पत्तिदान यज्ञ और श्रमदान यज्ञ में बूँद-बूँद दान मिले लेकिन हर मनुष्य से मिले, तो इतना बड़ा काम शीघ्र हो जायगा।

मानव-शक्ति का आविर्भाव ही अवतार

कुछ लोग शंका करते हैं कि क्या इस प्रकार दान देने की वृत्ति सबकी होगी? मैं कहता हूँ क्यों नहीं होगी। मानव वही है जो मनन करता है, विचार को समझता है और उसी पर जिसका जीवन चलता है। इस प्रकार हम विचार सबको समझायें, तो किसीको दान की मर्यादा क्यों न मिलेगी? एक दिन ऐसा भी था, जब कोई यह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि भाप की ताकत से इंजिन चल सकती है। लेकिन एक वैज्ञानिक निकल पड़ा जिसने भाप की ताकत की ओर

उसके बाद उसका उपयोग दुनियाभर में हुआ। आखिर भाप क्या चीज है? वह तो कोई चीज ही नहीं नाचीज है लेकिन उस वैज्ञानिक शोध के बाद मालूम हुआ कि उसमें कितनी शक्ति है। मनुष्य में क्या क्या शक्ति छिपी रहती है, इसका अन्दाज हमें पूरा नहीं हुआ इसीलिए ऐसी शंका उठती है। लेकिन ज्यों-ज्यों मानव का संशोधन होगा त्यों-त्यों हमारे सामने मानव की एक एक शक्ति का आविर्भाव होगा। इसीको कहते हैं 'अवतार'। अवतार के मानी हैं, मानव-हृदय की शक्ति का आविर्भाव होना। जहाँ सत्य-निष्ठा प्रकट हो गयी वहाँ उसने रामचन्द्र का रूप लिया। जहाँ निष्काम कर्मयोग प्रकट हुआ वहाँ उसने श्रीकृष्ण का रूप लिया। जहाँ करुणा मूर्तिमती हुई वहाँ उसने बुद्ध का रूप लिया। मनुष्य को अवतार मानना इन्द्रियपरायणता के कारण होता है। इन्द्रियों को देखने के लिए कुछ चाहिए, इसलिए वह रूप बनाता है। वास्तव में राम, कृष्ण या बुद्ध अवतार नहीं वहाँ सत्यनिष्ठा निष्काम कर्मयोग और करुणा का आविर्भाव हुआ था। जहाँ ऐसी मानवता की शक्ति प्रकट हुई वहाँ अवतार हो गया। फिर मूर्तिपूजक मनुष्य ने उसमें आरोपण किया। उससे उपासना की सुगमता हुई लेकिन अवतार शरीर का नहीं, मानव-हृदय की भावना का होता है। जैसे-जैसे आध्यात्मिक संशोधन होता गया, वैसे वैसे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ अवतार हुए। यही समाज के विकास की प्रक्रिया है। यह मानना कि मानव आत्मा में आज तक जितनी शक्ति प्रकट हुई है, उतनी ही रहेगी संकुचितता और अज्ञान का लक्षण है। आत्मा में अनन्त शक्ति होती है। जैसे जैसे परिस्थिति आवश्यकता और माँग पैदा होती है वैसे वैसे आत्मा की शक्ति प्रकट होती है।

स्वराज्य के बाद आर्थिक क्षेत्र में शक्ति का अवतार

जब हिन्दुस्तान में अंग्रेज आये और उन्होंने अपनी हुकूमत कायम की तो एक चमत्कार कर दिखाया। उन्होंने सारे देश को निःशस्त्र कर दिया। तब देश के सामने एक समस्या पेश हुई कि या तो सारे देश को हमेशा के लिए गुलामी में रहना होगा या ऐसी शक्ति का आविष्कार करना होगा जो बिना शस्त्र के शस्त्र का सामना कर देश को मुक्त कर दे। परिस्थिति में जब ऐसी आवश्यकता

निर्माण हुए थे 'अहिंसक प्रतिकार' और 'सत्याग्रह' का आविष्कार हुआ। महात्मा गांधी उसके निमित्तमात्र बने। मैंने कई बार कहा है कि वे न होते, तो उनकी जगह कोई दूसरा होता। लेकिन इस शक्ति का आविष्कार होना ही था। और यह लाजिमी ही था, क्योंकि यह परिस्थिति और जमाने की माँग थी। लोगों ने देखा कि अहिंसा में एक बड़ी शक्ति है, जिससे इतनी बड़ी सल्तनत का मुकाबला हुआ और वह सत्ता यह देश छोड़कर चली गयी। उससे चमत्कार यह हुआ कि जालिमों और मजलूमों में प्रेम का नाता बँधा। जालिम मिट गया, मजलूम मिट गया और दोनों दोस्त बने। इस तरह शक्ति का आविर्भाव हुआ और हमें स्वराज्य प्राप्त हुआ, यह आप जानते हैं। स्वराज्य के लिए प्रयत्न बहुत हुए, परन्तु हिन्दुस्तान के लिए यह आविष्कार विशेष था, क्योंकि इसमें मानव-हृदय की नयी शक्ति का आविर्भाव हुआ।

अब स्वराज्य के बाद हिन्दुस्तान में आर्थिक समानता, गरीबी का निवारण और साम्ययोग की स्थापना का कार्य प्रस्तुत है। इसलिए आर्थिक क्षेत्र में भी नव शक्ति का आविष्कार होना चाहिए और वह हो रहा है, इसमें कोई शक नहीं। इसलिए ऐसा कभी मत सोचिये कि जो अभी तक नहीं हुआ, वह आगे कैसे होगा। वास्तव में इसीलिए भगवान् ने हमें जन्म दिया है। अगर मानव-जीवन में करने के सारे काम कर लिये गये होते, उसके लिए कुछ करने को बाकी न रहता तो परमेश्वर हमें जन्म ही क्यों देता? लेकिन उसने हमारे लिए कुछ नया पुरुषार्थ छोड़ रखा था और उसके लिए आत्मा में गोता लगाकर नयी शक्ति का आविर्भाव करने की जिम्मेवारी हम पर डाली है।

जनता की परोक्ष और प्रत्यक्ष इच्छा

इसलिए यद्यपि हमें हर पक्ष की तरफ से बूँद-बूँद पानी की तरह अब तक दान नहीं मिला है और हर कोई से ऐसी घटना अभी तक नहीं हुई है, पर वह अब होनेवाली है। हम समझते हैं कि कानून लोगों की इच्छा-शक्ति है, जो उनके चुने हुए प्रतिनिधियों के जरिये प्रकट होती है। आखिर कानून भी तो लोगों की शक्ति ही है। अगर लोग इस तरह कानून से बदल सकते हैं, तो प्रत्यक्ष जनता

होता है, तो वे परमेश्वर के कानून के वश क्यों नहीं होंगे, जो प्रेम का कानून है और जिसका जीवन में हमें अनुभव होता है? मनुष्य की उत्पत्ति प्रेम से हुई है, प्रेम से उसका पालन होता है और आखिर में भी प्रेम का यह प्यासा प्रेम पा प्रसन्न होकर जाता है। इस तरह अगर जीवन का आदि मध्य और अन्त प्रेम पर ही निर्भर है और यही मानव की स्वाभाविक प्रतीत होता है, तो हम पूछते हैं—'माताएँ बिना कानून के बच्चे को पिलाती हैं और इतने सारे लोग बिना कानून के प्रेम का जीवन बिताते हैं तो उसी प्रेम का एक रूप अपने गरीब भाइयों के लिए सम्पत्ति और भूदान-यज्ञ में हक की तौर पर धर्म समझकर बिना कानून के देना उन्हें क्यों नहीं सूझेगा? इस प्रश्न का उत्तर हमें कोई नहीं दे रहा है।

हम मानते हैं कि अगर कानून से काम हो सकता है जो मनुष्य की परोक्ष इच्छा है तो प्रत्यक्ष इच्छा से जरूर होना चाहिए और फौरन होना चाहिए। वह आसानी से होना चाहिए और सुन्दर होना चाहिए। इस तरह मौलिक श्रद्धा रख कर काम करनेवालों को कोई शंका नहीं उठती। जैसे प्रकाश को अन्धकार देखने को नहीं मिलता वैसे ही हमें भी यह समस्या दिखाई नहीं देती। हम मानते हैं कि अगर ऐसा विश्वास हम समाज को समझा दें तो समाज फौरन समझ जायगा। यह चीज उसकी आत्मा में भरी हुई है। अगर यह आत्मा के स्वभाव के विरुद्ध होगी तो वह जबर्दस्ती से भी नहीं समझेगा और कानून से भी नहीं समझेगा। पर जब कि एक ही वस्तु ऐसी की जा रही है जो आत्मा के स्वभाव में है, प्रकृति के सम्पूर्ण अनुकूल है तो केवल समझाने की जरूरत है। समझाने पर यह काम हो ही जायगा। इसी श्रद्धा से हम आपके पास पहुँचे हैं और खुशी की बात है कि लोग दे रहे हैं। उन्होंने जितना दिया उतने की आशा इतने अल्प समय में नहीं की जा सकती थी। हम मानते हैं कि गंगा का उद्गम हुआ है और वह गंगा बढ़ रही है वह अब नहीं रुकेगी।

चारीम्मम
१ १ ५२

आज सितम्बर की १४ तारीख है। इसी दिन गये साल बिहार में हमने प्रवेश किया था। एक साल पूरा हुआ। इतने दिनों में बिहारी भाइयों के साथ हमारा अच्छा सम्पर्क हुआ। परिचय भी काफी हुआ। हमने देख लिया कि बिहार में बहुत शक्ति पड़ी है, केवल उसे जाग्रत करने की जरूरत है। आपको मालूम है कि अब राजाओं के दिन चले गये। बड़े जमींदारों के दिन भी नहीं रहे। आगे की दुनिया जनता की दुनिया होगी। उसमें आम जनता की आवाज प्रमाण मानी जायगी। आज सारी दुनिया में समता की भूख जगी है। आज का जमाना बराबरी का नाता चाहता है। यह सख्य भक्ति का जमाना है।

सख्य भक्ति और दास्य भक्ति

अर्जुन और भगवान् के बीच सख्य भक्ति का नाता था। दोनों बराबरी से काम करते थे। भगवान् के पास ज्ञान का भंडार था तो अर्जुन का ज्ञान सीमित था। वह पराक्रमी अवश्य था लेकिन उसकी वह शक्ति भी सीमित थी जब कि भगवान् की शक्ति निःसीम थी। फिर भी दोनों के बीच समानता या बराबरी का संबंध था। भगवान् के लिए अर्जुन के मन में आदर था लेकिन उनका नाता बराबरी का ही था। इससे भी पहले एक बड़ा अच्छा जमाना था और वह था दास्य भक्ति का। उस जमाने में स्वामी सेवक का भाव था। स्वामी और सेवक में परस्पर प्रेम था, लेकिन स्वामी सेवक का पालन पोषण करता और सेवक स्वामी की भक्ति करता। वह हनुमान् का जमाना था। उसने जो राम की भक्ति की, वह दास्य भक्ति रही।

आज दुनिया में सख्य भक्ति की भूख बहुत है। इसके माने यह नहीं कि जो पूज्य पुरुष हैं उनके प्रति आदर न होगा। बल्कि आदर के साथ-साथ अब बराबरी का नाता भी रहेगा। जब लड़ाई का मौका आया, तब अर्जुन ने स्पष्ट

से पूछा : 'क्या आप हमें मदद करेंगे ? सारथी बनिये और हमारे घोड़ों को सँभालिये। इस तरह उन्होंने अपने परम पूज्य को घोड़े की सेवा का काम दिया, यह उनका मित्र-दर्शन था। हनुमान् के जमाने में समाज-रचना ऐसी थी कि कुछ शक्तिशाली पुरुष स्वामी थे और कुछ सेवा-परायण लोग सेवक। सेवक और स्वामी में प्यार था, झगड़ा नहीं था। लेकिन उस जमाने में विकास की एक मर्यादा थी।

रामचन्द्र राजा राम थे, लेकिन कृष्ण 'राजा कृष्ण' नहीं, गोपाल कृष्ण था, सखा दास ही था। आज के जमाने में स्वामी-सेवक का नाता, फिर चाहे वह प्रेम ही क्यों न हो, काफी नहीं माना जाता। बीच में ऐसा जमाना भी आया जब कि स्वामी जुल्मी निकले और सेवकों के मन में स्वामी के लिए आदर नहीं रहा। आज भी स्वामी-सेवक के सम्बन्ध अच्छे हो सकते हैं, लेकिन आज के जमाने की माँग सख्य भक्ति की है। स्वामी-सेवक का नाता इस जमाने के लिए काफी नहीं है।

सखा के नाते दान की माँग

इसीलिए जब हम दान माँगते हैं, तब यह नहीं कहते कि 'आप बड़े हैं, स्वामी हैं, मालिक हैं, हमें दान दीजिये, हम आपकी सेवा करेंगे, हम पर आपका बड़ा उपकार होगा।' हम तो यही कहते हैं कि 'हम भाई-भाई हैं। अपनी बढ़ती का हिस्सा दीजिये।' शंकराचार्य के मत से 'दान' का अर्थ ही 'सम्यक् विभाजन' होता है। इसलिए जब कोई हमें सौ एकड़ में से दो एकड़ देता है, तो हम नहीं लेते। अगर हम सेवक-भाव से माँगते, तो दो एकड़ भी ले लेते, उन्हें प्रणाम करते और उनका उपकार मानते। लेकिन आज हम सखा के नाते माँग रहे हैं।

सख्यभाव के आधार पर समाज-रचना

आज की समाज-रचना अब सख्यभाव ही स्वीकार करेगी। गुरु-शिष्य भी आज एक-दूसरे के मित्र बनेंगे। दोनों एक-दूसरे पर प्यार करेंगे। गुरु शिष्य को सिखायेगा और शिष्य भी गुरु को सिखायेगा। जिसके पास जो होगा, वह दूसरे को

देगा और दोनों एक-दूसरे का उपकार मानेंगे। इस तरह बराबरी का नाता मानते हुए गुरु शिष्य रहेंगे, मालिक-मजदूर रहेंगे और स्वामी-सेवक रहेंगे।

एक जमाना था जब पत्नी पति को पतिदेव समझती और अपने को दासी मानती। वह जमाना भी उत्तम नहीं था। लेकिन अब हम एक कदम आगे बढ़ गये हैं। अब की पत्नी पतिव्रता होगी और पति पत्नीव्रती। दोनों एक-दूसरे को देवता समझेंगे। जिसकी योग्यता अधिक होगी, उसीका आदर होगा। अगर पति की योग्यता अधिक हो तो पत्नी उसका आदर करेगी और पत्नी की योग्यता अधिक होगी तो पति उसका आदर करेगा। फिर भी दोनों का नाता बराबरी का ही रहेगा। इसे मैं कहता हूँ "समय माँग का जमाना"।

हमें जमाने की माँग के अनुसार समाज बनाना होगा। उसके बाद क्या करेंगे इसका विचार हम आज नहीं करते। किन्तु यह समझ लेना चाहिए कि पुराने जमाने के मूल्य जैसे के वैसे न टिकेंगे। तुलसी-रामायण के जमाने में जो मूल्य थे, वे आज नहीं रहे। उस जमाने में ब्राह्मण श्रेष्ठ था लेकिन आज के जमाने के रामायण में केवल ब्राह्मण ही श्रेष्ठ नहीं समझा जायगा। जहाँ सत्कार होगा, वहाँ उसका आदर होगा लेकिन नाता बराबरी का रहेगा।

इस जमाने में भी कारखानेदार और मजदूर रहेंगे। किन्तु एक में अक्ल ज्यादा रहेगी, तो मजदूर यह कभी नहीं कहेगा कि आप मालिक हैं और हम आपके नौकर। अब यह नाता नहीं चलेगा, अब तो दोनों साझेदार बनेंगे। कारखानेदार को अपनी अक्ल का मेहनताना मिलेगा और मजदूर को भी अपनी ताकत का उतना ही मेहनताना मिलेगा। मेहनताना समान होगा। जिसकी योग्यता अधिक होगी उसका आदर किया जायगा लेकिन सब एक दूसरे के मित्र और साथी रहेंगे।

आज के जमाने में भाई-भाई, गुरु-शिष्य और पति-पत्नी के नाते नये सिरे से बनेंगे। उसमें एक नया मजा आयेगा। पुराने जमाने में भी मजा था लेकिन अब वह बिगड़ गया। आज पत्नी लक्ष्मी होने पर भी उसकी कद्र नहीं रही। वहाँ नाते में बुराई आयी, वहाँ नये जमाने की माँग सामने आ गयी। आज अगर खुद रामचन्द्र भी पृथ्वी पर आकर 'राम राज्य' बनाना चाहें, तो हमें यह

कबूल नहीं होगा। महात्मा गांधी भी आयें तो हम उन्हें 'राजा गांधी' नहीं बना देंगे, महात्मा ही रखेंगे। पुराने जमाने में अच्छे भी राजा हुए, लेकिन उनसे ज्यादा बुरे राजा हुए। उस जमाने में प्रजा का विकास एक हद तक होता था। लेकिन आज जमाना आगे बढ़ गया है।

जमाने के खिलाफ कोई टिक नहीं सकता

जो लोग अपने जमाने के अनुसार परिवर्तन करना नहीं चाहते वे हार जाते और मार भी खाते हैं। आदमी प्रवाह में न भी तैरे तो वह आगे बढ़ सकता है। लेकिन अगर वह प्रवाह के विरुद्ध जायगा तो कुछ व्यायाम हो जाने पर भी वह आगे नहीं बढ़ सकता। आदमी कितना ही बड़ा क्यों न हो उसकी पुरानी शान, ठाठ और रोब अब नहीं चलेगा। हमारे पास इसकी एक मिसाल भी है। परशुराम कितने महान् पुरुष थे। उनकी धाक भी थी। इक्कीस बार उन्होंने पृथ्वी को निःक्षत्रिय किया। वे अवतार ही थे। किन्तु जब रामचन्द्र का नया अवतार हुआ तो उन्हें पहचान लेना चाहिए था कि अब नया अवतार हो गया। लेकिन उन्होंने नहीं पहचाना और राम का मुकाबला किया। उसमें वे हार गये। परशुराम जैसा तपस्वी भी जहाँ जमाने के खिलाफ नहीं टिक पाया वहाँ दूसरा कौन टिक सकेगा? पुराने ढंग अच्छे भी हों, तो भी नये जमाने में वे अच्छे साबित नहीं होते।

प्रेम बराबरी का चाहिए

आज कार्यकर्ताओं से बातें करते हुए हमने कहा कि 'हमें अन्न मिलना चाहिए' इसका अर्थ कोई टैक्स वसूल करना नहीं है। मैं तो विचार समझा रहा हूँ कि जमीन सम्पत्ति और ज्ञान के साधन पर सब लोगों का समान हक है। जो जमाने को पहचानते हैं, वही लोग सफल होते हैं। किन्तु यदि आप उसे जबरदस्ती समझेंगे तो वह उलटा करेगा। लेकिन यदि जमाने की भूख को पहचानो, तो सारे मालिक-नौकर सब मिलकर छोटे-बड़े का त्याग करेंगे।

लोग कहते हैं कि आजकल बच्चे माता-पिता का आदर नहीं करते। लेकिन बच्चा तो बचपन से ही माँ पर पूरी श्रद्धा रखकर काम करता है। माँ इसी अपनी

है कि वह चोर है, तो क्या उसे मान लेता है। वह यह नहीं कहता कि 'ठहरो हमें तहकीकात कर लेने दो—यह सचमुच चोर है या नहीं।' आश्चर्य है कि इतनी श्रद्धा होते हुए भी लोग कहते हैं कि अपने माँ-बाप का नहीं मानते। मैं तो यही कहूँगा कि माता-पिता बच्चों को नहीं समझते। माता-पिता बच्चों के साथ बराबरी के नाते से रहें और बराबरी के नाते से उन्हें प्यार करें। उन्हें हुक्म न दें, सलाह दें। आज्ञा न दें, पीटें नहीं। पहले माता-पिता बच्चों को पीटते थे लेकिन प्रेम से पीटते थे। इस जमाने में वह नहीं चलेगा। अब तो माता कहेगी कि 'तुम्हें खाना नहीं दूँगी, अपने-आपको दुःख देकर भूखी रहूँगी'। लोग पूछते हैं कि बच्चे को भी नहीं पीटना चाहिए। मैं कहता हूँ कि जो बच्चा बचपन से आप पर श्रद्धा रखता है, उसे पीटने का सवाल ही नहीं उठता। आज केवल प्रेम नहीं चाहिए, बराबरी का प्रेम होना चाहिए।

जमाने की माँग है

सबकी अपनी-अपनी विशेषता और कमजोरी भी होती है। मजदूर में यदि बुद्धि कम है, तो हृदय ज्यादा हो सकता है। *वह किसीके लिए मर मिटने को* तैयार हो सकता है। इसलिए बराबरी का प्रेम होना चाहिए, कोरा प्रेम अपर्याप्त है। अगर भूदान का काम जमाने की माँग के अनुकूल नहीं होता, तो छोटे लोग हमें जमीन नहीं देते और बड़ों में से भी कुछ लोग हमें क्या बताते। तब जो लोग देते, उनका हमें उपकार मानना पड़ता। किन्तु आज तो हम हरएक से जमीन माँगते हैं, क्योंकि हम उनसे कहना चाहते हैं कि तुम जमीन के मालिक नहीं हो। गरीब के घर यदि कुछ ज्यादा होता तो क्या वह उसे हिस्सा नहीं देगा? जरूर देगा। इसी तरह हम उनसे माँगते हैं और हमें मिलता है। हम तो अब कहते हैं कि जितने परिवार हों, उतने दान-पत्र मिलने चाहिए। जब कोई आदमी जमाने की माँग को पहचानता और धर्म मानना आरम्भ करता है, तो हरएक के लिए वह काम करना लाजिमी हो जाता है। यह एक नया विचार है, जो मैंने अपनी थैली में से नहीं निकाला, जमाने से ही लिया है। इस विचार को समझने की दृष्टि से काम कीजिये, सिर्फ भूमि प्राप्त करने की दृष्टि से नहीं। जब आप लोगों को

समझायेंगे कि सत्य भक्ति का जमाना आ गया, तब आपको काम में सफलता मिलेगी।

सिमराजोरी
१०-९-५३

भेदासुर का अन्तकालीन आक्रोश : ३२ :

[गत १९ सितम्बर को देवघर में प्रार्थना-प्रवचन के बाद पूज्य विनोबाजी अपने साथियों के साथ हरिजनों को लेकर वैद्यनाथ महादेवजी के मन्दिर में दर्शन के लिए गये। वे उन मन्दिरों में नहीं जाते, जहाँ हरिजनों को प्रवेश नहीं मिलता। पर देवघर के सरदार पंडा ने जो उस मन्दिर के प्रबन्धक हैं सूचना दी थी कि इस मन्दिर में न तो हरिजनों का प्रवेश निषिद्ध है और न उन लोगों को जाने पर उन्हें कोई आपत्ति ही होगी। सूचना मिलने पर ही विनोबाजी ने मन्दिर में जाने का निर्णय किया। मन्दिर में जाने के बाद जो घटना हुई, उसे सब लोग जानते हैं। पंडों ने जिस तरह विनोबाजी के साथियों को मारा-पीटा और उन पर भी प्रहार किया वह नैतिक और धार्मिक दृष्टि से तो निन्दनीय है ही साथ ही हरिजनों को मन्दिर में न जाने देना भारतीय संविधान के अनुसार भी अपराध है। इस घटना पर विनोबाजी ने निम्न वक्तव्य दिया।]

कल वैद्यनाथधाम में हरिजनों को लेकर अपने साथियों के साथ हम महादेवजी के दर्शन के लिए गये। महादेवजी के दर्शन तो हमें नहीं मिल सके लेकिन प्रसादस्वरूप उनके भक्तों के हाथ की मार अवश्य मिली। इस सिलसिले में लोग हमसे पूछते हैं, इसलिए मैं यह निवेदन उपस्थित कर रहा हूँ। प्रारम्भ में यह कह देना चाहता हूँ कि जिन्होंने मारपीट की उन्होंने अज्ञानवश वैसा किया। इसलिए मैं नहीं चाहता कि उन्हें कोई सजा मिले। मुझे इस बात से बहुत ही संतोष हुआ कि जो सैकड़ों भाई मेरे साथ गये थे, सभी शान्त रहे। इतना ही नहीं मेरे साथियों ने, जिन पर बहुत प्रहार मार पड़ी कहा कि 'उस समय हमारे मन में कोई गुस्सा भी नहीं था। मैं समझता हूँ कि जिस देश में

लोकशाही समाजवाद

लोकशाही में हरएक को एक वोट रहता है। वोट के बल पर सब काम चलता है। उसमें अल्पसंख्यकों की रक्षा नहीं होती, बहुसंख्यकों की होती है। लोकशाही समाजवाद का कहना है कि उसमें सबकी रक्षा ही है, किन्तु इसके कारण निर्माण होनेवाली बुराइयों को दुरुस्त करने का इलाज समाजवाद के पास नहीं है। जब तक बहुसंख्यकों की राय से ही अल्पसंख्यकों के हित की रक्षा करने की कोशिश की जायगी, तब तक पूरा समाधान नहीं हो सकता।

वर्ग-संघर्षवादी साम्यवाद

कम्युनिज्म (साम्यवाद) कहता है कि समाज के ऊँचे वर्ग को खत्म किये बगैर समता नहीं आ सकती। वर्ग संघर्ष और जिनके हाथ में सत्ता है, उन्हें खत्म किये बिना चारा नहीं। उनकी हिंसा सब वाजिबी और धर्मसम्मत है। किन्तु सच है कि इस विचार से भी दुनिया में शान्ति नहीं हो सकती क्योंकि हिंसा में से प्रतिहिंसा ही निर्माण होती है, चाहे थोड़ी देर वह फिर दबकर बैठ जाय। इतना ही नहीं उसके कारण मनुष्यता का मूल्य और प्रतिष्ठा भी घट जाती है।

आत्मवाद पर आधृत साम्ययोग

किन्तु साम्ययोग का मानना है कि हरएक मानव में एक ही आत्मा समान रूप से बसती है। साम्ययोग मानव-मानव में भेद नहीं करता, बल्कि मानव-आत्मा और प्राणिमात्र की आत्मा में भी बुनियादी भेद नहीं मानता। हाँ इतना तो मानता है कि मानव की आत्मा में जो विकास सम्भव है, वह दूसरे प्राणियों की आत्मा में नहीं हो सकता। मानवों में भी सबका विकास समान नहीं होता यद्यपि विकास से विकास सम्भव है। किन्तु प्राणियों की आत्मा का विकास के बराबर विकास सम्भव नहीं। चूंकि प्राणिमात्र में एक ही आत्मा का अधिष्ठान है इसलिए जहाँ तक हो सके, हमें प्राणिमात्र की रक्षा का प्रयत्न करना चाहिए।

'समाजवाद' और 'साम्ययोग' में यही अन्तर है कि समाजवाद आत्मा की एकता को नहीं मानता और साम्ययोग मानता है। इतना ही नहीं साम्ययोग उसके आधार पर गहराई में भी जाना चाहता है। इसीलिए नैतिक, धार्मिक, सामाजिक

और राजनैतिक क्षेत्रों में इसके क्रांतिकारी परिणाम होते हैं। जब हम एक बुनियादी आध्यात्मिक विचार ग्रहण करते हैं, तो जीवन की अनेक शाखाओं में प्रवेश करते हैं। अपनी बुद्धि-शक्ति के मालिक हम नहीं, भगवान् हैं। और चूंकि हमारे सभी गुण समाज के लिए हैं इसलिए हमें चाहिए कि अपने पास की सारी शक्तियों को ईश्वर की देन मानें और समाज को अर्पण कर दें। हम तो अपने शरीर के भी मालिक नहीं उसके ट्रस्टी मात्र हैं। साम्ययोग कहता है कि सम्पत्ति किसी रूप में भी क्यों न हो उसके *मालिक हम नहीं हैं। साम्ययोग और साम्यवाद में यही* बड़ा भारी फर्क है।

'ट्रस्टीशिप' का क्रांतिकारी विचार

आज तक लोग अपने को सम्पत्ति का मालिक मानते आये। उसमें हितों का विरोध निर्माण होता है। किन्तु यहाँ 'ट्रस्टीशिप' का विचार आता है, वहाँ पूरी वैचारिक क्रांति होती है। याने अपनी-अपनी चीजों पर हम जो अपनी मालकियत मानते हैं वह गलत है। हमारे पास जितनी भी शक्तियाँ हैं समाज की सेवा के लिए हैं, व्यक्तिगत स्वार्थ साधने के लिए नहीं। व्यक्तिगत स्वार्थ तो अपने स्वार्थ को समाज के चरणों में समर्पित कर देने में ही है। सारे समाज को अपना स्वार्थ अर्पण कर देना और समाज के हित के लिए सतत प्रयत्न करना ही हमारा स्वार्थ है। यही नैतिक विशेषता साम्ययोग में से निर्माण होती है।

साम्ययोग की अर्थनीति

अब हम साम्ययोग के कारण आर्थिक क्षेत्र में भी किस प्रकार क्रांति होती है यह देखें। हमारे पास जो भी शक्तियाँ हैं, उन्हें हम अपनी नहीं मानते। कोई भी व्यक्ति अपनी शक्तिभर समाज का पूरा काम करता है तो वह रोटी का हकदार हो जाता है। एक किसी प्रकार का आदमी अपनी इस कमी के कारण जो कुछ करता है पूरी शक्ति से करता है तो वह खाने का हकदार है भले ही औरों की अपेक्षा उसकी सेवा की मात्रा कम हो। कम-ज्यादा शक्ति के अनुसार सेवा कम-ज्यादा हो सकती है। किन्तु पैसा भौतिक वस्तु है और सेवा नैतिक वस्तु। नैतिक वस्तु की कीमत भौतिक वस्तु से नहीं हो सकती। क्या किसी डूबते हुए को

ऐसे निर्वैर सेवक मौजूद हों, सचमुच उस पर प्रभु की कृपा है। मारपीट करने वाले तो केवल क्रोध के वश हो गये थे, क्योंकि उस समय उन्होंने स्त्री-पुरुष का भी भेद न पहचाना। मुझे विश्वास है कि यह बैद्यनाथपुर का प्रसंग सर्वकालीन प्रबोधक ही सिद्ध होगा।

जबरदस्ती से या केवल आग्रह के वश से मन्दिर-प्रवेश करने की मेरी इच्छा नहीं थी। मैंने यह नियम रखा है कि जहाँ हरिजनों को प्रवेश नहीं मिलता, उस मन्दिर में मैं जाता ही नहीं। पर यहाँ हमने जब पूछा तो कहा गया कि मन्दिर में हरिजन जा सकते हैं। इसीलिए हम लोग शाम की प्रार्थना के बाद श्रद्धापूर्वक दर्शन के लिए निकले। रास्ते में हम लोगों ने मौन रखा था। मैं तो मन-ही-मन महादेव की स्तुति के वैदिक सूक्त का चिन्तन करता जा रहा था। उस हालत में जब हमारे ऊपर अनपेक्षित मार पड़ी, तो उसने मुझ पर एक विशेष असर डाला। साथियों ने मुझे घेर लिया था, इसलिए मारनेवाले मुझ पर जो भी सीधा प्रहार करते, उसे साथी लोग झेल लेते, फिर भी प्रसाद के तौर पर कुछ मुझे भी चखने को मिला। जिनके चरणों का मैं दास कहलाता हूँ, उन पर भी इसी धाम में ऐसा ही प्रहार किया गया था। वह घटना मुझे याद आ गयी। वही भाग्य मुझे प्राप्त हुआ, इसलिए कुछ धन्यता अनुभव हुई।

मैंने पहले ही कहा है कि मैं नहीं चाहता कि किसीको सजा मिले। लेकिन स्वराज्य के संविधान का रूप असाम्प्रदायिक हुआ है। उसका परिमार्जन छोटी-छोटी सजा से हो भी नहीं सकता। अतः ऐसी घटना दुबारा न होने पाये, इसका बन्दोबस्त होना चाहिए। मैं तो समझता हूँ कि ऐसे देवस्थान पर सरकार कब्जा कर ले, तो भी अनुचित नहीं होगा और शायद उससे ठीक बन्दोबस्त हो सकेगा। मैं यह कोई सुझाव नहीं पेश करता, बल्कि एक प्रकार चिन्तन कर रहा हूँ।

यह विज्ञान का जमाना है। हरएक धर्म बुद्धि की कसौटी पर कसा जा रहा है। यह ध्यान में रखकर हमारा समाज बरतेगा तो अच्छा होगा।

देवघर
१९-९-'५३

भूमिदान-यज्ञ के पीछे जो मूल विचार है, उसका नाम हमने "साम्ययोग" रखा है। हम इसी साम्ययोग के आधार पर सर्वोदय समाज का निर्माण करना चाहते हैं। सर्वोदय समाज के बारे में आप जानते ही हैं कि वह बहुसंख्यकों का नहीं सारे समाज का हित चाहता है। जिस साम्ययोग की बुनियाद पर यह विचार खड़ा है, आज उसीके बारे में हम विस्तार से समझाना चाहते हैं। आप जानते हैं कि आज दुनिया में तीन विचार चल रहे हैं, जिनमें एक तो पूँजीवाद है जो पुराना विचार है। इसका दावा है कि हम सम्पत्ति पैदा करना चाहते हैं। दूसरा लोकशाही समाजवाद का है और तीसरा है साम्यवाद। साम्यवाद का दावा है कि हम सबको समान भाव से जीवन की सब चीजें देना चाहते हैं।

विषमतावादी पूँजीवाद

दुनिया में प्रचलित इन तीनों विचारों में से हम पहले पूँजीवाद को लेते हैं। पूँजीवाद, जैसा कि मैंने अभी कहा विषमता का हामी है। वह कहता है कि कुछ लोगों की योग्यता कम है, इसलिए उन्हें कम मिलना चाहिए। कुछ लोगों की योग्यता ज्यादा है, इसलिए उन्हें ज्यादा मिलना चाहिए। वह योग्यता के अनुसार पारिश्रमिक देकर समाज में समता लाना चाहता है। इससे कुछ लोगों का जीवन ऊँचे स्तर तक चला गया है, लेकिन बहुत सारे लोगों का जीवन तो बिल्कुल खाई में गिर गया है। पूँजीवाद के पास इसका कोई इलाज नहीं है। उसका तो साफ कहना है कि जो नालायक हैं उनके लिए इसके सिवा कोई मार्ग नहीं कि वे नालायक बने रहें और जो लायक हैं, वे दुनिया के सुख-साधनों से लाभ उठायें यह अनिवार्य है। इसीलिए आज दुनिया दुःखी है और पूँजीवाद के समर्थक भी कम हैं। फिर भी वह चल रहा है। लेकिन आज नहीं तो कल वह टूटने वाला ही है।

लोकशाही समाजवाद

लोकशाही में हरएक को एक वोट रहता है। वोट के बल पर सारा काम चलता है। उसमें अल्पसंख्यकों की रक्षा नहीं होती, बहुसंख्यकों की होती है। लोकशाही समाजवाद का कहना है कि उसमें सबकी रक्षा ही है, किन्तु इसके कारण निर्माण होनेवाली बुराइयों को दुरुस्त करने का इलाज समाजवाद के पास नहीं है। जब तक बहुसंख्यकों की कम से ही अल्पसंख्यकों के हित की रक्षा करने की कोशिश की जायगी, तब तक पूरा समाजवाद नहीं आ सकता।

वर्ग-संघर्षवादी साम्यवाद

कम्युनिज्म (साम्यवाद) कहता है कि आज के ऊँचे वर्ग को खतम किये बगैर समता नहीं आ सकती। जो सम्पत्ति और जिनके हाथ में सत्ता है, उन्हें खतम किये बिना चारा नहीं। उनकी हिंसा तक जाहिरी और वर्गबद्ध है। किन्तु स्पष्ट है कि इस विचार से भी दुनिया में शान्ति नहीं हो सकती क्योंकि हिंसा में से प्रतिहिंसा ही निर्माण होती है, चाहे थोड़ी देर तक सिर दबाकर बैठ जाय। इतना ही नहीं, उसके कारण मनुष्यता का मूल्य और प्रतिष्ठा भी घट जाती है।

आत्मवाद पर आधृत साम्ययोग

किन्तु साम्ययोग का मानना है कि हरएक मानव में एक ही आत्मा समान रूप से बसती है। साम्ययोग मानव-मानव में भेद नहीं करता, बल्कि मानव आत्मा और प्राणिमात्र की आत्मा में भी बुनियादी भेद नहीं मानता। हाँ, इतना ही मानता है कि मानव की आत्मा में जो विकास संभव है, वह दूसरे प्राणियों की आत्मा में नहीं हो सकता। मानवों में भी सबका विकास समान नहीं होता, यद्यपि शिक्षण से विकास संभव है। किन्तु प्राणियों की आत्मा का शिक्षण के जरिए विकास संभव नहीं। चूंकि प्राणिमात्र में एक ही आत्मा का अधिष्ठान है, इसलिए जहाँ तक हो सके, हमें प्राणिमात्र की रक्षा का प्रयत्न करना चाहिए।

'साम्यवाद' और 'साम्ययोग' में यही अन्तर है कि साम्यवाद आत्मा की एकता को नहीं मानता और साम्ययोग मानता है। इतना ही नहीं साम्ययोग उसके आधार पर व्यवहार में भी चलना चाहता है। इसीलिए नैतिक, धार्मिक, सामाजिक

और राजनैतिक क्षेत्रों में इसके क्रांतिकारी परिणाम होते हैं। जब हम एक बुनियादी आध्यात्मिक विचार ग्रहण करते हैं, तो जीवन की अनेक शाखाओं में प्रवेश करते हैं। अपनी बुद्धि-शक्ति के मालिक हम नहीं भगवान् हैं। और चूंकि हमारे सभी गुण समाज के लिए हैं इसलिए हमें चाहिए कि अपने पास की सारी शक्तियों को ईश्वर की देन मानें और समाज को अर्पण कर दें। हम तो अपने शरीर के भी मालिक नहीं उसके ट्रस्टी मात्र हैं। साम्ययोग कहता है कि सम्पत्ति किसी रूप में भी क्यों न हो उसके मालिक हम नहीं हैं। साम्ययोग और साम्यवाद में यही बड़ा भारी फर्क है।

'ट्रस्टीशिप' का क्रांतिकारी विचार

आज तक लोग अपने को सम्पत्ति का मालिक मानते आये। उसमें हितों का विरोध निर्माण होता है। किन्तु जहाँ 'ट्रस्टीशिप' का विचार आता है, वहाँ पूरी वैचारिक क्रांति होती है। माने अपनी अपनी चीजों पर हम जो अपनी मालकियत मानते हैं वह गलत है। हमारे पास जितनी भी शक्तियाँ हैं समाज की सेवा के लिए हैं व्यक्तिगत स्वार्थ साधने के लिए नहीं। व्यक्तिगत स्वार्थ तो अपने स्वार्थ को समाज के चरणों में समर्पित कर देने में ही है। सारे समाज को अपना स्वार्थ अर्पण कर देना और समाज के हित के लिए सतत प्रयत्न करना ही हमारा स्वार्थ है। यही नैतिक विशेषता साम्ययोग में से निर्माण होती है।

साम्ययोग की अर्थनीति

अब हम साम्ययोग के कारण आर्थिक क्षेत्र में भी किस प्रकार क्रांति होती है यह देखें। हमारे पास जो भी शक्तियाँ हैं उन्हें हम अपनी नहीं मानते। और जो भी व्यक्ति अपनी शक्ति भर समाज का पूरा काम करता है तो वह रोटी का हकदार हो जाता है। एक किसान या आदमी अपनी इस कमी के बावजूद जो कुछ करता है पूरी शक्ति से करता है तो वह खाने का हकदार है भले ही औरों की अपेक्षा उसकी सेवा की मात्रा कम हो। कमज्यादा शक्ति के अनुसार सेवा कमज्यादा हो सकती है। किन्तु रुपया भौतिक वस्तु है और सेवा नैतिक वस्तु। नैतिक वस्तु की कीमत भौतिक वस्तु से नहीं हो सकती। जब किसी दुखते हुए को

बचाने की दस मिनट की सेवा का मूल्य रोगी के हिसाब से आँका जा सकता है ? माँ अपने बच्चे की सेवा करती है, लड़का अपने पिता की सेवा करता है, मंत्री अपने समाज की सेवा करता है लेकिन इन सब कामों की कीमत पैसों में नहीं आँकी जा सकती । भला जिस सेवा में हृदय डाला गया हो उसकी कीमत पैसे में कैसे हो सकती है ? पुत्र ने माता को जो कुछ दिया विद्यार्थी ने गुरु को जो कुछ दिया किसान ने समाज को जो कुछ दिया उसकी कीमत नहीं हो सकती ।

नैतिक मूल्यों के समान आर्थिक क्षेत्रों में भी श्रम का मूल्य समान होना चाहिए । किन्तु आज इससे बिल्कुल उल्टा होता है । आज शारीरिक काम की अपेक्षा बौद्धिक काम की मजदूरी ज्यादा दी जाती है । उसकी प्रतिष्ठा भी ज्यादा होती है । लेकिन इस तरह का फर्क बिल्कुल बेबुनियाद है । चूंकि साम्ययोग का विचार आत्मा की समता पर निर्भर है इसलिए आर्थिक क्षेत्रों में भी यह कोई भेद स्वीकार नहीं कर सकता । हाँ सेवक की भूमिका के अनुसार सेवा के प्रकारों में भेद हो सकता है । जो सेवा माँ कर सकती है, वह पुत्र नहीं कर सकता । जो सेवा पुत्र कर सकता है वह माँ नहीं कर सकती । जो सेवा स्वामी कर सकता है, वह सेवक से बन नहीं पाती । सेवक से जो सेवा बन पाती है, वह स्वामी से नहीं बन पाती । भाई जो सेवा कर सकता है वह बहन नहीं कर सकती और न बहन का काम भाई ही कर सकता है । इस तरह व्यक्ति-भेद और शक्ति-भेद के अनुसार सेवा भेद भले ही हो लेकिन किंमत सबकी समान होनी चाहिए । हरएक इंद्रियाँ कम-बेश काम देती हैं पर वे हैं सब समान भले ही एक से जो काम होता है, वह दूसरी से नहीं हो पाता । इसी तरह समाज में हरएक की सेवा का प्रकार भिन्न हो सकता है, पर उसका आर्थिक मूल्य समान ही होना चाहिए ।

साम्ययोग के सिद्धान्त के अनुसार जब नैतिक मूल्यों में अन्तर नहीं आता तो आर्थिक क्षेत्र में भी अन्तर न आना चाहिए । हरएक को विकास का पूर्ण मौका मिले तालीम का अधिकार मिले । विद्यार्थी अपनी ग्रहण शक्ति के अनुसार तालीम ग्रहण करेंगे । यह नहीं हो सकता कि फलाना लड़का गरीब का है इसलिए उसकी तालीम का प्रबन्ध नहीं और फलाना लड़का श्रीमान् का है इसलिए उसकी तालीम का प्रबन्ध है । अगर हम इस तरह समाज के मूल्य रखेंगे तो समाज

निराश न हो सकेगा। समान मौका मिलने पर जिसमें जो योग्यता होगी, वह उस धन्धे में प्रवेश कर सकेगा। मजदूरी का परिणाम कम-बेश होने पर विकास गलत तरीके से होगा और व्यर्थ ही दूसरे धन्धों का आकर्षण होगा जैसा कि आज हो रहा है। समान वेतन से यह वृत्ति रुकेगी।

विकेन्द्रीकरण

इस विचार का आर्थिक क्षेत्र में यह परिणाम होगा कि गाँव गाँव पूर्ण स्वावलम्बी बनेंगे। अनाज कपड़ा घी दूध आदि प्राथमिक आवश्यकताओं की सभी चीज हर गाँव में पैदा होंगी और हर गाँव स्वयं-पूर्ण बनेगा। यह भी पूर्ण और वह भी पूर्ण होगा, दोनों की पूर्णता से समता का निर्माण होगा। अगर यह भी अपूर्ण रहा और वह भी अपूर्ण रहा तो दोनों की अपूर्णता से समता निर्मित नहीं हो सकती। बुनियादी चीजों की पूर्ति देहातों में ही होनी चाहिए। भगवान् ने सबको परिपूर्ण बनाया है। अवयव और आकार कम-बेश होते हैं पर भगवान् की योजना इतनी निर्छिद्र है कि सबका विकास हो सकता है। वैसी ही निर्छिद्र योजना हम चाहते हैं। अगर आर्थिक क्षेत्र में समता न होगी, तो ऊँच-नीच का भेद बढ़ेगा, परावलम्बन पैदा होगा और एक आत्मा दूसरी आत्मा की गुलाम बनेगी। इसलिए हम निर्छिद्र अर्थ-व्यवस्था चाहते हैं।

साम्ययोग की राजनीति और समाजनीति

इसी तरह राजनैतिक क्षेत्र में भी हमारे आज के मूल्य बदल जायेंगे। हम न सिर्फ शोषण रहित बल्कि शासन मुक्त समाज की रचना चाहते हैं। साम्ययोग की कल्पना के अनुसार शासन गाँव-गाँव में बँट जायगा। यानी गाँव-गाँव में अपना राज होगा, मुख्य केन्द्र में नाममात्र के लिए सत्ता रहेगी। इस तरह होते होते शासन मुक्त समाज बन जायगा।

सामाजिक क्षेत्र में भी वर्ण-भेद या ऊँच-नीच का भाव न रहेगा। अगर किसीमें ब्राह्मण का गुण है तो उस उसके कारण दूसरों से अपने को उच्च मानने का कोई कारण नहीं। इसी तरह मेहतर चमार आदि भी नीच नहीं समझे जायेंगे। उनके बिना भी समाज का काम नहीं चलता।

क्रांति : नैतिक मूल्यों में परिवर्तन

इस तरह साम्ययोग नैतिक, आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में परिवर्तन लाना चाहता है। इसीको 'क्रांति' कहते हैं। आजकल लोग हिंसा को ही 'क्रांति' समझते हैं। किन्तु जहाँ बुनियादी चीजों में क्रांति नहीं, वहाँ ऊपर-ऊपर के परिवर्तन को क्रांति कहना गलत होगा। क्रांति तभी होती है, जब हम अपने नैतिक जीवन में परिवर्तन करते हैं। हमारा दावा है कि साम्ययोग नैतिक मूल्यों में परिवर्तन करता है, क्योंकि उसकी बुनियाद आध्यात्मिक है और वह जीवन की सारी शाखा-उपशाखाओं में आमूलाग्र क्रांति करता है।

साम्ययोग की व्यापक दृष्टि

यह भूदान तो एक पत्थर है। आरम्भ में विचार समझने के लिए मेरे ममता से मुक्त होने का यह विचार है। लेकिन मुक्त हों कैसे ! तो शुरू करना है जमीन की मालकियत से मुक्ति पाने के काम से। दान देना किसी पर मेहरबानी नहीं। हमारी आखिरी कल्पना तो यह है कि गाँव की जितनी भूमि है, वह सब गाँववालों की है। आगे चलकर हम यह कहेंगे कि अगर प्रान्त में भूमि कम और लोग ज्यादा हैं तो इस प्रान्त के लोग उस प्रान्त में जाकर बस सकते हैं। इसी तरह इस देश के दूसरे देश में भी बस सकें। आखिर तमाम पृथ्वीमाता पूर्ण मुक्त है। जो जहाँ रहना चाहे, रह सके, जो जहाँ सेवा करना चाहे, कर सके। इस तरह हम दुनिया के नागरिक बनना चाहते हैं। और आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक भेद रखना नहीं चाहते। जमीन कम हो या बहुत, परमेश्वर की देन है। हम उसके मालिक नहीं बन सकते। हिन्दुस्तान के लोग हिन्दुस्तान के मालिक, जर्मनी के लोग जर्मनी के मालिक, यह विचार ही गलत है। जितनी सारी हवा है, जितना सारा पानी है, जितनी सारी रोशनी है और जितनी सारी धरती है, वह सारी की सारी सबकी है। यही हमारे साम्ययोग की व्यापक दृष्टि है।

पारसात
१४-८-'५१

हमारा देश बड़ा है। लेकिन वह यों ही बड़ा नहीं बना इसके पीछे महान् सम्यता और संस्कृति पड़ी है। बहुत दीर्घ प्रयत्न हुआ है और उसीके परिणामस्वरूप यह देश बड़ा बना है। उस प्राचीन सम्यता का सन्देश देश के इस सिरे से उस सिरे तक पहुँचाया जा चुका है। उन दिनों जब कि आज की तरह संदेश पहुँचाने के बड़े बड़े साधन मौजूद नहीं थे पैदल ही-पैदल घूम और गाँव-गाँव घर घर जाकर जबान से सन्देश पहुँचाना पड़ता था सर्वत्र विचार से स्फूर्ति निर्माण हुई देश के कोने कोने में विचार का पहुँचा।

उत्तर और दक्षिण का मिलन

एक जमाना था जब कि उत्तर और दक्षिण भारत में उतना सम्बन्ध नहीं था जितना आज है। उत्तर में बुद्ध, महावीर पैदा हुए और उनका संदेश दक्षिण भारत तक पहुँचा। बुद्ध और महावीर प्रचार करते गये, परिणामस्वरूप दक्षिण और उत्तर भारत एक बन गया। उनके जमाने के पहले यह सन्देश वैदिकों ने अपने ढंग से फैलाया पर उसे व्यापक स्वरूप देने का काम बुद्ध और महावीर ने किया। वैदिक विचार धारा उत्तर भारत से निकली और दक्षिण में रामेश्वर में जाकर मिल गयी। उसके बाद विचार की दूसरी लहर दक्षिण से निकली और उत्तर में आने लगी। शंकराचार्य रामानुज, माधव आदि प्रचारक निकले और उन्होंने जो सन्देश उत्तर से दक्षिण पहुँचा था, उसमें अपनी विशेषता डाल और वृद्धि कर वापस उत्तर भारत में पहुँचा दिया। दक्षिण में आत्मज्ञान का जो विचार गया दक्षिणवालों ने उसमें भक्ति की वृद्धि की और भक्ति के साथ साथ उसे उत्तर भारत में वापस पहुँचा दिया। परिणामस्वरूप उत्तर और दक्षिण भारत वैचारिक दृष्टि से एक राष्ट्र बना। वैसे तो यहाँ अनेक प्रान्तों में अनेक राज्य थे, लेकिन कश्मीर से कन्याकुमारी तक विचार का राज्य एक ही बना

और लोगों को उससे प्रेरणा मिली। काशी के लोग गंगा का पानी लेकर दक्षिण जाते और रामेश्वर में भगवान् के मस्तक पर अभिषेक करते। उधर दक्षिण के लोग समुद्र का पानी लेकर उत्तर आते और काशी के विश्वनाथ पर अभिषेक करते। बुद्ध और महावीर ने गंगा का पानी दक्षिण भारत तक पहुँचाया। इस तरह दक्षिण भारत में अत्यन्त ज्ञानवान्, भक्तिमान् आचार्य, सन्त पुरुष निकले और उन्होंने सारे भारत में भक्ति-मार्ग फैलाया।

हमारी प्राचीन एकता

कुछ लोगों का खयाल है कि अंग्रेजों ने इस देश को एकता प्रदान की, पर यह गलत है। अंग्रेजों की कोशिश तो यही रही कि इस देश के जितने टुकड़े हो सकें उतने किये जायें। परिणामस्वरूप आप देख रहे हैं कि पाकिस्तान अलग हुआ, ब्रह्मदेश (बर्मा) भी अलग हुआ और लंका भी अलग हो गया। वास्तव में भारत की एकता यहाँ के बुनियादी विचार पर स्थिर हुई है। अंग्रेजों और दूसरे देशों के इतिहासकारों ने भी यह मान लिया कि सारा हिन्दुस्तान एक है। यही कारण है कि पहले जो मराठों और राजपूतों के बीच जो लड़ाइयाँ हुईं वे इतिहास में गृह-युद्ध (सिविल वार) कही गयीं। ऐसी ही लड़ाइयाँ यूरोप में होती हैं, पर वे 'सिविल वार' नहीं मानी जातीं। हिन्दुस्तान के नक्शे से देखा जाय तो वे सिविल वार ही थीं फिर भी वे राष्ट्रीय मानी गयीं। सारांश, अंग्रेजों के यहाँ आने के पहले ही समूचा हिन्दुस्तान एक हो चुका था। उत्तर हिन्दुस्तान से दक्षिण हिन्दुस्तान तक परस्पर विचारों की लेन-देन हुई। इस तरह यात्रा ही विद्याध्ययन और विचार-प्रचार के बल हिन्दुस्तान एक हुआ है।

विज्ञान से विश्वव्यापी विचार-प्रचार

अब मौका आया है कि विचार के ये आन्दोलन एक देश तक ही सीमित नहीं रह सकते, बल्कि पूरब से पश्चिम और पश्चिम से पूरब बहने लगेंगे। जैसे यहाँ उत्तर से दक्षिण और दक्षिण से उत्तर विचार गये, वैसे ही विज्ञान ने यह सम्भव बना दिया है कि अब सारी दुनिया के विचार हिन्दुस्तान में आयेंगे और हिन्दुस्तान के

सारे देशों में जायेंगे। विज्ञान जब से आया तब से देशव्यापी आन्दोलन के बजाय विश्वव्यापी आन्दोलन होने लगे हैं। पूरब के देश विज्ञानहीन थे और पश्चिम में विज्ञान शुरू हो गया था। वहाँ से वह यहाँ पहुँच गया। तब लाजिमी था कि विज्ञान-विहीन विज्ञानवालों के वश हो जायें। जैसे उत्तर भारत से आत्म-ज्ञान दक्षिण पहुँचा तो दक्षिण भारत उत्तर भारत के वश हो गया और दक्षिण भारत से भक्ति-मार्ग उत्तर भारत पहुँचा तो उत्तर दक्षिण भारत के वश हो गया। उसी तरह अब विज्ञान का प्रचार पश्चिम में होकर वह वहाँ से बढ़ता हुआ पूरब में आया तो पूरब के राष्ट्र उनके वश हो गये। यह कोई दुःखद घटना नहीं। इस तरह एक देश का दूसरे देश पर जो आक्रमण हुआ उसे हम दूर दृष्टि से देखते हैं और इसीलिए उसे दुःखद नहीं मानते, यद्यपि उसमें तात्कालिक दुःखद बातें हुई हैं।

सामूहिक अहिंसा का निर्माण

हिन्दुस्तान की आध्यात्मिक संस्कृति पर ज्यों ही पश्चिम के विज्ञान का रंग चढ़ा त्यों ही उसमें एक नया विचार निर्माण हुआ जिसे हम 'सामूहिक अहिंसा' कहते हैं। यह हिन्दुस्तान के आध्यात्मिक विचार और पश्चिम के विज्ञान के संयोग से हुआ है। जहाँ आत्मा के ध्यान होते हैं, वहाँ हमारे जीवन में न्यूनाधिक प्रमाण में अहिंसा आ ही जाती है। फिर भी वह सामूहिक नहीं हो पाती थी, क्योंकि विज्ञान के कारण आज मानव-समाज एक-दूसरे से जितना सम्बद्ध हो गया है, उतना उस जमाने में नहीं हुआ। इसलिए अहिंसा के जो भी प्रयोग होते व्यक्ति-व्यक्ति के बीच ही होते। किन्तु आज जो सम्पर्क होते हैं वे केवल व्यक्तियों के बीच के नहीं रहते, बल्कि सामाजिक हो जाते हैं। एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र के साथ तथा एक समाज का दूसरे समाज के साथ सम्पर्क और संघर्ष हुआ करता है।

अतएव पश्चिम के विज्ञान और हिन्दुस्तान के अध्यात्म के संयोग से सामूहिक अहिंसा का आविष्कार हुआ और हमने अहिंसा से स्वराज्य प्राप्त किया। अब पूरब की बारी आयी कि वह पश्चिम को सामूहिक अहिंसा का विचार पहुँचाये। मनु ने कहा है

> एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
> स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

'हिन्दुस्तान के श्रेष्ठ वर्णों से पृथिवी के समस्त मानवों को चरित्र की शिक्षा मिलेगी' यह जो मनु की भविष्यवाणी थी वह महात्मा गांधी के आ जाने से सफल हो गयी है। हम महात्मा गांधी को व्यक्ति नहीं विचार के प्रतिनिधि मानते हैं। जो विचार किसी जमाने में समाज के लिए अत्यन्त जरूरी होता है, उसका प्रचार करने के लिए जो निमित्तमात्र पुरुष होते हैं वे पुरुष नहीं नीतिमान् विचारक होते हैं। पश्चिम में पहले कई महान् वैज्ञानिक पैदा हुए। न्यूटन से पर्याप्त तक वैज्ञानिकों की एक बड़ी भारी परम्परा ही चली थी। जैसे प्राचीन काल में सन्तों की परम्परा चली, वैसे ही आधुनिक काल में वैज्ञानिक महापुरुषों की परम्परा चली।

विज्ञान से संस्कृति और विकृति का निर्माण

प्रकृति से संस्कृति और विकृति निर्मित होती है। विकृति निर्मित होती है, तो बुरे काम होते हैं और संस्कृति बनती है, तो अच्छे काम होते हैं। प्रकृति वैज्ञानिकों के हाथ में थी और इसी कारण कई अच्छे काम हुए। क्या कोढ़ियों की सेवा करना वैज्ञानिक युग के पहले हम सोच सकते थे? पर ईसाइयों ने वह काम भी उठाया। यह विज्ञान का ही परिणाम है। ईसाई लोग हिन्दुस्तान, चीन, जापान, अफ्रीका गये और जगह-जगह उन्होंने विज्ञान के आधार पर कितने ही सेवा-कार्य किये, जिसका गुणगान हमें करना ही पड़ेगा। यह विज्ञान के जरिये संस्कृति का जो प्रदर्शन हुआ, उसीका परिणाम है। राजा-महाराजा और वीर पुरुषों द्वारा जहाँ विज्ञान का प्रचार हुआ, वहीं उनके द्वारा दूसरे देशों पर आक्रमण करना, उन्हें गुलाम बनाना आदि बुरे काम भी हुए। ये सब विज्ञान की विकृति मानी जायगी। मूल प्रकृति में से कुछ संस्कृति, तो कुछ विकृति पैदा होती ही है और यही सब संस्कृति का पुण्य और दुष्कृत का पाप पुरुष हो जाता है। आप देखेंगे कि हिन्दुस्तान में पश्चिम से जो सद्विचार पहुँचे, उनके साथ कई जुल्म भी हुए। विज्ञान का भी यही हाल हुआ।

परमेश्वर की इच्छा से भूदान-यज्ञ

जो स्वप्न हिन्दुस्तान में व्यापक तौर पर उपस्थित हुआ, वही आज निश्चयात्मक तौर पर होने जा रहा है। पश्चिम को पूरब से आध्यात्मिक अहिंसा का विचार

आने का आरम्भ तो हमारे अहिंसा से स्वराज्य प्राप्त करने से ही हो गया है। भूदान-यज्ञ में कंगाल भी दान दे रहे हैं। यह विनोबा का पुण्य नहीं, एक महान् विचार है, जो विज्ञान के कारण पैदा हुआ है। इसे हम ईश्वरीय इच्छा ही मानते हैं। भोग-परायण और लोभी लोग हजारों की तादाद में त्याग का सन्देश सुनने आते हैं। इसके माने यह है कि परमात्मा ही चेतन को जड़ और जड़ को चेतन कर रहा है और इसका स्पष्ट दर्शन विनोबा को हो रहा है।

दो साल पहले २ अक्तूबर को, जब हमारा निवास सागर में था, केवल ९ हजार एकड़ जमीन मिली थी। उसी दिन मैंने पहले-पहल जाहिर किया था कि हमें पाँच करोड़ एकड़ जमीन हासिल करनी है। आज दो साल के बाद आप देखते हैं कि नौ हजार से बीस लाख बन गये, याने सौगुना वृद्धि हो गयी है। उन दिनों लोग गणित करते और कहते कि 'इस तरह तो इसे पूरा होने में पाँच सौ साल लगेंगे।' किन्तु अब वे ही हिसाब लगायें तो कहेंगे कि पाँच सौ साल में नहीं पाँच साल में यह हो जायगा। जो गणित पहले पाँच सौ साल की बात करता था और आज पाँच साल की बात करता है यह सारा-का सारा गलत है। वह मानवीय गणित है और यह जो काम हो रहा है वह ईश्वरीय गणित का है। इसमें आप देखेंगे कि कंजूस के जरिये बड़े बड़े त्याग होंगे और डरपोक के जरिये हिम्मत के काम होंगे क्योंकि परमेश्वर जड़ को भी चेतन बना देता है।

आत्मज्ञान और विज्ञान मिलकर जो परिणाम हुआ हिन्दुस्तान के जरिये उसका प्रकाश सारी दुनिया में पहुँचे, यह परमेश्वर सोच चुका है। नहीं तो कौन थे पंडित नेहरू, जिनकी आवाज कोरिया की शान्ति के लिए पहुँच जाती और वहाँ शान्ति हो जाती। परमेश्वर ने ही हमें अहिंसा से आजादी दिलायी, कमजोरों को बलवान् और अहिंसक बनाया। चाहे यह नाटक के लिए ही क्यों न हो पर बने तो सही। जिनके मन में डर था वे भी खादी का प्रचार करने और जहाँ स्त्रियाँ परदे के बाहर नहीं आती थीं वहीं से शराब की पिकेटिंग के लिए दूकानों पर भी जा पहुँचीं। इस तरह के दृश्य दीख पड़े। यह हिन्दुस्तान की अपनी ताकत नहीं परमेश्वर की ही इच्छा रही। यह भूदान-यज्ञ भी ईश्वरीय कार्य है।

परमेश्वर की लीला

कम्युनिस्ट हमसे पूछते हैं कि 'क्या आप विश्वास रखते हैं कि इतिहास में जो कल्पना नहीं हुई वह होगी ?' हम कहते हैं कि जरूर होगी, इसलिए कि वह इसके पहले कभी नहीं हुई है। हम आपको निश्चित रूप से कहते हैं कि विनोबा मरनेवाला है क्योंकि वह आज तक नहीं मरा। जो घटना इतिहास में नहीं होती उसे करना ही पड़ता है। इसीलिए परमेश्वर नये-नये मनुष्यों का निर्माण और उनसे वह काम करवाता है। जब तक ईश्वर है तभी तक यह दुनिया है। और तब तक नित्य नये काम तथा उन्हें सम्पन्न करनेवाली पीढ़ियाँ निर्मित होती ही रहेंगी। आपने रामायण तो सुनी ही होगी। आखिर राम के पास कौन-से शस्त्र थे ? बन्दरों और भालुओं ने ही तो रावण का काम तमाम कर दिया ! इसीके आधार पर हम कहते हैं कि हमारा यह काम आप सबके द्वारा होकर रहेगा। आप सब मानव नहीं, यह काम करने के लिए वानर रूप में देवता ही प्रकट हुए हैं। यही कारण है कि जब लोग हमसे पूछते हैं कि क्या आप समझते हैं कि इस तरह का काम आपसे होगा ? तो हम कहते हैं : 'भाइयो, यह काम हम नहीं कर रहे हैं, हमारी कोई ताकत नहीं, हमारी कोई हस्ती नहीं। यह काम तो परमेश्वर कर रहा है।

करूँगा या मरूँगा

हमने प्रतिज्ञा कर ली है कि 'हम बिहार का मसला हल करके छोड़ेंगे, नहीं तो यहीं हमारी देह खत्म हो जायगी।' यह संकल्प करने में हमें कोई हिचकिचाहट नहीं हुई। हम समझते हैं कि यह संकल्प आप सबके जरिये पूर्ण होगा।

लोग पूछते हैं : 'बाबा, आपने इसके लिए कौन-सा संगठन किया है।' मेरे बाबा की शक्ति संगठन की नहीं है, संगठन न करवाना ही बाबा की शक्ति है। अगर हमारा अपना कोई संगठन होता, तो कांग्रेस बाबा के पीछे पागल होकर न घूमती। पर वह समझती है कि इसमें कोई संगठन नहीं है। आज तो बाबा निकल पड़ा है, इसका किसी राजनैतिक पार्टी के साथ सम्बन्ध नहीं है।

आपको समझना चाहिए कि मेरा केवल राजनैतिक पार्टी से सम्बन्ध नहीं

ऐसी बात नहीं बल्कि किसी धार्मिक संस्था से भी सम्बन्ध नहीं है। यहाँ तक कि म [illegible]-सम्प्रदाय की लिस्ट (सूची) में भी जो हमारा कहलाता है, मेरा नाम नहीं है। मैं तो मनुष्य के नाते परमेश्वर का बन्दा इस काम में लगा हूँ। अगर आपका सहयोग न मिला तो कुछ भी न होगा।

एकता की कीमिया

कहते हैं कि वशिष्ठ के आश्रम में शेर-बकरी एक झरने पर एक साथ पानी पीते थे। इसी तरह इस भूदान-यज्ञ का ही परिणाम है कि भिन्न भिन्न पक्षवाले एक साथ काम करने लगे हैं। तमिलनाड में जयप्रकाश और वहाँ की कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष श्री कामराज नादर १५ दिन एक साथ घूमे और एक ही प्लेटफार्म पर बोले। उनको इस भूदान यज्ञ ने एक साथ पानी पिलाया। हमारे काम की खूबी ही यह है कि हम शेर को अहिंसा और गाय को शौर्य सिखाना चाहते हैं। एक साथ रखने की यह कीमिया, यह शक्ति इस काम में है। इसीलिए हमने कहा कि यह 'युग धर्म' काम कर रहा है। मैं इस बारे में भविष्य का इतना स्पष्ट दर्शन पा रहा हूँ जितना कि आपके चेहरे स्पष्ट देख रहा हूँ। पश्चिम से विज्ञान आया और अब पूरब से सामूहिक अहिंसा बनकर वहाँ जायगी इसमें मुझे कोई शक नहीं, चाहे इसमें सैकड़ों वर्ष ही क्यों न लग जायें।

हम भगवान् के औजार बनें

हमें तो भगवान् के इस महान् काम का औजार बनना है। आखिर हमारा राष्ट्रीय गीत बनानेवाला कौन था? वह एक सामान्य ही व्यक्ति है। वे भजन में कोई प्रतिभा महसूस नहीं करते। लेकिन एक सामान्य व्यक्ति को भगवान् ने निमित्त बनाया और उसके जरिये उस राष्ट्र गीत में, "विश्व विजय करके दिखलावें तब होवे प्रण पूर्ण हमारा" इतने महान् शब्द कहलवाये। आखिर 'विश्व-विजय' का अर्थ क्या है? दूसरों को गुलाम बनाना हमारा उद्देश्य नहीं है। प्राचीन में हमारे बड़े-बड़े साम्राज्य और बलशाली सेनाएँ रहीं, तब भी हमने दूसरे देशों पर आक्रमण नहीं किया यह इतिहास कहता रहा है। तब विश्व-विजय का अर्थ यही

होगा कि हमारे विचार दुनिया में फैलें, हमारे सद्भाव, हमारी शुभ कामनाएँ सतत फैलें तभी हमारा प्रण पूर्ण होगा—हमें नया स्वराज हासिल होगा।

मऊपतपुर
८-१०-५१

युग के प्रधान गुण : निर्भयता, ममता और समाज-निष्ठा : ३५ :

विचार का प्रचार तब होता है, जब मनुष्य उस पर आचरण करता है। जब आदमी आचरण की कसौटी पर विचार कस लेता है, तब वाणी भी तदाकार निर्विकार होती है और आचरण द्वारा ही वह फैलता है। इसलिए बचपन में, जब से मैंने सार्वजनिक सेवा-कार्य अपनाया तभी से करीब बत्तीस साल चिन्तन करता और विचारों को आचरण की कसौटी पर कसता रहा। अब भी मेरा वही काम जारी रहता अगर आज बापू होते। किन्तु उनके अभाव में मुझे निकलना पड़ा और अनुभव से जिन विचारों पर निष्ठा बैठी, जिन विचारों को परख लिया उनका प्रचार करता रहता हूँ। भूदान-यज्ञ का तो एकमात्र बहाना है। यह तो इस जमाने की समस्या है, युग-धर्म है। उसे हाथ में लेकर अगर विचार का संशोधन करते हैं, तभी वह हृदय की गहराई तक पहुँचता है। किन्तु अगर युगधर्म से भिन्न विचार-संशोधन करते हैं, तो वह पोथी की प्रयोगशाला हो सकती है। अवश्य ही उसमें से कुछ गूढ़ विचार निकल सकते हैं, पर पोथी की प्रयोगशाला के विचार संशोधन से एक खास कमेटी उस विचार का तत्काल समाज में फैलाव न हो सकेगा। समाज में प्रचार तो उसी विचार का होगा जो प्रयोगशाला में परखा हुआ और जमाने की माँग के अनुसार भी होगा। मतलब, विचार काम साधक होना चाहिए। ऐसे कार्य-साधक विचार जब दुनिया के सामने रखे जाते हैं तो रखने के लिए जो निमित्तमात्र बन जाता है, उसकी कोई कीमत नहीं है।

ऐसा ही विचार लोगों को सहज में प्राप्त हो जाता है। जैसे गर्मी में तपी हुई जमीन बारिश की राह देखती है और बारिश होते ही उसे चूस लेती है, वैसे ही

युग-समानुसार युगप्रवर्तक कार्यसाधक विचार रखने पर जो लोग चिन्ताशील नहीं होते, वे भी उसे सुनने के लिए उत्सुक होते हैं। आज हिन्दुस्तान में चारों ओर यही सुनाई देता है कि 'हमारा नैतिक स्तर गिर रहा है।' लोग वासना में गिर रहे हैं। इस तरह की निन्दा परनिन्दा नहीं आत्मनिन्दा हो जाती है। किन्तु इस तरह अपने को आत्मसाधक माननेवाला समाज भी त्याग का संदेश सुनने के लिए उत्सुक रहता है। लोग हजारों की तादाद में त्याग का सन्देश सुनने के लिए आते और उसे शान्ति से सुनते हैं। जैसे कोई प्यासा एकाग्र होकर पानी पीता है वैसे ही भोगी लोग एकाग्र होकर त्याग का सन्देश सुनते हैं, क्योंकि उसके बिना उनकी प्रगति ही रुक गयी है। अब भोगी भी समझ गये कि भोग नहीं होगा, अब उसके साथ-साथ त्याग चलेगा। इसीलिए मुझ जैसा त्यागी त्याग का सन्देश सुनाने आता है तो लोग उसका सत्कार मानते हैं।

हम आत्मा हैं

सारा मानव-समाज अनादिकाल से अनन्त विकास कर रहा है। वह युग के अनुसार अपने एक-एक गुण का चिन्तन और विकास करता आया है। आत्मा में असंख्य गुण हैं। यदि तारिकाओं की गिनती कर सकें या मिट्टी के कणों का हिसाब लगा सकें तो आत्मा के गुणों की गिनती कर सकेंगे। ऐसे अनन्त गुणों से भरित आत्मा हमसे अलग नहीं है। वह हमारे अत्यन्त निकट है। अनुभवी लोगों ने कहा है कि हम आत्मा ही हैं, फिर उसके निकट होने का सवाल ही नहीं उठता। शरीर, मन या इन्द्रियाँ हमसे दूर पड़ती हैं। शरीर कमजोर होता है तो मनुष्य समझता है कि वह कमजोर हो गया है। सच है कि शरीर की कमजोरी पहचाननेवाला स्वयं कमजोर नहीं है, वह उससे अलग है। जैसे घर कमजोर हुआ, वह घर नहीं पहचानता, उसे पहचाननेवाला घर से अलग है, वैसे ही हम शरीर, मन और बुद्धि से अलग हैं।

यह तो हम सब को भासता पाते हैं और ज्ञान का अनुभव करते हैं, लेकिन यही तो नहीं है। सोचने की बात है कि इच्छा रखनेवाला कौन है और यह सब देखनेवाला कौन है? अन्दर की इच्छाओं ने

नहीं माना और नींद न आने दी। इसीलिए कहना पड़ता है कि आत्मा कुछ है, जो बुद्धि और मन से अलग है। अगर वह मन या बुद्धि होता और नींद चाहता तो फौरन नींद आ जाती, किन्तु मैं नींद चाहनेवाला हूँ और नींद न चाहनेवाली बुद्धि मुझसे अलग है। अतः स्पष्ट है कि मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ हमसे अलग हैं, पर आत्मा अलग नहीं।

हर युग में भिन्न-भिन्न गुणों की प्रधानता

आप देखते हैं कि पूर्णिमा के दिन चन्द्र पूर्ण होता है, अष्टमी को आधा और द्वितीया को कोर मात्र होता है। हर रात का अलग अलग चन्द्र होता है। हरएक चन्द्र की अपनी-अपनी विशेषता होती है और वह अपनी-अपनी ओर ध्यान खींच लेता है। इसी तरह आत्मा के अनन्त गुणों में एक-एक गुण एक एक जमाने को अपनी अपनी ओर खींचता है और समाज उस पर अमल करके चलता है।

एक जमाना था, जब लोगों ने सत्यव्रत का धर्म समझा। सत्यव्रत को परमगुण माना और उसका प्रयोग करना चाहा। एक समय ऐसा था, जब लोगों ने काम नियमन की कोशिश की और विवाह संस्था बनायी। उस जमाने में सारे मानव समाज में यही बात चली कि विवाह-संस्था कैसी हो। हिन्दू धर्म में विवाह की आठ विधियाँ सुनते हैं, आखिर उनमें से एक विधि कायम हुई। याने समाज को काम नियमन की आवश्यकता महसूस हुई और उस ओर समाज ने ध्यान दिया। प्राचीन इतिहास में सुनते हैं कि एक राजा दूसरे राजा की रानी को भगा ले जाता था। किन्तु आज ऐसा नहीं सुनते। याने हमने कुछ काम नियमन सीख लिया। इसके मानी यह नहीं कि हम पूर्ण कामविरक्त हो गये, पर कुछ काम जरूर हो गया है, उसकी बुद्धि जम गयी है। पुराने महाकाव्यों में भी द्रौपदी का हरण जैसा विषय मध्यबिन्दु रहता था पर आज वैसी इच्छा हमें नहीं होती।

इस युग के तीन गुण

इस तरह समाज ने सत्यव्रत और काम नियमन की कोशिश की और कुछ अच्छी बुरी रूढ़ियाँ बन गयीं। हम पीछे कह ही आये हैं कि आत्मा के एक-एक

गुण की महिमा एक-एक समझने में होती है। एक-एक गुण का नाम लेंगे, तो वह आदरणीय तो होगा ही क्योंकि गुण आदरणीय ही होते हैं पर समाज जिस गुण पर अमल करने को उत्सुक रहता है वही उस युग का धर्म कहलाता है। जहाँ तक मेरा अध्ययन है मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि आज तीन गुणों की आवश्यकता है (१) निर्भयता (२) समता और (३) स्वाव-लम्ब्य। मानव को आज इन्हीं तीन गुणों की बहुत आवश्यकता प्रतीत होती है। उसकी जितनी भी कोशिश होती है, सब इन्हींके लिए होती है।

निर्भयता शस्त्रों पर निर्भर नहीं

आज अणु बम के निर्माण से संसार के सभी लोग डरने लगे हैं। सारे राष्ट्र के-राष्ट्र डरते हैं। अमेरिका इतना सम्पन्न देश है उसकी बराबरी का शायद ही कोई दूसरा देश हो पर समूचे अमेरिका को रूस का डर है। सारे समाज पर एक डर छाया हुआ है। इसी तरह रूस को अमेरिका का डर है तो पाकिस्तान को हिन्दुस्तान का डर है। इस प्रकार न केवल एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति का डर है, बल्कि समाज के समाज एक-दूसरे से डरते और संहार साधनों की खोज करते हैं। वे निर्भय बनने का प्रयत्न कर रहे हैं। एक बार किसी ने मुझसे पूछा कि अगर हम अपने हाथ में लाठी रखें तो आपका क्या मत है? मैंने कहा "अगर शस्त्र हाथ में रखकर डर कम होता है तो बावजूद इसके कि मैं शस्त्र में विश्वास नहीं रखता, कहूँगा कि अवश्य शस्त्र रख सकते हो।

कहा जाता है कि "हिन्दुस्तान जैसे पूरे राष्ट्र को अंग्रेजों ने निःशस्त्र बनाया। नतीजा यह हुआ कि हिन्दुस्तानियों के मन में डर छा गया।' किन्तु अगर शस्त्र न रखने से डर आता है तो अमेरिका में डर क्यों है? सारा अमेरिका आधुनिक सम्पन्न शस्त्रों से पूरी तरह सुसज्जित है, फिर भी वह डर रहा है। याने डर तो मन में रहता है फिर हाथ में शस्त्र रखें तो भी वह अपने नहीं दूसरे के ही काम आयेगा। एक मनुष्य बन्दूक लेकर सोया था। रात में चोर आये। वह इतना डर गया कि कुछ बोल ही न पाया। वह 'चोर आया' कहने के बजाय बन्दूक बन्दूक चिल्लाने लगा। चोर ने उसकी बन्दूक ले ली शस्त्र का फायदा कम नहीं हुआ।

लाठी या बन्दूक रखने से थोड़ी देर के लिए शान्ति मालूम होगी। लेकिन अगर दूसरे ने उससे लम्बी लाठी रखी तो फिर डर लगेगा। लोग शेर को बहादुर मानते हैं और बिल्ली को डरपोक। पर कुत्ते के सामने बिल्ली बहादुर बन जाती और बन्दूक के सामने शेर भी डरपोक बनता है। शेर की निर्भयता तो उसके नाखून और दाँत पर निर्भर है। इसी तरह जिसकी निर्भयता शस्त्रों पर निर्भर होगी वह पूर्ण निर्भय कभी नहीं बन सकता। हाँ कोशिश करता है निर्भय बनने की।

एक अमेरिकन भाई हमारे पास आये और पूछने लगे, 'आप अमेरिका के लिए क्या सलाह देते हैं।' मैंने कहा : 'मैं अमेरिका को क्या सलाह दूँ। मैं तो इतनी हिमाकत नहीं रखता। हाँ अपने देश के लिए कुछ सुझाव दे सकता हूँ। पर आप पूछते ही हैं तो कहता हूँ आप इतने शस्त्रास्त्र बनाते और कहते हैं कि लोगों को खूब काम मिलता है, बेकारी मिटती है। इसलिए मैं तो नहीं कहूँगा कि शस्त्र मत बनाइये। मैं अवश्य कहूँगा कि शस्त्र जोरों से बनाइये, ताकि सबको काम मिले। पर ध्यान रहे कि उधर बेकारी कम करने के लिए रूस भी शस्त्र बना रहा है। फिर दोनों की टक्कर होगी। नतीजा यह होगा कि उनके हवाई जहाज को आपके हवाई जहाज तोड़ेंगे और आपकी नौकाओं को उनकी नौकाएँ डुबायेंगी। इस तरह एक दूसरे के जहाज डुबोने के बजाय अपने-अपने देश में क्रिसमस के दिन खुद ही अपने जहाजों को डुबो दीजिये। इससे सबको काम भी मिलेगा और शान्ति भी रहेगी। हमारे जहाज ये डुबायें और उनके हम, यह परस्परावलम्बी जीवन क्यों!

ये जो शस्त्रास्त्र बढ़ रहे हैं उनसे मुझे कोई डर नहीं है। मैं तो कहता हूँ जितना बढ़ना हो बढ़ लो क्योंकि अगर आज की लड़ाइयाँ छोटी-छोटी होतीं तो अहिंसा को मौका ही न मिलता। अब तो विश्वयुद्ध चलेंगे। आगे मानव निर्भयता के लिए जो काम करेगा वह बेकार साबित होकर यह उसके ध्यान में आ जायगा कि मानव शस्त्रास्त्र से निर्भय नहीं बन सकता। तभी वह सब शस्त्रास्त्र त्याग कर निर्भय बनेगा।

प्राचीन राज्य शासन में एक महत्त्वपूर्ण शब्द मिलता है। राज्य में क्या

भेद होना चाहिए। यह कहते हुए यहाँ कहा गया है कि 'भारत में ज्यादा से ज्यादा उत्पादन होना चाहिए।' पर हर बार विवेक मालूम करें। हर बार समझें कि मुझ पर बाहर का असर नहीं हो, अनन्त और दुखी भी न हों, उस में एक है स्पष्ट है। मुझे पर का भार मालूम नहीं। जिस देश में निर्भयता नहीं, वहाँ मालूम है ऐसा कहा जायगा।

चेतन के लिए समस्याएँ आवश्यक

एक ज़माना था जब कि यहाँ 'आदमी का राज्य' कहा जाता था। जब ईश्वरी का राज्य कहा जाने लगा। पर ईश्वराज्य में तब होगा जब हर बार कहेगा कि मेरा राज्य है। दुनिया इस चलती भी है। आज दुनिया बनाने की चर्चा लगी व्यक्तियों को जा रही है, व उसे निर्भय बनाने के लिए हो रही है। जिस दिन दुनिया निर्भय बनेगी, उसी दिन उसे समाधान मिलेगा और समस्याएँ मिटेंगी। किन्तु एक समस्या मिटेगी तो दूसरी शुरू होगी। पर कभी नहीं होगा कि एक ज़माने में शान्ति होने से सदा के लिए शान्ति हो जायगी। परमेश्वर की यही इच्छा है कि मानव-समाज सदा विकासशील रहे। इसीलिए नयी नयी समस्याएँ मानव के सामने खड़ी होंगी और उन सबके आन्दोलन करने पड़ते हैं। नयी नयी समस्याएँ खड़ी होना यही मानव की चेतना का लक्षण है। अगर सारी की सारी समस्याएँ खतम हो जायँ, तो समझ लें कि मानव जड़ बन जायगा। जड़ पत्थर के सामने कोई समस्या नहीं होती। पर मानव चेतन है, इसलिए उसके सामने नयी समस्याएँ रहेंगी। फिर भी इस ज़माने में निर्भयता आवश्यक है।

आज सबको समता की भूख है

दूसरा आवश्यक गुण है समता। एक ज़माने में अच्छी नीयत से ढाँचे बनाये गये थे। हरएक को अपनी अपनी लियाकत के अनुसार तालीम मिलने की व्यवस्था थी। यह देख आज हमें दुःख होता है, लगता है कि उस ज़माने में लोग ठीक सोचते नहीं थे। लेकिन बात ऐसी नहीं है। उस ज़माने में मानव

बुद्धि की योग्यता देखी गयी। वे सोचते थे मूर्ख को तालीम की आवश्यकता ही नहीं है। उसे काम में लगायेंगे, तो काम बन जायगा। अगर उसे बुद्धि के काम में लगायेंगे, तो वह काम नहीं होगा और मेहनत का काम भी नहीं होगा। इसीलिए कुछ के हाथ में राज्य का भार रखा गया तो कुछ के हाथ में सेवा की रखा। कुछ व्यापार करें तो कुछ मेहनत मजदूरी। तीन वर्णों की सेवा करना शूद्र का काम बना गया। आज हमें लगता है कि उनकी नीयत अच्छी नहीं थी पर वास्तव में ऐसी बात नहीं थी। किन्तु आगे चलकर विषमता बढ़ी। लोग समझने लगे कि वर्ण न बनें तो हरएक की मर्जी ही। जिस युग में विज्ञान नहीं था उस युग में वर्ण बनाने पड़े। पर जब से विज्ञान शुरू हुआ, तब से ध्यान में आया कि मनुष्य का दिमाग बराबर हो सकता है उसके लिए वर्ण बनाने की आवश्यकता नहीं।

इस जमाने का साधारण-से-साधारण मनुष्य भी स्वच्छता का ध्यान रखता है। हर कोई अच्छी स्वच्छता रखता ही है ऐसी बात नहीं है, फिर भी आज के जमाने का एक साधारण मनुष्य प्राचीन काल से अधिक स्वच्छता रखता है। उस जमाने में स्वच्छता के साधन आज जितने नहीं थे। वे लोग भी अक्सर स्नान शुद्ध करते थे पर आज ऐसी बात नहीं। आज स्वच्छता के साधन आसानी से प्राप्त होते हैं। पहले जमाने में भंगी का अलग मुहल्ला होता था और ब्राह्मण का अलग क्योंकि स्वच्छता के साधन सबके पास नहीं थे। पर आज विज्ञान बढ़ा है और वैसे भेदों की आवश्यकता नहीं रही। आज विज्ञान बढ़ जाने से जिन औषधियों का हमें ज्ञान है उनका उन्हें नहीं था। इस [illegible] के सामने दूसरी तालाबें थीं और हमारे सामने दूसरी।

[illegible] आपको दूसरी मिसाल दूँ। [illegible] लोगों ने [illegible]
[illegible] ही पढ़ें, उस दूसरे कोई [illegible] है।
[illegible] जमाने में 'प्रिंटिंग प्रेस' [illegible]
[illegible] उदाहरण नहीं [illegible]
[illegible] किया कि आज
[illegible] नहीं थी। पर आज
और हर कोई उसका पाठ क[illegible]

तो उसका रेकार्ड भी ले सकते और घर घर बैठे पठन हो सकता है। प्राचीन काल की वे मुश्किलें आज नहीं रहीं। इसलिए शिक्षण के लिए किसी तरह का प्रतिबंध न रखना चाहिए। पुराने जमाने को यह विनम्रता उस जमाने के लिए आवश्यक थी पर आज विज्ञान के युग मे इसे रखने की जरूरत नहीं है। आज सबको समता की भूख है। जो समता के विरुद्ध बोलता है, वह समाज को अच्छा नहीं लगता। समता लाने का कोई भी आन्दोलन होगा उससे लोगों में उत्साह आयेगा क्योंकि आज उसकी आवश्यकता है।

समाज निष्ठा जमाने की माँग है

तीसरा गुण समाज निष्ठा है। इसमें शक नहीं कि व्यक्तिगत विकास के लिए सुविधा होनी चाहिए और विज्ञान के कारण आज वह हो भी सकती है। प्राचीन काल मे गुरु मुश्किल से मिलते थे इसलिए सबको तालीम नहीं दे पाते थे। किन्तु आज तालीम देने के व्यापक साधन हमारे हाथ मे आ गये तो अब व्यक्तिगत विकास की चिन्ता नहीं रही। आज का व्यक्ति अपना विकास कर अपना विकसित व्यक्तित्व समाज को अर्पण करे, इतनी आवश्यकता है। एकान्त मे मनुष्य प्रार्थना करता है तो उसे प्रेरणा मिलती है यह सही है। किन्तु आज के जमाने मे सामूहिक प्रार्थना से जितनी प्रेरणा मिलती है उतनी व्यक्तिगत प्रार्थना से नहीं यद्यपि हृदय परीक्षण के लिए वह भी आवश्यक है।

एक जमाना ध्यान-योग का रहा। बीच में संत आये और उन्होंने कह दिया जहाँ अनेक लोग इकट्ठा होकर प्रार्थना करते हैं वहाँ परमेश्वर बसता है।

"नाहं वसामि वैकुण्ठे, योगिनां हृदये न हि।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥"

—वैष्णवों ने यह वचन प्रचारित कर सामूहिक भक्ति का प्रचार। वैष्णवों ने सामूहिक भाव से समाज निष्ठा की माँग का आरंभ किया। उसके पहले एकान्त-प्रार्थना का महत्त्व रहा। आज के जमाने में भी योगी पर्वतीय कन्दराओं में एक जगह बैठें और मन मे ऊपर उठने का प्रयत्न करते हैं। पर बीच में वैष्णवों

गुणों की योग्यता देखी गयी। वे सोचते थे, शूद्र को तालीम की आवश्यकता ही नहीं है। उसे काम में लगायेंगे, तो काम बन जायगा। अगर उसे बुद्धि के काम में लगायेंगे, तो वह काम नहीं होगा और मेहनत का काम भी नहीं होगा। इसीलिए क्षत्रिय के हाथ में राज्य का भार रखा गया तो शूद्र के हाथ में सेवा की रखा। वैश्य व्यापार करें, तो शूद्र मेहनत मजदूरी। तीन वर्णों की सेवा करना शूद्र का काम माना गया। आज हमें लगता है कि उनकी नीयत अच्छी नहीं थी पर वास्तव में ऐसी बात नहीं थी। किन्तु आगे चलकर निरसता बढ़ी। लोग समझने लगे कि योग्यताएँ तो हरएक की बपौती ही। जिस युग में विज्ञान नहीं था, उस युग में वर्ण बनाने पड़े। पर जब से विज्ञान शुरू हुआ, तब से ध्यान में आया कि मनुष्य का विकास व्यापक हो सकता है उसके लिए वर्ण बनाने की आवश्यकता नहीं।

इस जमाने का साधारण-से-साधारण मनुष्य भी स्वच्छता का भान रखता है। हर कोई उतनी स्वच्छता रखता ही है ऐसी बात नहीं है, फिर भी आज के जमाने का एक साधारण मनुष्य प्राचीन काल से अधिक स्वच्छता रखता है। उस जमाने में स्वच्छता के साधन आज जितने नहीं थे। वे लोग भी बराबर स्नान शुरू करते थे पर आज ऐसी बात नहीं। आज स्वच्छता के साधन आसानी से प्राप्त होते हैं। पहले जमाने में भंगी का अलग मुहल्ला होता था और ब्राह्मण का अलग क्योंकि स्वच्छता के साधन उनके पास नहीं थे। पर आज विज्ञान बढ़ा है और ऐसे भेदों की आवश्यकता नहीं रही। आज विज्ञान बढ़ जाने से जिन औषधियों का हमें ज्ञान है, उनका उन्हें नहीं था। इस तरह उनके सामने दूसरी समस्याएँ थीं और हमारे सामने दूसरी।

मैं आपको दूसरी मिसाल दूँ। पुराने लोगों ने यह नियम बनाया था कि वेद ब्राह्मण ही पढ़ें उसे दूसरे कोई नहीं पढ़ सकते। आखिर यह क्यों? इसलिए कि उस जमाने में 'प्रिंटिंग प्रेस' नहीं था। वेद कण्ठस्थ करना पड़ता था। तब तो उनका ठीक से उच्चारण नहीं कर सकते जिससे वेद बिगड़ सकते थे। इसीलिए उन्होंने ऐसा किया कि खास वर्ग के लोग ही वेद पढ़ें। इसमें उनकी नीयत खराब नहीं थी। पर आज हम प्रिंटिंग प्रेस में आये। उसमें वह शुद्ध छप सकता और हर कोई उसका पाठ कर सकता है। इतना ही नहीं, कोई सुन्दर पाठ करे,

तो उसका इलाज भी ले सकते और घर घर वेदपठन हो सकता है। प्राचीन काल की वे मुश्किलें आज नहीं रहीं। इसलिए शिक्षण के लिए किसी तरह का प्रतिबंध न रखना चाहिए। पुराने ज़माने की यह व्यवस्था उस ज़माने के लिए आवश्यक थी, पर आज विज्ञान के युग में इसे रखने की ज़रूरत नहीं है। आज सबको समता की भूख है। जो समता के खिलाफ बोलता है, वह समाज को पसन्द नहीं लगता। समता लाने का जो भी आन्दोलन होगा, उसके लोगों में उठाए जायेगा, क्योंकि आज उसकी आवश्यकता है।

समाज-निष्ठा ज़माने की माँग है

तीसरा गुण समाज-निष्ठा है। इसमें शक नहीं कि व्यक्तिगत विकास के लिए सहूलियत होनी चाहिए और विज्ञान के कारण आज वह हो भी सकती है। प्राचीन काल में गुरु मुश्किल से मिलते थे, इसलिए सबको तालीम नहीं दे पाते थे। किन्तु आज तालीम देने के व्यापक साधन हमारे हाथ में आ गये, तो अब व्यक्तिगत विकास की चिन्ता नहीं रही। आज हर व्यक्ति अपना विकास कर अपना विकसित व्यक्तित्व समाज को अर्पण करे, इसकी आवश्यकता है। एकान्त में मनुष्य प्रार्थना करता है, तो उसे प्रेरणा मिलती है, यह सच है। किन्तु आज के ज़माने में सामूहिक प्रार्थना से जितनी प्रेरणा मिलती है, उतनी व्यक्तिगत प्रार्थना से नहीं। इसलिए इस परिस्थिति के लिए यह भी आवश्यक है।

एक ज़माना ध्यान-योग का रहा। देश में मठ बने और उन्होंने कहा : मन एकाग्र करके हृदय के अन्दर साधना करो, वहाँ परमेश्वर बसता है।

> "नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
> मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥"

—वैष्णवों ने यह वचन प्रकट करके सामूहिक भक्ति का प्रचार किया। वैष्णवों ने सामूहिक रूप में नामस्मरण की माँग का आरम्भ किया। बाद में प्रार्थना का महत्त्व बढ़ा। आज के ज़माने में भी है। क्योंकि दुनिया में एक तरफ ... और मन में उत्तर पाने का चिन्तन करते हैं। यह दीप में वैष्णवों

ने सामूहिक सत्याग्रह शुरू कर दिया था। वे आधुनिक जमाने के पूर्वाचार्य थे। आज हमें ध्यान योग में उतना आकर्षण नहीं होता, जितना सामूहिक योग में होता है।

महात्मा गांधी ने सामूहिक अहिंसा का प्रयोग किया। जिस अहिंसा का प्रयोग बुद्ध और महावीर ने किया, उसे ही महात्मा गांधी ने सामूहिक रूप दिया। हम लोग ऊपर चढ़े। जहाँ योगी न उड़ सकते थे, वहाँ गरुड़ पक्षी ही नहीं, हम भी उड़ते हैं। पर जहाँ आँधी एक चली, वहाँ पत्ते गिर जाते और हमेशा उड़नेवाले पक्षी उड़ते रहते हैं। महात्मा गांधी के बाद हम सब सुस्त हो गये। पर अब यह भूदान आया और यह चल रहा है। हमें एक करोड़ दान पर मिले, पर कोई खास बात नहीं। इसका कारण यही है कि यह जमाने की माँग है। आज हम कहते हैं कि 'त्याग करो, लँगोटी पहनकर रहो' तो कोई तैयार नहीं होता। पर जब हम कहते हैं कि समाज के लिए त्याग करो, तो पूरी की-पूरी जमीन देनेवाले काश्तकार भी मिले हैं। छोटे-छोटे काश्तकार भी दे रहे हैं और राजा महाराजा भी काम में लगे हैं।

आप गाँव में जाकर समझायें कि गाँव की सारी जमीन गाँव की है, तो वे यह सुनने के लिए राजी हैं। यह आन्दोलन हिम्मत के साथ चलायें, तो कई गाँव पूरे-के-पूरे मिल सकते हैं। आपके यहाँ 'बेल्दा' गाँव मिला है और यू० पी० में 'मंगरोठ'। अगर आप यह बात ठीक समझा दें, तो कई गाँव आपके आयेंगे, क्योंकि आज समाज निष्ठा की माँग है और लोगों को 'समाज को जितना दे सकें, उतना देना चाहिए' इसकी भूख है। समाज की तरफ से माँग आती है तो उसे पूरी करने की इच्छा अवश्य होती है, भले ही मोह न छूटा हो। बिहार में जमीन माँगने की बात निकली, तो किसीने 'ना' नहीं कहा। सब कोई दे रहे हैं। इसके माने यह नहीं कि उनकी आत्मा इतनी ऊँची दशा पर पहुँच चुकी है। पर यहाँ जमीन की माँग आती है, समाज निष्ठा की बात आती है, वहाँ मनुष्य उसे कबूल करता है। उसमें उसे प्रेरणा मिलती है।

तीनों गुणों का विकास करें

मैंने जो ये तीन गुण बताये, उनका अगर विकास करें, तो आप मर मर

कर पायेंगे । हमें निर्भय बनना है । अगर कोई डरा-धमकाकर कुछ कराना चाहे, तो कोई न सुने । स्कूल में कोई लाठी लेकर पढ़ाना चाहे, तो लड़का उसे न माने । यह तो पुराने जमाने की बात हो गयी । हम आपसे कहना चाहते हैं कि अगर कोई डराकर आपसे जमीन लेना चाहे, तो हर्गिज मत दो । हम आपको निर्भय बनाना चाहते हैं ।

इसी तरह विषमता मिटनी चाहिए । भागलपुर में हमसे मिलने के लिए एक प्रोफेसर आये । वे कहने लगे कि 'हमारे यहाँ समता नहीं है । किसीको तनख्वाह कम तो किसीको ज्यादा है । हमने उनसे कहा कि 'सरकार समता नहीं रख सकती क्योंकि वह औसत होगी है । हम जो कहते हैं कि सभी कुटुंब इकट्ठा होकर रहें, इसका यह अर्थ नहीं कि सबका खाना पीना एक साथ बने । खाना पीना तो घर घर बनेगा, पर जितनी जमीन और संपत्ति है, उसे एक करना है । हम तो चाहते हैं कि पूरा गाँव एक होकर रहे । पर आज एकदम पूरा गाँव एक नहीं हो सकता, पर चार चार पाँच-पाँच कुटुंब मिलकर रह सकते हैं । वे खेती व्यापार एक साथ करने का प्रबन्ध आवश्य कर सकते हैं ।

व्यक्ति का मोक्ष इसीमें है कि वह समाज की सेवा में लीन हो । मोक्ष का अर्थ है व्यक्ति के अहंकार का मिटना । जहाँ अहंकार मिट जाता है, वहीं व्यक्ति समाज रूप, ब्रह्माण्ड-रूप हो जाता है । बस उसे मोक्ष मिल गया ।

मुंगेर
१०-१ -'५३

भूदान-यज्ञ की पूर्ति में हमने सम्पत्ति दान-यज्ञ और श्रम-दान यज्ञ चलाकर शुरू किये। सम्पत्ति दान के बिना भूदान-यज्ञ सफल नहीं हो सकता यह तो स्पष्ट ही है। किन्तु इसके सिवा सम्पत्तिदान-यज्ञ का अपना एक स्वतन्त्र कार्य है। न केवल भूदान-यज्ञ को सफल करने के लिए सम्पत्ति दान की जरूरत है बल्कि सम्पत्ति का समान विभाजन भी उसका एक महत्त्वपूर्ण निश्चित कार्य है। उस दृष्टि से उसकी जितनी छानबीन हो अच्छा है।

क्या संग्रह पाप है?

सम्पत्तिदान यज्ञ पर लिखते हुए दादा धर्माधिकारी ने सम्पत्ति के संग्रह को ही पाप बताया था। उस पर कलकत्ता के एक भाई ने शंका उठायी है। उनके कथन का सार यह है कि "वाणिज्य वैश्य का धर्म माना गया है। उसमें संग्रह तो जरूर होगा। उस संग्रह का उपयोग विश्वस्त वृत्ति के तौर पर करने की अपेक्षा रखना तो ठीक है पर उसे ही अधर्म या पाप कहना कहाँ तक उचित होगा?" अवश्य ही यह विचारने योग्य शंका है। पाप पुण्य की व्याख्या उत्तरोत्तर सूक्ष्म होती जाती है। आज जो धर्म मालूम पड़ता है, वही आगे की अवस्था में अधर्म हो जाता है। देश-काल भेद से भी व्याख्या बदलती है। इन सब व्याख्याओं को अगर छोड़ दें तो भी धर्माधर्म या पाप पुण्य सभी की विभिन्न व्याख्या संभव है। एक अन्तिम या परिशुद्ध व्याख्या के पेट में देश काल भेद से अनेकविध व्याख्याएँ शामिल होंगी। गणित एक परिनिष्ठित शास्त्र है। फिर भी उसमें शुद्ध गणित और व्यावहारिक गणित ऐसे दो प्रकार होते ही हैं। धर्म नियम को भी यही लागू है।

वाणिज्य-धर्म और संग्रह

गीता ने 'वाणिज्य' को वैश्य का धर्म बताया है लेकिन संग्रह को धर्म नहीं बताया। वाणिज्य में संग्रह होता है, यह तो प्रचलित समाज रचना का परिणाम

है। किन्तु हर हालत में वाणिज्य में संग्रह होना ही चाहिए, ऐसा नहीं मान सकते। इसका अर्थ यह हुआ कि वैश्य को भी अपरिग्रह की दृष्टि रखकर ही अपना कर्तव्य-धर्म निभाना है। वाणिज्य में अनैतिक उपायों को तो मंजूर कर ही नहीं सकते। यह नहीं कह सकते कि जिस किसी उपाय से धन हासिल कर उसका निरपेक्ष वृत्ति से विनियोग करो। जहाँ अनैतिक उपाय निषिद्ध हुए, वहीं संग्रह की एक मर्यादा आ गयी।

सूद का निषेध

जितने मान्य नैतिक उपाय हैं, उनकी भी मान्यता उत्तरोत्तर घटेगी और घटनी ही चाहिए। मिसाल के तौर पर सूद को व्यापार में आज मान्य किया गया है। आज की मान्यता के अनुसार इतना कह सकते हैं कि सूद अतिरिक्त नहीं लेना चाहिए। इस्लाम ने सूद का आत्यन्तिक निषेध किया है। समाज को कभी-न-कभी इसे मंजूर करना ही पड़ेगा। वह दिन जल्दी ही आना चाहिए और उसे जल्दी लाना चाहिए। अगर सूद का निषेध हो जाय, तो संग्रह की मात्रा काफी घट जायगी।

सूद न लेना चाहिए, इतना ही नहीं, किशोरलाल भाई ने तो लिखा था कि घटौती भी कबूल करनी चाहिए। याने हमारे पास रखे हुए पैसे का जहाँ हम तत्काल उपयोग नहीं कर पाते और दूसरा कोई कर रहा है, इसलिए हम अपना पैसा उसके हाथ में सौंप देते हैं, वहाँ कुछ मुद्दत के बाद जब वह पैसा हमें वापस देगा तो सोलह आने वापस देने की जिम्मेदारी उस पर न हो। अगर वह पन्द्रह आने वापस दे, तो आत्म-शुद्धि मान लेनी चाहिए। खासकर ग्रामोद्योग के कामों में याने ग्राम जनता के हित कार्यों में लगे पैसे में कम-बेशी घटौती मान्य करना धर्म होगा। अगर यह विचार मंजूर हुआ तो संग्रह की मात्रा और भी कम होगी।

न मुनाफा और न घाटा

फिर यह भी सोचना होगा कि क्या वाणिज्य एक कर्तव्य-धर्म है या मान्य उपायों से ही मुनाफे का एक साधन है? अगर वह कर्तव्य-धर्म है, तो उससे विशेष मुनाफा

न होना चाहिए और न ज्यादा ही होना चाहिए। अर्थात् सेवा-धर्मी वणिक् को अपना मेहनताना मात्र मिले। इससे तो अधिक मुनाफा अधर्म ही होगा। और अगर घाटा हुआ तो वह भी अधर्म होगा, क्योंकि उसमें असावधानी आदि दोष होंगे और घाटे का ग्राहक पर भी असर होगा। पर अधिक मुनाफे की तो आशा कर ही नहीं सकते। अगर यह विचार ध्यान में आ जाय तो न केवल संग्रह की मात्रा कम होगी बल्कि वह शून्यवत् हो जायगी। व्यावहारिक गणित में शून्य की भी कुछ कीमत होती है। वैसी ही उस मुनाफे की स्थिति होगी।

उत्पादक और वितरक का महत्त्व-मापन

वैश्य वर्ग का धर्म समझते हुए यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि वैश्यों में से अधिकतर लोग कृषि और गो-रक्षा में लगे होंगे, क्योंकि वही देश और समाज की सबसे प्राथमिक और व्यापक आवश्यकता है। वाणिज्य तो गौण वैश्य धर्म होगा, क्योंकि उत्पादन के बाद ही विनिमय हो सकता है। मुख्य कार्य उत्पादन का ही माना जायगा। फिर उत्पादन के इस प्रधान काम में लगे किसानों के मेहनताने से ज्यादा की अपेक्षा विनिमय रूप गौण वैश्य धर्म में लगे वणिक कैसे कर सकते हैं? बहुत हुआ तो गौण्य मुख्य भेद भुला के किसान की बराबरी में मेहनताना माँग सकते हैं। अगर स्वामी सेवक की परिभाषा मंजूर करें तो किसान स्वामी होने से वणिक् का मेहनताना ज्यादा कैसे हो सकेगा? अगर कोई यह कहे कि किसान से वणिक् को बुद्धि का अधिक उपयोग करना पड़ता है, इसलिए उसका अधिक मेहनताना होना चाहिए, तो पहले यह बात सिद्ध ही नहीं होगी। धान्य विनिमय में उत्पादन से ज्यादा बुद्धि लगती है, ऐसा निश्चय पूर्वक कह नहीं सकेंगे। और कह भी सकें तो अधिक बुद्धि के कारण पाचन-शक्ति घटती है यह जब तक सिद्ध न हो तब तक वणिक का अधिक मेहनताना मान्य नहीं होगा। हाँ 'बुद्धि के अधिक उपयोग से पाचन शक्ति मन्द होती है, इस लिए उत्तम आहार लेना पड़ता है, जो महँगा होता है' अगर यह दलील हो तो जहाँ वैसी हालत हो, वहाँ यह मान्य हो सकती है। वहाँ उतना अधिक मेहनताना लिया जा सकता है। लेकिन उसे 'मेहनताना' कहना भी गलत होगा। वह एक

दया धर्म होगा और मन्द पाचन शक्तिवाले हर व्यक्ति पर लागू होगा। वैसे व्यक्ति किसानों में भी हो सकते हैं।

यह सब सोचते हुए संग्रह को पाप कहने के सिवा चारा नहीं रहता। अपवाद तो यही मान्य करनी होगी। और इसलिए हिन्दू धर्म ने चार वर्ण और (हरएक वर्ण के चार आश्रम मिलाकर) सोलह अवस्थाओं में से सिर्फ एक अवस्था या वैश्य-गृहस्थ को मर्यादित संग्रह की अनुज्ञा दी है। इस संग्रह का अधिकार 'किसान वैश्य गृहस्थ' को जितना होगा, उससे अधिक 'वणिक् वैश्य-गृहस्थ' को होगा यह मानने का कोई कारण नहीं।

विश्वस्त वृत्ति सार्वकालीन धर्म

लेकिन आज की हालत में जब कि कई व्यवसाय केन्द्रित हैं अपरिग्रह धर्म की प्रतिष्ठापना के लिए एक कदम के तौर पर विश्वस्त वृत्ति (ट्रस्टीशिप) का विचार सामने आता है। केन्द्रित व्यवस्था में वैश्य गृहस्थ के लिए विश्वस्त वृत्ति एक विशेष धर्म हो जाता है। यहाँ पर कोई यह पूछेगा कि क्या विकेन्द्रित या स्वयंपूर्ण व्यवस्था में विश्वस्त वृत्ति की आवश्यकता समाप्त हो जायगी? नहीं वह समाप्त नहीं हो सकती लेकिन उसका स्वरूप बदल जायगा। भेद बुद्धि भेद शारीरिक-शक्ति भेद अधिकार भेद अनुभव आदि कारणों से विश्वस्त वृत्ति की आवश्यकता सदा और सतत रहेगी, बल्कि भिन्न-भिन्न समाजों और राष्ट्रों के बीच भी रहेगी और वह परस्परावलम्बी होगी। याने बाप बेटे के लिए विश्वस्त होगा और बेटा बाप के लिए विश्वस्त। गृहस्थ ब्रह्मचारी के लिए विश्वस्त होगा और ब्रह्मचारी गृहस्थ के लिए विश्वस्त। वैश्य क्षत्रिय के लिए विश्वस्त होगा और क्षत्रिय वैश्य के लिए विश्वस्त। सरकार जनता के लिए विश्वस्त होगी और जनता सरकार के लिए विश्वस्त। स्वदेश परदेश के लिए विश्वस्त होगा और परदेश स्वदेश के लिए विश्वस्त। याने विश्वस्त वृत्ति अन्तिम स्थिति में वृत्ति के आकार में उड़ जायगी और विश्वास-रूप गुण के आकार में रह जायगी।

बिहार में प्रवेश करते ही हमने घोषित कर दिया कि हम भगवान् बुद्ध के चरण चिह्नों पर चलने की ही कोशिश कर रहे हैं। जो धर्म-चक्र-प्रवर्तन उन्होंने शुरू किया उसीको इस जमाने के अनुसार आगे बढ़ाने का हमारा यह प्रयत्न है। भगवान् बुद्ध ने जो विचार दिया उसकी जरूरत इस जमाने में भी है और उससे इस जमाने का भी कल्याण होगा क्योंकि वह एक धर्म विचार है।

निर्वैरता की और अन्याय-प्रतिकार की परंपरा

उन्होंने कहा था कि 'आप शांत प्रयत्न कीजिये, कभी वैर से वैर की शांति हो ही नहीं सकती।' यही उनके धर्म विचार की मूल प्रेरणा है। यद्यपि यह प्रेरणा उनके भी पहले से यहाँ चली आ रही है, पर भगवान् बुद्ध की वाणी से वह विशेष रूप से इस देश भर में फैली और उस प्रेरणा के स्थान भगवान् बुद्ध बने। ढाई हजार साल से वे इस विचार मत की प्रेरणा शक्ति बनकर जगत् को शांति-सन्देश देते आ रहे हैं।

किन्तु हिन्दुस्तान में केवल यही एक विचार-धारा चलती रही ऐसी बात नहीं है। इससे भिन्न भी अन्याय के प्रतिकार का एक विचार प्रवाह चला जिसे समाज शास्त्री ने चलाया। उन समाज शास्त्रों या स्मृतिकारों ने इस विचार को सामने रखा और कहा कि जब कभी भी अन्याय होता हो उसका प्रतिकार करना ही चाहिए। हिन्दुस्तान के इतिहास में इस विचार का एक प्रवाह और चलता आ रहा है।

इस तरह यहाँ दो विचारधाराएँ चलती आयी हैं : (१) वैर से वैर बढ़ता ही है इसलिए निर्वैर रहना चाहिए, और (२) समाज में जहाँ कहीं भी अन्याय होता हो वहाँ उसका प्रतिकार करना ही चाहिए, अन्याय हर्गिज न सहना चाहिए।

ये दोनों विचार समानान्तर चलते आये हैं। महापुरुष और देश के सेवकों पर दोनों का प्रभाव रहा है। अन्याय का प्रतिकार करना मान लेने पर यह भी विचार प्रवाह निर्माण हुए कि आक्रमक जो शस्त्र लेकर सामने आये, उससे लड़ने के लिए अपने हाथ में शस्त्र लेने में हिचकिचाहट न होनी चाहिए। वे कहते थे : 'हमें शस्त्र से किसी पर भी आक्रमण न करना चाहिए। किन्तु लोगों को पीड़ा देनेवाले दुष्ट व्यक्ति के खिलाफ उसका प्रतिकार करने के लिए न्याय और सत्य रक्षा के लिए हम शस्त्र जरूर ले सकते हैं और लेना ही चाहिए।' अन्याय-प्रतिकार की इस विचार प्रणाली में विक्रमादित्य, राणा प्रताप, शिवाजी जैसे अनेक महापुरुष निर्माण हुए। उन्होंने माना कि अन्याय का प्रतिकार शस्त्र से भी करना चाहिए, फिर भी उनकी ओर से स्वतंत्र आक्रमण नहीं हुआ। हिन्दुस्तान के इतिहास में यह एक अद्भुत बड़ी बात है कि इस देश ने अपने उत्कर्ष-काल में भी दूसरे किसी देश पर आक्रमण नहीं किया। यहाँ बड़े-बड़े राजा हुए। बड़ी-बड़ी सत्ताएँ रहीं पर उत्कर्ष काल में—जिस समय हाथ में पूरी ताकत थी—भी यहाँ के किसी राजा ने दूसरे किसी बाहरी मुल्क पर आक्रमण नहीं किया। राज धर्म की यही मर्यादा मानी गयी है। अन्याय प्रतिकार का यह स्वरूप है कि हम उसका प्रतिकार जरूर करेंगे, पर अपनी ओर से किसी पर आक्रमण करना अन्याय है। यह एक धर्म-विचार था।

दूसरा विचार था: वैर से वैर नहीं मिटता। आज कोई हमसे शस्त्रबल में बलवान् सिद्ध होता है तो हम उससे ज्यादा बलशाली शस्त्र लेकर उसका प्रतिकार करते हैं। इस तरह चलते-चलते आज हम 'टोटल वार' तक आये, जहाँ समूचा राष्ट्र युद्ध के लिए खड़े हो जाते हैं। किन्तु वैर से वैर मिटता नहीं, इस विचार को माननेवालों की भी परंपरा हिन्दुस्तान में चली। यह संतों की परंपरा है। कबीरदास, तुलसीदास आदि की वृत्ति निर्वैर थी। यानी संतों की परंपरा है निर्वैर वृत्ति और वीरों की परंपरा है अन्याय-प्रतिकार। निर्वैरता और अन्याय प्रतिकार, दोनों धर्म हैं। शिवाजी और तुकाराम एक ही जमाने में हुए। तुकाराम बुद्ध भगवान् की निर्वैरता की परंपरा के संत थे, तो शिवाजी वीरों की परंपरा के। दोनों को एक दूसरे के लिए आदर था। तुकाराम का कीर्तन सुनने के लिए

शिवाजी बड़े भक्तिभाव से जाते थे, पर शिवाजी के अन्याय-प्रतिकार के काम में तुकाराम हाथ नहीं डालते थे। वे कहते कि यह मेरा काम नहीं है। और शिवाजी भी राजसत्ता छोड़कर तुकाराम के भजन समाज में नहीं गये। अगर तुकाराम से पूछा जाता कि शिवाजी का अन्याय प्रतिकार ठीक है या नहीं? तो वे कहते, 'ठीक है'। फिर उनसे पूछा जाता कि 'यह ठीक है तो तुम क्यों नहीं यह काम करते?' तो वे कहते कि 'यह मेरा धर्म नहीं है'। समाज की हालत ऐसी है कि शिवाजी जो काम करते हैं उसे हम रोक नहीं सकते। इस तरह से समाज में दो परम्परायें चलीं।

गांधीजी का प्रतिकार-विचार

फिर हिन्दुस्तान में अंग्रेज आये और उन्होंने सारे शस्त्र छीन लिये। इसलिए हिन्दुस्तान के सामने अब ऐसी समस्या उठ खड़ी हुई कि या तो अन्याय को हमेशा के लिए सहना होगा या प्रतिकार का कोई ढंग निकालना होगा। इतने में परमेश्वर की कृपा से गांधीजी आये। उन्होंने संतों की परंपरा को प्रतिकार से जोड़ दिया। उन्होंने कहा कि 'हम निर्वैर रहेंगे और प्रतिकार भी करेंगे।' यह एक बड़ा भारी विचार सारी दुनिया को मिला, जहाँ निर्वैरता और प्रतिकार-शक्ति दोनों का मिश्रण हुआ। अब हमारे समाज के लिए रास्ता खुल गया। अन्यथा समाज में बुद्धि-भेद हो जाता था। कुछ लोग इधर झुके थे तो कुछ लोग उधर। समाज के टुकड़े हुए थे। लेकिन अब ऐसी युक्ति हासिल हुई कि दूध और शक्कर, दोनों मिल गये। हम उस मिश्रण को एक साथ पी सकते हैं। निर्वैरता से प्रतिकार की शक्ति बढ़ गयी और प्रतिकार से निर्वैरता की शक्ति बढ़ी। यह बड़ा भारी उपकार हुआ। इसमें गांधीजी का बड़ा उपकार है, किन्तु उससे भी अधिक उपकार है, अंग्रेजों का, क्योंकि उन्होंने देश को निःशस्त्र न बनाया होता, तो लाखों लोग गांधीजी की बात नहीं मानते। उन्हें सिर्फ हमारे जैसे दो चार चेले मिल जाते। परन्तु सारे देश में एक विचार फैला और उसका कुछ टूटा-फूटा आचरण भी हुआ। निर्वैरता का पूरा उपयोग करना कठिन हुआ, इसलिए हमने कुछ टूटा-फूटा, लूला लंगड़ा आचरण किया। किन्तु उससे यह मार्ग खुल गया।

आर्थिक क्षेत्र में अहिंसा का प्रयोग आवश्यक

अब विज्ञान का युग आया है। विज्ञान के कारण लड़ाइयाँ भयानक हुई हैं। प्राचीन काल में लड़ाई उतनी भयानक नहीं थी। लड़ाई में उस समय हानि से लाभ अधिक होता था। किन्तु विज्ञान के इस युग में लड़ाई की भयानकता इतनी बढ़ गयी है कि लड़ाई का लाभ बहुत थोड़ा होता और हानि ही बहुत होती है। इसलिए अब निर्वैर प्रतिकार होता है तो समाज के मसले हल होते और लड़ाई की हानियों से समाज बचता है। इस तरह आज अंग्रेजों की भलमनसत, गांधीजी का निमित्त और विज्ञान युग का प्रसार तीनों मिलकर बुद्ध भगवान् की शिक्षा का प्रयोग करने का मौका मिला है। अगर हम उस पर अमल करें तो यह विचार दुनिया में फैलेगा।

गांधीजी ने इस शस्त्र का उपयोग राजनैतिक आजादी प्राप्त करने में किया था परन्तु इसीसे यह शस्त्र कारगर नहीं साबित हो सकता, क्योंकि हमें जो आजादी मिली उसमें दुनिया की ताकतें भी काम कर रही थीं। दुनिया की ताकतें उसके अनुकूल थीं। इसलिए दुनिया का पर पड़ने का मौका मिला कि महायुद्ध के कारण ऐसी कई शक्तियाँ निर्माण हुई जिनसे हमें आजादी मिली। हम भी कबूल करते हैं कि उस समय दुनिया में जो शक्तियाँ काम कर रही थीं उनका और अहिंसा का भी परिणाम हुआ है। पूरी तरह यह अहिंसा का ही परिणाम था ऐसा हम भी नहीं कह सकते। आज के जमाने में एक देश दूसरे देश को बहुत दिनों तक दबाके रखने में नहीं रह सकता। प्राचीन काल में रोमन साम्राज्य [illegible] बहुत दिन चला, पर उसके [illegible] के साम्राज्य [illegible] लोग [illegible] हो रहे थे। अब विज्ञान का युग है [illegible] इसलिए साम्राज्य [illegible] नहीं टिक सकते। अंग्रेजी साम्राज्य भी नहीं टिका। [illegible] फिर भी [illegible] ने [illegible] साम्राज्य [illegible] उसके [illegible] थी। इस वैज्ञानिक युग में एक [illegible] की [illegible] प्राचीन [illegible] है।

यह रेडियो ब्राडकास्ट का जमाना है। विभिन्न देशों को नजदीक ले आया है, शस्त्र की गति बढ़ गयी है। इसलिए हमारे लिए राजनैतिक आजादी प्राप्त करना आसान बात थी। किन्तु अगर हम आर्थिक समता स्थापित करने का काम अहिंसा से करते हैं, तो वह बहुत बड़ी बात हो जाती है। उससे निःशस्त्र या अहिंसक प्रतिकार की शक्ति बहुत बढ़ जाती है।

वैज्ञानिक युग में राजनैतिक आजादी प्राप्त करना आसान बात है, क्योंकि दुनिया की शक्तियाँ उसके अनुकूल हैं। इसलिए उसके करने से अहिंसा शक्ति का पूरा भान नहीं हुआ। अगर पूरा भान होता तो गांधीजी के रहते हिन्दुस्तान के दो टुकड़े न होते। स्वराज्य प्राप्ति के बाद हिन्दू-मुसलमानों के जो झगड़े चले जिनमें लाखों लोग बरबाद हुए, वे नहीं होते। इसलिए हम कहते हैं कि अहिंसा की शक्ति का हमें पूरा भान नहीं हुआ। हमारी अहिंसा लाचारी की थी। किन्तु अब हमारे हाथ में सत्ता आ गयी है। हम चाहें तो हिंसा का उपयोग कर सकते हैं और चाहें तो अहिंसा का। ऐसी स्थिति में अगर हम देश का आर्थिक प्रश्न अहिंसा से हल करें तो संसार में राज्यसत्ता से अभिभूत निःशस्त्र प्रतिकार कार्यकारी सिद्ध होगा और संसार को मार्ग मिलेगा। इसलिए आपको ठीक ढंग से सोचना चाहिए।

दया धर्म का मूल पर समता पूर्णता

हम जमीन माँगते हैं, भीख नहीं। हम हक्क हिस्सा माँगते हैं, दया का धंधा हम नहीं करते। गरीबों पर दया करो ऐसा नहीं कहते। दया और करुणा के लिए भी स्थान है, वे भी धर्म हैं। हमने अपने काम को 'करुणा-कार्य' भी कहा है। किन्तु हम लोगों से कहते हैं कि समता को मानो और हवा पानी तथा सूरज की रोशनी के समान जमीन भी परमेश्वर की देन है, इसलिए उस पर किसीकी मालकियत नहीं, सबका समान अधिकार है—इस तत्त्व को अपने समता के तत्त्व को मानकर जमीन दो। दया का आधार समता है, यही मानकर जमीन दो। अगर हम सिर्फ दया की बात करते तो उसमें हक नहीं मान सकते। और कोई कुछ भी देता तो उसका हम उपकार मानते। किन्तु हम तो एक प्रकार से सत्याग्रह कर रहे हैं। हम तो जिससे जमीन माँगते हैं, उसके घर के सामने खड़े होकर कहते

है कि आप समता मानते हो न? हम आपके बच्चे हैं। हमें हमारा हिस्सा दो। दया एक चीज है और समता दूसरी चीज।

तुलसीदासजी ने कहा है कि 'दया धर्म का मूल है' पर वह धर्म की पूर्णता नहीं आरम्भ है। एक मालिक अपने नौकर को प्यार करता है। बीमारी में उसे मदद देता है उसके बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध करता है। अगर वह यह सब करता है तो वह 'दयालु मालिक' जरूर कहलायेगा उसने धर्माचरण किया ऐसा कहा जायगा। परन्तु अगर कोई उससे कहे कि अपने आसन के आधे हिस्से पर उस नौकर को बिठाओ तो वह नहीं मानेगा। हम अपने बैल को भी अच्छा खिलाते हैं, पर उसे अपने पास नहीं बैठाते। अच्छे और दयालु मनुष्य बैलों की अधिक चिन्ता करते हैं पर बैलों में और हममें समता है, इस बात को वे नहीं मानते। बैल पर दया करने को हम राजी हैं पर उसके साथ समता मानने को राजी नहीं। इसी तरह कुछ लोग आज कहते हैं कि हम अपने नौकर को पाँच एकड़ देंगे तो हम उनसे कहते हैं 'ठीक है पर यह पूरा नहीं है। इस बात को कबूल कीजिये कि जमीन पर सबका हक है, सिर्फ आपका नहीं।' जो इस बात को कबूल नहीं करते और दयालु नहीं होते वे हमारी माँग नहीं मानते। किन्तु जो दयालु होते हैं वे कहते हैं कि "आपकी माँग हम कबूल करते हैं पर समता नहीं मानते। दुनिया में बुद्धि तो कम बेशी होती ही है। फिर समता कैसे स्थापित हो?"

हम उनसे कहते हैं कि भगवान् ने यदि कम बेशी बुद्धि दी है, तो सबको एक वोट देने का अधिकार क्यों दिया जाय? नेहरूजी को भी एक ही वोट का अधिकार है और उनके चपरासी को भी एक ही। यह मूर्खता है या इसके पीछे कोई अक्ल है? हर कोई जानता है कि पण्डित नेहरू और उनके चपरासी की अक्ल समान नहीं है फिर भी दोनों को समान वोट का हक दिया गया है। इसका मतलब यही है, आपने आत्मा की समता मान ली है चाहे आप वेदान्त को न समझे हों। मनुष्य मनुष्य में थोड़ा फर्क तो है ही पर हरएक को एक वोट का हक देने का मतलब है कि आप आत्मा की समता कबूल करते हैं। यह बुनियादी उसूल आपने मान लिया तो अब उसी पर आपको मकान बनाना होगा। बुनियाद एक प्रकार की और मकान दूसरे प्रकार का यह हो नहीं सकता। आपने

तो उनको सम्मान और देकर समता को माना, इसका मतलब ही है कि जमाना समता की माँग कर रहा है। और आपने वह माँग मान ली तो आखिर आखिरकार आप उसे जीवन में लाने की कोशिश कीजिये और तब तक दम कीजिये।

साधन के तीन क्रम

दया प्राथमिक धर्म है, धर्म की पूर्णता नहीं। दया धर्म का फल नहीं धर्म का मूल या आरम्भ है। जब धर्म परिपूर्ण या पक्व होगा तभी उसे समता का फल लगेगा। गीता ने स्थितप्रज्ञ संन्यासी योगी भक्त सभी महापुरुषों के लक्षणों में समता की बात कही है; क्योंकि धर्म का स्वरूप समता है। आत्मा समान है। इसलिए हमें अपना जीवन धीरे-धीरे समता की ओर ले जाना चाहिए। इसलिए जो जमीन देते हैं, उनसे हम कहते हैं कि गरीबों की सेवा का व्रत लीजिये। जमीन देना तो आरम्भ है। गरीबों की सेवा करते करते आप खुद गरीब बन जायेंगे। ऐच्छिक गरीब बनेंगे, तो आप सच्ची समता पर पहुँच जायेंगे। (१) जमीन देना (२) गरीबों की सेवा का व्रत लेना और (३) खुद गरीब बनना—ये साधन के तीन चरण हैं। जब गरीब बनेंगे, तब गरीबी मिटेगी। जब गरीबी हटेगी, तब गरीबी मिटेगी। तब समाज स्तर समान हो जायगा।

सौम्य और उग्र सत्याग्रह

समाज में दया पड़ी है, फिर भी लोग समझते हैं कि विषमता कायम करते हुए हम दया कर सकते हैं। किन्तु वह दया मात्र अपर्याप्त है। अब समता की जरूरत है। समता लाने के लिए ही भूदान-यज्ञ चल रहा है। निर्वैर-प्रतिकार और सत्याग्रह का यह एक प्रकार है। हम लगातार घूमते हैं, बारिश में भी घूमते हैं। मालिकों से छठे हिस्से की माँग करते हैं। कोई कम देता है, तो कैसे से इनकार कर देते हैं। यह सारा सत्याग्रह ही चल रहा है। कुछ लोग हमसे पूछते हैं, "इसका कुछ परिणाम न हुआ तो आप क्या करेंगे?" हमने जवाब दिया कि हम इस तरह से सोचते ही नहीं। किन्तु कुछ परिणाम न हुआ तो सत्याग्रह एक

ऐसा महान् शस्त्र है कि उसके सामने कोई टिक नहीं सकता क्योंकि उसमें निर्वैरता और प्रतिकार, दोनों हैं और उससे उसकी शक्ति बढ़ जाती है।

आज हमारा सौम्य सत्याग्रह चल रहा है। आगे चलकर वह उग्र भी हो सकता है। जब हम ऐसी बातें करते हैं तो कुछ लोग कहते हैं कि अब आप धमकाने लगे हैं। किन्तु अगर कोई लड़का अपने शराबी पिता से कहता है कि आप शराब छोड़िये, नहीं तो मैं खाना नहीं खाऊँगा तो क्या उस लड़के ने पिता को धमकाया? अगर कोई माँ अपना बच्चा बुराई छोड़े इसलिए खाना बन्द कर देती है, तो क्या माँ ने बच्चे को धमकाया? यह ध्यान रखना होगा कि जहाँ निर्वैरता और प्रतिकार, दोनों आते हैं वहाँ धमकाया नहीं जगाया जाता है। बच्चों को किस तरह जगाया जाता है? माँ दो चार बार उससे कहती है 'बेटा उठ'। अगर वह न उठा तो वह उसके शरीर को स्पर्श कर उसे हिलाती है। इस तरह एक के बाद एक कृतियाँ होती हैं। शब्द के बाद जो स्पर्श होता है वह धमकाना या हिंसा नहीं प्रेम का स्पर्श है। जब प्रेम अपने छोटे रूप में हार जाता है, तब वह अपना बड़ा रूप प्रकट करता है। जो काम पाँच रुपयों से नहीं होता उसके लिए जब दस रुपये दिये जाते हैं, तो वह एक हो बात हो जाती है। लेकिन अगर पाँच रुपयों से काम नहीं होता इसलिए छह तमाचे लगाये जायें तो वह जरूर धमकाना होगा। पर पाँच रुपयों के बदले छह या दस रुपये देना धमकाना नहीं, उसी रास्ते पर थोड़ा आगे बढ़ जाना है। आपकी जड़ता हटाने के लिए अधिक चैतन्य प्रकट करना होगा। सामनेवाला जितना जड़ है, उतना चैतन्य प्रकट करना पड़ता है। सामने जितना अन्धकार है उतना प्रकाश जरूरी होता है। हमारे मन में छीनने या धमकाने की कोई बात ही नहीं है। हमें तो अन्तरात्मा को जगाना है। जगाने के लिए घूमना पड़ता है, माँगना पड़ता है व्याख्यान देना पड़ता है। इसके लिए हमें सत्याग्रह भी करना पड़े तो वह भी करेंगे, क्योंकि वह जगाने की प्रक्रिया है।

सत्याग्रह प्रेम की प्रक्रिया है। इसलिए जिनके सामने सत्याग्रह किया जायगा वे हमारा उपकार मानेंगे। जो माँ अपना बच्चा सुधरे इसलिए उपवास करती है उसका बच्चा यह मानेगा कि माँ उपवास करती है माने मुझ पर उपकार

तो उसको समझ और देकर समता को मानना इसका मतलब ही है कि समाज समता की माँग कर रहा है। और आपने यह माँग मान ली, तो आहिस्ता-आहिस्ता आप उसे जीवन में लाने की कोशिश कीजिये और तब तक दया कीजिये।

वामन के तीन कदम

दया प्राथमिक धर्म है, धर्म की पूर्णता नहीं। दया धर्म का अन्त नहीं, धर्म का मूल या आरम्भ है। जब धर्म परिपूर्ण या परिपक्व होगा तभी उसे समता का फल लगेगा। गीता ने स्थितप्रज्ञ सन्यासी योगी भक्त सभी महापुरुषों के लक्षणों में समता की बात कही है; क्योंकि धर्म का स्वरूप समता है। आरम्भ दया है। इसलिए हमें अपना जीवन धीरे-धीरे समता की ओर ले जाना चाहिए। इसलिए जो जमीन देते हैं, उनसे हम कहते हैं कि गरीबों की सेवा का व्रत लीजिये। जमीन देना तो आरम्भ है। गरीबों की सेवा करते करते आप खुद गरीब बन जायेंगे। ऐच्छिक गरीब बनेंगे तो आप सही समता पर पहुँच जायेंगे। (१) जमीन देना (२) गरीबों की सेवा का व्रत लेना और (३) खुद गरीब बनना—ये वामन के तीन चरण हैं। सब गरीब बनेंगे तब गरीबी मिटेगी। जब गरीबी बँटेगी, तब गरीबी मिटेगी। तब समता स्वरूप समाज हो जायगा।

सौम्य और उग्र सत्याग्रह

समाज में दया चल रही है, फिर भी लोग समझते हैं कि विषमता कायम रखते हुए हम दया कर सकते हैं। किन्तु यह दया अपर्याप्त है। अब समता की जरूरत है। समता लाने के लिए ही भूदान-यज्ञ चल रहा है। निर्वैर-प्रतिकार और सत्याग्रह का यह एक प्रकार है। हम लगातार घूमते हैं, बारिश में भी घूमते हैं। लोगों से छठे हिस्से की माँग करते हैं। कोई कम देता है, तो लेने से इनकार कर देते हैं। यह सारा सत्याग्रह ही चल रहा है। कुछ लोग हमसे पूछते हैं, "इसका कुछ परिणाम न हुआ तो आप क्या करेंगे?" हमने जवाब दिया कि हम इस तरह से सोचते ही नहीं। किन्तु कुछ परिणाम न हुआ तो सत्याग्रह एक

ऐसा महान् शस्त्र है कि उसके सामने कोई टिक नहीं सकता क्योंकि उसमें निर्वैरता और प्रतिकार दोनों हैं और उससे उसकी शक्ति बढ़ जाती है।

आज हमारा सौम्य सत्याग्रह चल रहा है। आगे चलकर वह उग्र भी हो सकता है। जब हम ऐसी बातें करते हैं तो कुछ लोग कहते हैं कि अब आप धमकाने लगे हैं। किन्तु अगर कोई लड़का अपने शराबी पिता से कहता है कि आप शराब छोड़िये, नहीं तो मैं खाना नहीं खाऊँगा तो क्या उस लड़के ने पिता को धमकाया ? अगर कोई माँ अपना बच्चा बुराई छोड़े, इसलिए खाना बन्द कर देती है, तो क्या माँ ने बच्चे को धमकाया ? यह ध्यान रखना होगा कि जहाँ निर्वैरता और प्रतिकार, दोनों आते हैं वहाँ धमकाया नहीं जगाया जाता है। बच्चों को किस तरह जगाया जाता है ? माँ दो चार बार उससे कहती है 'प्रिय उठ। अगर वह न उठा, तो वह उसके शरीर को स्पर्श कर उसे हिलाती है। इस तरह एक के बाद एक कृतियाँ होती हैं। शब्द के बाद जो स्पर्श होता है, वह धमकाना या हिंसा नहीं, प्रेम का स्पर्श है। जब प्रेम अपने छोटे रूप में हार जाता है, तब वह अपना बड़ा रूप प्रकट करता है। जो काम पाँच रुपयों से नहीं होता, उसके लिए जब दस रुपये दिये जाते हैं, तो वह एक हो जाता हो जाती है। लेकिन अगर पाँच रुपयों से काम नहीं होता इसलिए कुछ उन्माने लगाये जायें तो वह जरूर धमकाना होगा। पर पाँच रुपयों के बदले दस या दस रुपये देना धमकाना नहीं, उसी रास्ते पर थोड़ा आगे से जाना है। आपकी जड़ता हटाने के लिए अधिक चैतन्य प्रकट करना होगा। सामनेवाला जितना जड़ है, उतना चैतन्य प्रकट करना पड़ता है। सामने जितना अन्धकार है उतना प्रकाश जरूरी होता है। हमारे मन में छीनने या धमकाने की कोई बात ही नहीं है। हमें तो अन्तरात्मा को जगाना है। जगाने के लिए घूमना पड़ता है, मांगना पड़ता है व्याख्यान देना पड़ता है। इसके लिए हमें सत्याग्रह भी करना पड़े तो वह भी करेंगे, क्योंकि वह जगाने की प्रक्रिया है।

सत्याग्रह प्रेम की प्रक्रिया है। इसलिए जिनके सामने सत्याग्रह किया जायगा वे हमारा उपकार मानेंगे। जो माँ अपना बच्चा सुधरे इसलिए उपवास करती है, उसका बच्चा यह मानेगा कि माँ उपवास करती है याने मुझ पर उपकार

करती है। इसी तरह सामनेवाला सत्याग्रह को कमजोरी न मानेगा। अगर सामने-वाला उसे कमजोरी समझे, तो इसका मतलब हुआ कि वह सच्चा सत्याग्रह ही नहीं है। जब सामनेवाला सत्याग्रह को कमजोरी नहीं समझता और यह मानता है कि प्रेम अब नये रूप में प्रकट हो रहा है, तभी वह सच्चा सत्याग्रह कहलाया जायगा।

बेगूसराय
१-११-'५१

विज्ञान के आधार पर नया समाज-शास्त्र : २८ :

आपके इस पुण्य पावन प्रदेश में सोलह मास से हमारी यह पैदल यात्रा एवं नारायण की निरन्तर सेवा और उसकी कृपा से चल रही है। इस बीच इसी गाँव-गाँव का भी दर्शन हुआ, वह अद्भुत ही अनुभव है। हमने देखा कि जो पढ़े-लिखे नहीं हैं, जिन्हें शास्त्र का कोई ज्ञान नहीं और जो इतिहास भी नहीं जानते वे भी भूदान का विचार सुनने के लिए अत्यन्त उत्सुकता से आते हैं। गाँव देहात के ये लोग यह विचार अच्छी तरह समझ लेते और उन्हें यह जँच जाता है। कभी-कभी तो यहाँ तक होता है कि वे हमसे आकर शिकायत तक करते हैं कि हमारे पास माँगनेवाला कोई नहीं पहुँचा। साधारण तौर पर बिहार की आम जनता में भूदान के लिए इतनी उत्सुकता है। लेकिन शहर के लोगों को अभी यह चीज समझना बाकी है।

क्रान्ति के अगुआ ग्रामीण

अगर बुद्धि और हृदय का विभाजन कर समझें, तो मानना पड़ेगा कि देश की बुद्धिमत्ता शहर में है और हृदय देहात में। नागरिकों को कोई विषय तब मान्य होता है जब उनकी बुद्धि में वह प्रवेश करता और उसके द्वारा हृदय तक पहुँचता है। इसके विपरीत देहाती लोगों को विषय जब समझ में आता है, तब वह उनके हृदय को पकड़ लेता और फिर उनमें उसका प्रवेश होता है। ये दो भिन्न-भिन्न मानस के प्रकार हैं। इसीलिए हमें आश्चर्य नहीं है कि शहर

इसलिए लोग जैसे-जैसे आणविक युद्ध की बात करते हैं, मेरा दिल उत्साहित होता है। लगता है लोग बहुत जोरों से अहिंसा की ओर दौड़ रहे हैं। विज्ञान और हिंसा में शादी हुई तो निःसन्देह मानव जाति का संहार होगा। इसलिए विज्ञान के साथ अहिंसा का ही सम्बन्ध जोड़ने की वृत्ति ठीक रहेगी। अगर हिंसा के छोटे-छोटे प्रयोग चले तो उनका अन्त ही न होगा। पर बड़े प्रयोग हुए, तो परिणाम शीघ्र होगा। या तो मनुष्य की बुद्धि परिवर्तित होगी या उसका खात्मा ही हो जायगा। मेरा विश्वास है कि मानव अक्ल रखता है, वह अपनी जाति को निर्वीर्य नहीं होने देगा। और ये प्रयोग थोड़े ही समय में खतम हो जायँगे। फिर तो अहिंसा आयेगी, बड़े पैमाने पर आयेगी। इसीलिए ये कल्पनाएँ मुझे मामूली मालूम होती हैं।

महायुद्ध सृष्टि-शक्ति का परिणाम

भारत के प्रधानमंत्री ने ५-६ माह पहले कहा था कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के सम्बन्ध सुधर रहे हैं' और अब वे ही कहते हैं कि 'टेन्शन बढ़ रहा है और और दूसरी दिशा जा रही है।' इसके माने क्या हैं? यही कि मनुष्य की बुद्धि से चीजें नहीं हो रही हैं, बल्कि सृष्टि-देवता कुछ कार्य कर रहे हैं। जैसे भूकम्प होनेवाला हो तो उसका अन्दाजा पहले नहीं लगता, वैसे ही महायुद्ध का भी अन्दाजा किसीको नहीं लगता—न तो हिन्दुस्तान के प्रधानमंत्री को लगता है और न अमेरिका के प्रेसिडेंट को। जैसे भूकम्प सृष्टि-शक्ति का परिणाम है, वैसे ही ये महायुद्ध भी विश्व सृष्टि-शक्ति के परिणाम हैं। ये मानव-बुद्धि से नहीं होते। जहाँ मानव बुद्धि कुण्ठित होती है, वहीं ये होते हैं। इसलिए मनुष्य औजार बनाते हैं और औजार बनाकर लड़ सकते हैं। कोई ऐसी लड़ाई नहीं चाहता जिसमें मानव का संहार हो। दुनिया में कोई ऐसा शैतान नहीं हुआ, जो ऐसी इच्छा रखता हो। पर सृष्टि चक्र चलता है और गति मिलती है।

विज्ञान गतिप्रद और आत्मज्ञान दिशासूचक

गति देना विज्ञान का कार्य है। किन्तु किसी दिशा में ले जाना विज्ञान से नहीं हो सकता। वह तो आत्मज्ञान से ही हो सकता है। विज्ञान गति देता है और

आत्मज्ञान दिया जाता है। मोटर में गति देने का इन्तज़ाम अलग होता है और दिशा बताने का इन्तज़ाम अलग। नौका चलाते हैं, उसमें भी गति एक ढंग से दी जाती है, तो दिशा दूसरे ढंग से। इस तरह दिशासूचक और गतिप्रद यन्त्रों में अलग-अलग शक्तियाँ हैं। विज्ञान गति है, दिशा सूचन करने की शक्ति उसमें नहीं। वह तो आत्मज्ञान में है। मुझे विश्वास है कि आत्मज्ञान के साथ जहाँ विज्ञान का सम्बन्ध आ रहा है, वहाँ प्रयोग करने से शायद कुछ हानि उठाने के बाद मनुष्य ठीक राह पर आयेगा और समाज-शास्त्र का उत्तम निर्माण होगा। तब तक वह डगमग और अस्थिर रहेगा।

दुनिया में कोई देश आज़ाद नहीं

हम चाहते हैं कि जनता को शक्ति और सच्ची आज़ादी महसूस हो, उनको सच्ची स्वतंत्रता मिले। आज दुनिया में कुछ देश गुलाम, तो कुछ देश आज़ाद माने जाते हैं, पर दोनों ही गुलाम हैं, हम किसीको आज़ाद नहीं देखते। द्वितीय महायुद्ध के आदि और अन्त में हमने देखा कि हिटलर के अधीन जर्मनी आज़ाद माना गया। सेनापति का हुक्म हुआ, तो दस दस, पन्द्रह-पन्द्रह लाख लोग खड़े हुए और उन्होंने दूसरों पर हमला किया। इसी तरह जब सेनापति ने आज्ञा दी कि 'शस्त्र नीचे रखो और शत्रु की शरण जाओ' तो लाखों की तादाद में लोग शस्त्र नीचे रखकर शत्रु की शरण आ गये। हम इसे आज़ादी नहीं समझते। जहाँ समूचे राष्ट्र के लोग किसी एक या दस बीस मनुष्यों की आज्ञा के अनुसार शस्त्र उठा सकते या नीचे रख सकते हैं, उसे हम आज़ादी नहीं समझते।

सरकार औसत बुद्धि की

आज विभिन्न देशों में चुने हुए लोग राज्य कर रहे हैं, लोगों ने लोगों को चुन लिया है। पहले राजा चुने नहीं जाते थे वे स्वयं होते थे; पर आज शासक चुने जाते हैं। किन्तु सूरदास ने जो आक्षेप किया था वह आज भी सही है, आज भी उसमें कोई अन्तर नहीं आया। उन्होंने कहा था :

'ऊधो करमन की गति न्यारी !
मूरख-मूरख राजे कीन्हें पण्डित फिरत भिखारी !'

आखिर आज भी चुने हुए लोग ही राज्य करते हैं। वे सर्वोत्तम बुद्धि के नहीं होते, मध्यम बुद्धि के होते हैं। डेमॉक्रेसी का दूध अच्छी-से अच्छी गाय के दूध के समान अच्छा नहीं होता और बुरी से बुरी गाय के समान बुरा भी नहीं होता। जैसे ही जहाँ सर्वसाधारण की राय लेकर बहुमत से चुनाव होता है वहाँ चुने जानेवाले सर्वोत्तम बुद्धि के नहीं, मध्यम बुद्धि के होते हैं। सर्वोत्तम बुद्धि की पहचान जनता को नहीं होती। इसीलिए सत्ताधारी लोग क्रान्ति नहीं ला सकते। लोग जिस तरफ जाना चाहें, उस तरफ वे उन्हें ले जा सकते हैं। वे आज्ञाधारी होते हैं। अमेरिका के लोग शराब चाहते हैं, तो वहाँ की सरकार शराब बन्द नहीं कर सकती क्योंकि वह सेवा करनेवाली है, गुरु नहीं। वह लोगों को आगे नहीं ले जा सकती, लोगों के साथ रह सकती है। इसलिए मार्गदर्शक के तौर पर वह काम नहीं कर सकती। वहाँ शिक्षक के हाथ में कोई सत्ता नहीं, बल्कि जिनकी प्रज्ञा सामान्य जनों की प्रज्ञा के साथ मिलती है उन्हींकी प्रज्ञा से कारोबार चलता है। इसीलिए दुनिया में सत्ताधारियों की सत्ता चलती है। लोग उन्हें अपने प्रतिनिधि मानते और उनकी सत्ता कबूल करते हैं। वे यह नहीं समझ पाते कि हम क्रान्तिकारी निर्णय कर सकते हैं। इतना ही सोचते हैं, आज की जनता का बरताव आज की प्रकृति से कैसे कर सकें। नतीजा यह होता है कि सर्वत्र शासन चलाया जाता और अनुशासन (डिसिप्लिन) सिखाया जाता है। अनुशासन सब गुणों का राजा माना जाता है। हम भी उसे गुण मानते हैं, पर जिस तरह आज सब जगह लोगों की तालीम पर भी सत्ता चल रही है, उसे हम उससे ज्यादा खतरनाक समझते हैं।

विचार की स्वतन्त्रता

कई बार हम कह चुके हैं कि न्यायाधीश पर सरकार की सत्ता न हो, यह जैसे कबूल कर लिया गया है, वैसे ही तालीम पर भी सरकार की सत्ता न होकर लोक-सत्ता ही चलनी चाहिए। आज ही विद्यार्थियों के बीच बोलते हुए मैंने कहा था कि आज दुनिया में जो खतरा पैदा हुआ है उससे विद्यार्थी बचें। सत्ताधारी जैसा विचार चाहते हैं वैसा ही सब लोगों में ठूँसना चाहते हैं। वे समाज को जैसा

आकार देना चाहते हैं, तालीम को उसका औज़ार बनाते हैं। अगर आप सचमुच देश को उत्तम आकार देना चाहते हों तो तालीम पर सरकार की सत्ता न चले। गाँव के हाथ में तालीम रहे, तभी विचारों की स्वतन्त्रता रहेगी। पर जहाँ विचारों की स्वतन्त्रता आती है, साम्राज्यवादी घबड़ा उठते हैं। यहाँ तक कि कम्युनिस्ट भी जो यह मानते हैं कि राज्यसत्ता टूटनी चाहिए, आज की सत्ता को मजबूत बनाना चाहते और विचार की आज़ादी नहीं देना चाहते। फिर दूसरों की जो मानते हैं कि राज्यसत्ता कायम रहे उनकी बात ही क्या ? यह बहुत बड़ा खतरा है कि सत्ताधारी देश को खास विचार में बाँधना चाहते हैं। नतीजा यह है कि किसी भी देश में विचार की आज़ादी नहीं है। अगर इसी तरह विचारस्वातन्त्र्य न रहा और शासन चन्द लोगों के हाथों में रहा तो खतरा कायम है।

केन्द्रित और विकेन्द्रित आयोजन

आज चन्द लोग दिल्ली में बैठकर सारे देश के लिए आयोजन (प्लानिंग) करते हैं। माना कि वे बुद्धिमान् हैं और निःस्वार्थ होकर सोचते हैं, फिर भी पाँच लाख गाँवों का आयोजन चन्द लोगों के हाथ में रहे यह अत्यन्त खतरनाक चीज है। अगर प्रत्येक गाँव अपना अपना आयोजन करे तो उसमें दोष भले ही रह जाय, पर उसकी हानि दूसरे गाँव को नहीं होगी और सबकी बुद्धि का विकास होगा। किन्तु यदि योजना-आयोग (प्लानिंग-कमीशन) में कुछ दोष रहा तो सारे गाँवों की हानि होगी। इसके अलावा उसमें सब लोगों की बुद्धि का उपयोग नहीं होता। अब जो समाजशास्त्र बनाना है, उसमें और सामूहिक अहिंसा में सत्ता का विभाजन अत्यन्त जरूरी है। उसके बिना शोषण समाप्त नहीं हो सकता। अगर हम चाहते हों कि हरएक को पूरी आज़ादी हो तो सत्ता का पूरा विभाजन होना चाहिए। आप पूछ सकते हैं कि आखिर इसकी भी मर्यादा होगी या नहीं ? हाँ मर्यादा अवश्य होगी। कुछ बातें ऐसी होंगी जिन्हें सोचने की शक्ति देहातियों में न हो। उन पर उन बातों का निर्णय डालना भी नहीं चाहिए। फिर भी गाँव की सत्ता गाँव पर ही होनी चाहिए। गाँव की पढ़ाई गाँववालों के हाथ में ही हो। गाँव में कौन-सा माल आये, कौन-सा माल गाँव

से बाहर जाय, गाँव की दूकान जिस तरह चलायी जाय। इन सब बातों में केन्द्र से निर्देश भी आ सकते हैं, पर इन पर सोचने और अमल करने की जिम्मेदारी ग्राम-पंचायत पर आनी चाहिए। तभी स्वराज्य आयेगा, तभी व्यापक शक्ति का प्रयोग हो सकेगा और तभी देश में शान्ति रहेगी।

खतरा बाहरी नहीं, भीतरी

कुछ लोग सोचते हैं कि हिन्दुस्तान को मजबूत बनाना चाहिए, क्योंकि खतरा दीख रहा है। पाकिस्तान अमेरिका से सैनिक मदद ले रहा है। हम कहते हैं कि आप महसूस करते हैं कि बहुत गर्मी पड़ी तो खतरा है, बहुत ठंडक पड़ी तो खतरा है, पर यह कभी नहीं समझते कि पेट बिगड़ा तो खतरा है। अगर पेट सुधर जाय, तो ठंडक या गर्मी अधिक होने पर भी नुकसान नहीं होगा। आप पाँच साल पहले तो हिन्दुस्तान के लिए खतरा महसूस नहीं करते थे, फिर आज ही क्यों महसूस करते हैं? क्या खतरा हुआ है? अगर वह पहले था, तो आज भी है और पहले नहीं था, तो अब भी नहीं है। एक बड़े देश को किसी छोटे की चढ़ाई से खतरा होगा न होगा, यह कैसी बात है? हमारे देश में बहुत मजहब, पंथ, भेद भाव भी है। हमारे जैसे लोग भी देव-दर्शन को जाते हैं, तो पिट जाते हैं, क्या यह कम खतरा है? आज भूमिहीनों की कुछ पूछताछ नहीं। क्या यह कम खतरा है? और जिस बंगाल पर राममोहन राय से लेकर गांधी तक प्यार करते आये, वहीं एलेक्शन के कारण झगड़ रहा है, क्या यह भी कम खतरा है? वास्तव में ये ही सब खतरों के कारण हैं। किन्तु बाहर से कुछ हो जाता है, तो हम समझ लेते हैं कि खतरा है। पर बारीकी से देखना चाहिए। जब यह देश आजाद नहीं था तब एक प्रकार का खतरा था। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद भी खतरा मौजूद है। हमें अन्दर से जितना खतरा है, उतना बाहर से नहीं। इन अन्दरूनी खतरों को अगर हम दुरुस्त करते हैं, तो देश मजबूत बनता है। हमें खुशी होती है कि किसी भी तरह क्यों न हो, लोगों को यह महसूस होने लगा है कि देश को मजबूत बनाना चाहिए।

नीति पराश्रयी नहीं, स्वतन्त्र रहे

कुछ लोग कहते हैं कि पाकिस्तान अमेरिका से मदद ले रहा है तो हम रूस से मदद लें। याने हम अपना देश वैसे बनायें जैसे पाकिस्तान पर छोड़ते हैं। वे शस्त्र बढ़ाते हैं तो हम भी बढ़ायें। वे आक्रमण लड़ाई करना चाहते हैं तो हम भी उस करें। वे दूसरे के हाथ में अपने देश को देना चाहते हैं, तो क्या हम भी अपना देश दूसरों के हाथ में देना चाहते हैं? वे जैसे नचावें वैसे ही हम नाचें। आखिर इसके मानी क्या हैं? कुछ लोग कहते हैं, नहीं तो हम भी मदद क्या लेंगे! अमेरिका से ही मदद लें पर हमें जरूर मदद देगा। दो मित्रों के बीच न्याय करने वाला जरूर न्यायपूर्ण और दोनों को समुचित न्याय देने की कोशिश करेगा। यह कहानी प्राचीन लोगों ने अच्छी तरह समझायी है। फिर भी क्या आप नहीं जानते हैं? कुछ लोग कहते हैं दूसरे से मदद लेनी ही नहीं चाहिए हिन्दुस्तान को अपनी ताकत बनानी चाहिए। आखिर इसके भी मानी यही है कि गरीबों के लिए की योजनायें तमाम कर सारी दौलत सेना पर खर्च कर दें। इसका इतना अर्थ है कि गरीबों का बलिदान करें। मैंने एक सभा में कहा था कि गरीबों का बलिदान देना चाहते हो तो पहले उन्हें बलवान् बनाओ। बलवान् बनने का ही बलिदान होता था, कमजोर का! [illegible] कहते हैं कि उनके भी योग-साधना और बलवान् बनाना पड़ता है। नहीं तो उनका बलिदान न होगा। फिर गरीबों को बलवान् कैसे बनाओगे? [illegible] [illegible] [illegible] (यहाँ [illegible]) [illegible] [illegible] हुआ न होगा।

[illegible]

[illegible]

सस्ते मिलते हैं, इसलिए लोग उन्हें लेते भी हैं। आखिर देह की शान भी कुछ होती है। पर हम ऐसे भिखारी बन जायें और यह सोचने लगें कि किसी तरह काम का दिन बीता तो ठीक, तो इस तरह हम कभी उन्नति नहीं कर सकते। जब हम भूदान-यज्ञ का विचार पहुँचाने जाते हैं, तो कहते हैं 'स्वराज्य का पार्सल आया तो सही पर उसका कुछ हिस्सा दिल्ली में रुका है और कुछ हिस्सा पटना में। वह अभी देहात में नहीं पहुँचा। हम देहातियों को समझाते हैं कि उठ जाओ, जागे हो जाओ और कसम खाओ कि हमारे घरों को कच्चा माल होता है, उसका पक्का माल हम ही बनायेंगे और वे चीजें शहर से नहीं लेंगे। जैसे मुसलमान सूअर का या हिन्दू गाय का गोश्त नहीं खाते, भले ही वह सस्ता मिले, वैसे ही गाँववालों को चाहिए कि जो माल गाँव में बन सकता है वही खरीदें, शहर का बना माल कभी न खरीदें।

शहरवाले विदेशी माल रोकें

शहरवाले पूछेंगे, क्या आप हमारी चिन्ता नहीं करते? इस पर हमारा जवाब है, हम आपकी भी चिन्ता करते हैं। इसीलिए तो हम देहातियों से कहते हैं कि शहर का माल मत लो। तभी गाँव और शहर दोनों मजबूत होंगे। शहरवाले धान कूटने की मिल, आटे की मिल और चीनी मिल बनाते हैं, याने जो कच्चा माल गाँव में बनता है, उसका पक्का माल आप बनाते हैं। साथ ही विदेश से जो माल आता है, उसका भी वे प्रतिकार नहीं करते। यह डालडा-घी और यह चश्मा विदेश से आता है। थर्मामीटर, जिसका उपयोग बुखार नापने में रोजमर्रा हो रहा है, विदेश से आता है। याने इस तरह विदेश का हमला शहर पर हो ही रहा है। फिर यदि इधर देहाती लोग बेकार बनते जायें और उनका हमला भी शहर पर होने लगे, तो दोनों के बीच बेचारे शहरवाले पिस जायेंगे। अतः उन्हें ऐसे धन्धे करने चाहिए, जिनसे विदेशी माल आना रुके और देहाती भी अपनी आवश्यकता की चीजें देहात में ही पैदा करें।

धन्धों का बँटवारा

हम भूदान के साथ ही लोगों से यह भी कहते हैं कि पुरुषों द्वारा होनेवाला स्त्रियों का शोषण बन्द हो। अंग्रेजी में 'पति'-वाचक 'हस्बैंड' शब्द का अर्थ है,

खेत जोतनेवाला और 'पत्नी'वाचक 'वाइफ' का अर्थ है, बुननेवाली। हमारे यहाँ पुराने ज़माने में ऐसा ही होता था। पानी भरने का काम स्त्रियों को दिया गया था। किन्तु आज स्त्रियों का बुनने का यह धन्धा पुरुषों ने ले लिया। पहले स्त्रियाँ सूई से सीती थीं। फिर सूई गयी और 'सिंगर मशीन' आयी। सूई गयी तो हर्ज नहीं, पर वह सिंगर पुरुषों के हाथ में आ गयी, यही बुरी बात हुई। अब आप उन्हें कौन-सा धन्धा दोगे? विदेशों में आम तौर पर होटल चलते हैं। याने रसोई का काम भी उनके हाथ से गया। मतलब, स्त्री के भी कुछ धन्धे होते हैं और वे उनके लिए ही सुरक्षित रखने चाहिए। नहीं तो हम स्त्री-शक्ति का लाभ न ले सकेंगे।

आज मध्यम वर्ग के लोगों की तो और भी बुरी हालत है। वे हर चीज खरीदना चाहते हैं, जिससे स्त्री का कुछ काम भी नहीं रहता। सिवा इसके कोई कमाती भी नहीं। इसीलिए तो पुरुष कहते हैं कि 'हम कमानेवाले एक हैं और खानेवाले दस।' पर हम पूछते हैं कि दस मुख खानेवाले हैं तो बीस हाथ भी तो काम के लिए हैं! अगर भगवान् एक हाथ और दो मुँह देता, तो क्या होता? लेकिन परमेश्वर ने ऐसा नहीं किया। उसने तो हमें एक मुँह और दो हाथ दिये हैं। फिर यदि हम यह कहते हैं कि 'एक कमानेवाला और दस खानेवाले हैं' तो उसके माने यह हुआ 'हमने दो हाथ और दस मुँह वाले राक्षस ही बना लिया।' तात्पर्य इस तरह हम स्त्रियों को बेकार बना रहे हैं। स्त्रियों को अभय रखना तो चाहते हैं, पर उदर-भरण का साधन उनके हाथ में रखना नहीं चाहते। इसी प्रकार हम देहातियों को अभय रखना तो चाहते हैं, पर उनके उदर भरण के साधन उनके हाथ में रखना नहीं चाहते। इसीलिए जहाँ हम भूदान का विचार समझाते हैं, वहाँ यह भी समझाते हैं कि उद्योगों का बँटवारा हो और सत्ता का विभाजन हो।

सत्ता रहने पर ही झगड़ा न होने का मूल्य

प्रजा-समाजवादियों ने प्रस्ताव किया कि ग्राम-पंचायत के चुनाव में पार्टियों के भेद न रखे जायँ। कांग्रेस ने इसे मान्य कर अब तय किया है कि अब गाँव के चुनाव में पार्टी के झगड़े नहीं होंगे। पर हम पूछते हैं कि अगर गाँव में कुछ

उत्पादक होगी और फिर यह निश्चय किया होता तो हम कुछ समझते। पर आज तो गाँवों में कुछ उद्योग ही नहीं है। आज गाँव में मदद करने के लिए न प्रजा-समाजवादी तैयार हैं, न कम्युनिस्ट। इसीलिए तो वे कहते हैं कि हम यहाँ के चुनाव में झगड़ा ही नहीं करेंगे। इसीलिए हम गाँव गाँव में ग्रामोद्योग चाहते हैं।

एक गाँव में 'ग्रामोद्योग-संघ' की तरफ से कोल्हू चलते थे। एक आदमी ने वहाँ मिल खड़ी कर दी जिससे सारे कोल्हू खत्म हो गये। वे लोग हमारे पास आये और हम भी उनके गाँव गये थे। लोग कहते हैं कि संविधान में तो लिखा है कि कोई भी कहीं उद्योग शुरू कर सकता है। पर हम पूछते हैं, क्या लोगों को बेकार बनाने की इजाजत भी संविधान में है? हमारे एक भाई मणिपुर गये थे। वे सुना रहे थे कि मणिपुर के चरखे टूट रहे हैं। यह सब क्या है? गाँव को उठा दें और फिर प्रजा समाजवादी या कम्युनिस्ट कहें कि हम झगड़ा नहीं करेंगे, तो हम समझेंगे कि अब इन्हें कुछ अक्ल आयी है।

साम्ययोगी समाज

भूदान के जरिये हम सामूहिक तौर पर राजनैतिक, औद्योगिक और आर्थिक क्षेत्रों में समता लाना चाहते हैं और उसीका यह प्रयत्न है। लोग कहते हैं, सरकार हमारे यहाँ स्कूल खोले। पर हम यह पसन्द नहीं करते। सरकार एक पाठ्य पुस्तक निर्धारित करेगी तो वह सभी स्कूलों में चलेगी। इस तरह उसका एक केन्द्रीकरण ही होगा। हम तो 'सर्वोदय' इसे ही कहते हैं कि गाँव गाँव में तालीम और ग्रामोद्योग का आयोजन हो, गाँव गाँव में जमीन का बँटवारा और उसके रक्षण की योजना हो, गाँव गाँव में गाँव की अपनी दूकान हो और साथ ही ऐसे मण्डल हों जो यह तय करें कि गाँव में कौन सा माल बेचा जाय और कौन सा बाहर से लाया जाय आदि। यही साम्ययोगी समाज रचना का आरम्भ है। यह सिर्फ देहातियों की ही नहीं बल्कि शहरवालों के कल्याण की बात है। इसलिए शहरवालों को भी इसमें हिस्सा लेना चाहिए। अब तक शहरवालों ने गाँवों से भर-भरकर पाया, अब उनके देने की बारी है।

पटना

१०-१-'५२

दो-तीन रोज से अखबार में एक मनोरंजक विषय चल पड़ा है। अमेरिका ने हाइड्रोजन बम बनाया है। वे उसका प्रयोग करके देखना चाहते हैं। उस विज्ञान की प्रगति कहाँ तक हुई, बनी हुई चीज कारगर है या नहीं, यह देखने के लिए वे प्रयोग करना चाहते हैं। उधर न्यूजीलैण्डवाले कह रहे हैं कि ये प्रयोग प्रशान्त महासागर में न होने चाहिए। इधर हमारे पंडित नेहरू बोले कि यह प्रयोग करना ही गलत है। इस प्रयोग से ही खतरा पैदा होगा। कभी भी प्रयोग किया जायगा तो उसका असर सैकड़ों मील तक होगा। उसके बाद प्रत्यक्ष अमल अमलतक क्या परिणाम होगा, कौन जान सकता है!

मैं अपने मन में सोचता हूँ कि अगर प्रयोग नहीं करना है तो यह उद्योग ही क्यों करें? उद्योग ठीक है, तो प्रयोग भी ठीक। बिना प्रयोग के उपयोग कैसे होगा? किन्तु आखिर जो शस्त्र-बल मानते हैं वे भी कहीं-न-कहीं उसकी एक मर्यादा मानते ही हैं। इसी तरह हाइड्रोजन बम का प्रयोग छोड़ ही देना चाहिए, इतनी मर्यादा मान लेनी चाहिए, यही उनके उस सुझाव का अर्थ है।

हिंसा पर मर्यादा के असफल प्रयोग

इस तरह हिंसा पर मर्यादा रखने के प्रयोग हिंसा को मान्य करनेवालों ने (अर्थात् अनिवार्य समझकर जिन्होंने उसे मान्यता मानी है) बार-बार किये हैं। महाभारत में हम देखते हैं कि युद्ध के कानून बनाये गये थे, फिर भी युद्ध के बीच वे तोड़ दिये गये, यद्यपि कानून बनानेवालों में दोनों तरफ धुरन्धर न्याय-नीति-निपुण पुरुष थे। इधर भीष्म, द्रोण जैसे थे तो उधर धर्मराज और अर्जुन जैसे। और बीच में भगवान् श्रीकृष्ण थे। सबने मिलकर कुछ नियम मान लिए, जो उनके पूर्वजों ने निश्चित किये थे। लेकिन मौके पर इन मर्यादाओं का पालन वे भी नहीं करते थे।

एक नियम था कि गदायुद्ध में कमर के नीचे प्रहार न करना चाहिए, पर

युद्ध के समय कैसा किया गया। एक सज्जन ने ही कैसा प्रहार किया, दूसरे सज्जन ने उसका समर्थन किया और तीसरे सज्जन ने उसकी प्रशंसा की। माना गया कि उसके बिना विजय नहीं प्राप्त हो सकती थी। इसलिए यह कैसे मान लें कि मूर्खता है, ऐसा उसके समर्थकों ने कहा। इसी तरह सोते पर प्रहार न करना, रात को लड़ाई न लड़ना ऐसे पचासों नियम बनाये गये और वे तोड़ डाले गये। हिंसा में और जो भी दोष हों, एक बहुत बड़ा दोष है कि उसमें अपने पर मर्यादा डालने की ताकत नहीं है। हिंसा तो शक्तिमान है, शक्ति में बुद्धि कहाँ से आयेगी? बुद्धि की देवता तो अहिंसा ही है।

हिंसा से दोनों का अन्त

इसलिए एक बार हम हिंसा को मान्यता देते हैं, साथ-साथ उसकी कुछ मर्यादाएँ भी रखते हैं और जहाँ तक हो सके, उनका पालन भी करते हैं। इतना ही होता है। महाभारत को हमने 'इतिहास' का नाम दिया है। एक महाभारत पढ़ लिया तो दूसरा कोई इतिहास पढ़ने की जरूरत नहीं होती। इतना व्यापक समाज शास्त्र अनुभव के आधार पर उसमें लिखा गया है। वह कोई घटनाओं पर आधृत इतिहास नहीं बल्कि सनातन इतिहास है। उसके आदि और अन्त में व्यास भगवान् ने कहा है कि मोहावरण दूर करने के लिए मैं यह 'इतिहास प्रदीप' जला रहा हूँ। सनातन इतिहास तो मनुष्य के हृदय में चलता है। वह सारा परिणाम के साथ उसमें बता दिया गया है। उस युद्ध में दोनों तरफ महापुरुष थे, फिर भी युद्ध में अंकुश नहीं रहा। उस युद्ध से कौरव खतम हुए और पाण्डव भी खतम हुए। पर इतने से ही वह युद्ध पूरा नहीं हुआ। जब यादव भी खतम हुए, तब वह पूरा हुआ। इस तरह उस युद्ध से सिवा खतमे के कुछ नहीं हुआ। उसमें जो जीते और जो हारे दोनों का खात्मा हुआ, कोई भी नहीं बचा। उसीके बीच गीता जैसा महान् तत्त्वज्ञान बताया गया है। उसमें यह बात बतायी गयी है कि शक्ति के पीछे लगने से मनुष्य का कल्याण नहीं होता।

बुद्धि की शरण लें

अब विज्ञान का जमाना है। इसमें बहुत कारगर और अच्छे-अच्छे औजार पैदा हुए हैं, लोकसेवा के और लोकसंहार के भी। वह शक्ति ही तो है। इसलिए

यह अच्छे उपयोग में या बुरे उपयोग में दोनों में मदद दे सकती है। अच्छे या बुरे उपयोग का आधार बुद्धि है। इसलिए हमें बुद्धि की शरण जाना चाहिए। भगवान् ने कहा है "बुद्धौ शरणमन्विच्छ।"

हिंसा विश्वासी सज्जनों का मुकाबला सत्याग्रह से

तुलसीदासजी ने कहा है 'दंड जतिन्ह कर" यानी संन्यासी के हाथ में दंड होना चाहिए। अर्थात् जो ज्ञानी-विज्ञानी हैं उनके हाथ में समाज-नियमन की शक्ति सौंप दें यह बात उन्होंने सुझायी थी। किन्तु दंड-शक्ति स्वयमेव ऐसी अक्ल नहीं रखती। दंड में यह अक्ल नहीं कि वह और किसीके हाथ में जाने से इनकार कर दे और संन्यासी के ही हाथ में आवे। ऐसी क्षमता दंड शक्ति में नहीं है वह तो खुद जड़ है। इसलिए हमें ज्यादा से-ज्यादा तकलीफ उनसे होती है जो सज्जन धर्मशील, भोगविरक्त न होते हुए भी ऐश्वर्य का दावा करते हैं। कहते हैं कि हमने परोपकार के लिए सत्ता ली है। हम अनासक्त होकर विकारहीन होकर, संहार की आज्ञा देते हैं। विकारहीन होकर संहार की आज्ञा देने का उनका दावा पुराने जमाने में थोड़ा बहुत संभव था क्योंकि उस समय विज्ञान बढ़ा नहीं था। इसलिए हिंसा शक्ति को रोकने की सामर्थ्य शायद उस जमाने में कुछ संभव थी। अतएव उस जमाने में संहार में गीता की अनासक्ति कुछ चल सकती थी। किन्तु आज विज्ञान बढ़ा है उसे हम रोक नहीं सकते। इसलिए आज सज्जन में भी ऐसी शक्ति नहीं कि हिंसा शक्ति का तटस्थ भाव से उपयोग करें और चाहे जब उसे वापस ले लें। यानी हिंसा शक्ति का स्वामी बनकर उसका उपयोग करें यह विज्ञान के युग में संभव नहीं।

जब यह बात स्पष्ट हो जाती है तब हमारे सामने यही सवाल आता है कि जिन्हें यह स्पष्ट नहीं हुआ है ऐसे सज्जन जो हिंसा को इच्छा या अनिच्छा से उत्तेजन देते हैं, उसका उपयोग करते हैं उनका मुकाबला कैसे किया जाय? हमारे सामने आज यह सवाल नहीं है कि दुर्जनों का मुकाबला कैसे किया जाय बल्कि यह सवाल है कि भोगवृत्ति रहित धर्मपरायण सज्जनों का मुकाबला कैसे किया जाय? स्पष्ट है कि यह मुकाबला केवल विचार शक्ति से ही होगा। उनके लिए

अपने अन्तःकरण की सौम्य चाहिए। दुःख सहने से ही काम हो सकता है। इसके लिए निरन्तर आत्मशोधन और निरभिमानता से धर्म समझकर दुःख सहना आवश्यक है। इसीसे इस जमाने में हमने 'सत्याग्रह' का नाम रखा है।

शाब्दिक नहीं सक्रिय विरोध करें

आज यह शब्द इतना अर्थ प्रकट करता है या नहीं यह हम नहीं जानते। किन्तु विचार निष्ठा और दुःख सहने को धर्म समझना, इतना अर्थ सत्याग्रह शब्द का समझना चाहिए। यह एक अत्यन्त शुद्ध रचनात्मक, प्रेममय, निर्भय शक्ति होगी। उसीके प्रयोग से जिन्हें हम गुमराह समझते हैं, उन लोगों का मुकाबला कर सकते हैं।

सवाल पैदा होता है कि इससे आम जनता में कुछ गलतफहमी हो सकती है क्योंकि जिनका मुकाबला करना है वे सज्जन काफी सरल होते हैं और समाज का उन पर भरोसा होना सम्भव है। इस हालत में हम उनका शाब्दिक विरोध करें तो जनता में भ्रम पैदा हो सकता है। जनता हमारी बात मानेगी या नहीं हम कह नहीं सकते। इसलिए शाब्दिक विरोध नहीं करना चाहिए। किन्तु जो बात हमें सही लगती हो उसका समस्त शक्ति से अमल करने की चेष्टा करनी चाहिए।

भूदान यज्ञ आरम्भ में एक छोटी-सी बात थी। अब उसका रूप कुछ बड़ा है। फिर भी उसके मुकाबले में, जो मैंने सामने रखा वह एक बहुत ही छोटी चीज है। इसलिए हमें यह करना चाहिए कि सत्ता की अभिलाषा छोड़ दें। जैसे हमने हिंसा की भक्ति छोड़ी वैसे ही सत्ता की और दण्ड शक्ति की भक्ति को छोड़कर समाज शक्ति निर्माण करने की कोशिश करनी चाहिए। भूदान यज्ञ उसका एक साधनमात्र है। आगे दूसरे भी साधन आयेंगे। जब मैं इस तरह सोचता हूँ तो मुझे बहुत शान्ति मालूम होती है। भूदान-यज्ञ में उत्तरोत्तर जो कठिनता मालूम होती है उससे भी मुझे शान्ति प्राप्त होती है।

गया
१ १ '५४

लोग सेवा का नाम लेते-लेते अन्त में सत्तापरायण बनते हैं। पहले तो वे सत्ता को सेवा का साधन समझते हैं और फिर धीरे-धीरे सत्ता ही उनकी देवता बन जाती है। जहाँ सत्ता देवता बन जाती है, वहाँ उसकी रक्षा का प्रश्न उठता है। फिर उसका अवलम्बन हिंसा पर होता है, जिसका फल विज्ञान के इस युग में बहुत खतरनाक होगा। इसका भान अब कुछ-कुछ विचारकों को हो रहा है। किन्तु इससे छुटकारा कैसे पाया जाय, इसकी राह किसीको सूझ नहीं रही है। मैंने सुझाया है कि अगर हम जनता के बड़े-बड़े मसलों का हल जनशक्ति यानी अहिंसा-शक्ति से निकालने की कोशिश करेंगे, तो सत्तापरायण बनने की वृत्ति से छुटकारा पाया जा सकता है। इसलिए भूदान-यज्ञ के आन्दोलन की ओर देखने की दृष्टि गहरी होनी चाहिए। सत्ता निरपेक्ष सेवा कैसे हो, सेवा के द्वारा शक्ति कैसे पैदा हो, समाज को केवल सुरक्षित नहीं बल्कि स्वरक्षित कैसे बनाया जाय, यह ढूँढना चाहिए। भूदान यज्ञ उसका आधार है। यह एक महान् काम है। इतनी व्यापक दृष्टि रखकर भूदान यज्ञ का काम करना चाहिए। नहीं तो यह भी हो सकता कि भूदान-यज्ञ में किसी भी तरह जमीन हासिल की जाय और उसमें कार्यकर्ताओं की ओर से तरह तरह का दबाव डाला जाय। वह अहिंसा-शक्ति की दिशा में नहीं बल्कि हिंसा का ही काम होगा। चाहे वह शस्त्र का उपयोग न करे पर उसमें डराना-धमकाना आदि जो चलेगा वह हिंसा ही होगी और इसलिए भूदान यज्ञ सफल न होगा।

चुनाव से अनुचित लाभ

प्रजा समाजवादी दल के एक नेता की चर्चा चल रही थी। उन्होंने कहा कि इन दिनों लोगों को चुनाव में बहुत ज्यादा दिलचस्पी मालूम होती दिखाई दे रही है। सब कबूल करते हैं कि भूदान-यज्ञ एक जरूरी काम है पर लोग उसमें उतनी

दिलचस्पी नहीं दिखाते, जितनी भिन्न-भिन्न दलीय चुनाव में दिलचस्पी लेते हैं। कोई भूदान-यज्ञ के बारे में सोचते भी हैं तो उनका सोचने का ढंग ऐसा होता है कि 'इस काम के जरिये हम जनसम्पर्क बढ़ायेंगे, तो इससे चुनाव में लाभ होगा।' मैं मानता हूँ कि कुछ लोग इस तरह से सोचते हैं। लेकिन किसी अच्छे काम का उपयोग करने की बात हो तो कोई बेजा नहीं है, बशर्ते कि वह अच्छा काम शुद्धदृष्टि रखकर किया जाता हो। इस तरह भूदान-यज्ञ के काम से दूसरे काम भी सम्भव हैं।

चुनाव से अहिंसक जन-शक्ति-निर्माण अधिक शक्तिशाली

प्रायः लोगों को लगता है कि चुनाव में बड़ी भारी शक्ति है। किन्तु जब उन्हें मालूम हो जायगा कि उससे बहुत अधिक शक्ति अहिंसक जन शक्ति-निर्माण में है तब उनका सोचने का ढंग ही बदल जायगा। इस पर बहुत सोचने की जरूरत है। इस देश में पश्चिम से आये हुए चुनाव के तरीके दो-चार साल ही नहीं काफी दिनों तक चलेंगे। सोचना यह चाहिए कि उसमें सुधार की जरूरत है या नहीं? आज के काम जिस तरह चलते हैं उससे लाभ होता है या नहीं? अपने अपने देश की परिस्थिति देखकर उसमें परिवर्तन करना आवश्यक है। अगर हम यह न करें और केवल पश्चिम का अनुकरण ही करें तो ठीक न होगा। दूसरे देशों की कोई चीज लेना बुरा नहीं, पर लेते समय उसमें अपने देश की परिस्थिति के अनुसार सुधार करना ही होगा।

चुनाव के कारण जाति-भेद में वृद्धि

हमारा समाज जातिभेद युक्त है। राजा राममोहन राय से लेकर महात्मा गांधी तक जितने चिन्तनशील महापुरुष पैदा हुए, सबने जाति भेद पर प्रहार किया जिससे वह काफी ढीली हो गयी। किन्तु इन दिनों हम देख रहे हैं कि वह अधिक मजबूत हो रही है। आखिर यह क्यों हो रहा है?

स्पष्ट है कि चुनाव में जाति भेद का विचार आता और उसे बल मिलता है। चुनाव के दूसरे दोष ये हैं कि उससे परस्पर द्वेष पैदा होता है, पैसा और समय बरबाद होता है। आज चुनाव को जरूरत से ज्यादा महत्त्व दिया गया है। किसी

महत्त्वपूर्ण चीज को भी अगर गलत महत्त्व मिल जाता है तो मनुष्य-समाज गुमराह हो जाता है। स्वराज्य प्राप्ति के पहले राजनीति में जो ताकत थी वह स्वराज्य-प्राप्ति के बाद सामाजिक और अर्थ विकास के काम में आये इस तरह सोचना चाहिए। इस दृष्टि से आज के चुनाव के तरीके में क्या परिवर्तन करना चाहिए, इस पर जरा सोचिये। ऐसे तरीके का संशोधन हो जिससे आज का खींचा-तानी का काम, जो ज्यादा होता दिखाई दे रहा है उससे हम छुटकारा पा सकें।

सामूहिक कार्यक्रम आवश्यक

हमने कई बार इस पर सोचा और कहा भी है। उसके लिए गहरा चिंतन होना चाहिए। मैं ऐसा ही चिंतन करता हूँ जिसमें कुछ बातें सूझती हैं। मुझे जो कुछ विचार सूझते हैं उनमें से जो आज की परिस्थिति में सम्भव हैं उनके बारे में कुछ कहूँगा। पहली बात यह कि चुनाव का क्षेत्र सीमित हो जाय। जहाँ केवल जनसेवा-कार्य करने की ही जिम्मेदारी है वहाँ व्यर्थ ही राजनैतिक पक्ष का अभिनिवेश न हो। वे चुनाव पार्टी की तरह से न लड़े जायें। जैसे म्युनिसि-पैलिटी, लोकल बोर्ड आदि के चुनाव पार्टी की तरह से न लड़े जायें। इस बात पर लोग सोचें तो उनके ध्यान में आयेगा कि इससे बड़ा लाभ होगा। म्युनिसिपैलिटी, लोकल बोर्ड, ग्राम-पंचायत आदि में जन-सेवा के कार्य करने पड़ते हैं। उनमें विभिन्न राजनैतिक पक्षों का अधिक सम्बन्ध नहीं आता है और न आना ही चाहिए। हिन्दुस्तान जैसे विशाल और विकासशील देश में यही दृष्टि रखनी होगी। जैसे हमें 'शिक्षा सभा' इस अर्थ में कहा है कि पक्षों का बोलबाला गिर गया है और नामोनिशान नहीं है। ऐसी स्थिति में यह भी कमी है कि विभिन्न राजनैतिक पक्षों के लोगों को चार एक सामान्य कार्यक्रम मिले और सभी उस पर चलें। उनके अपने अपने जो राजनैतिक विचार और दर्शन हैं उन्हें छोड़ने की बात मैं नहीं करता। किन्तु यह जरूर चाहता हूँ कि विभिन्न राजनैतिक पक्ष के प्रमुख लोग अपने-अपने क्षेत्रों में विचार करें और दर्शन की बातें करें, कोई एक सामूहिक कार्यक्रम तय किया जाय जो सबको मान्य कर सके ऐसा हो।

विचार मंथन हो, पर आचार-संघर्ष नहीं

अगर कोई कहे कि ऐसा कोई भी सामूहिक कार्यक्रम नहीं मिल रहा है, तो कहना होगा कि यह सारी दुर्बलों की बातें हैं। लेकिन मैं मानता हूँ कि ये सारे दुर्बल नहीं बल्कि सज्जन हैं। सज्जनों में इस तरह के समान कार्यक्रम होते हैं, तभी तो वे व्यवस्था का काम कर सकते हैं। हम मानते हैं कि ये सारे सज्जन हैं, इसलिए उनके बीच समान आचार का कोई कार्यक्रम उपलब्ध होना चाहिए, जिसमें सबकी एक राय होगी और उसी पर जोर दिया जायगा। अगर यह मामला चले तो इस समय जिस तरह आचारों का संघर्ष हो रहा है, वह नहीं होगा। प्रजा के सामने अनेक राय रखी जाने से प्रजा का बुद्धि-भेद होता है। यहाँ की प्रजा पहले ही से अकर्मण्य है फिर इस तरह का बुद्धि भेद पैदा होने से अकर्मण्यता और भी बढ़ जायगी। भिन्न भिन्न पक्ष एक दूसरे का खण्डन करते रहेंगे, तो प्रजा की श्रद्धा स्थिर नहीं होगी। इसलिए कोई एक साधारण कार्यक्रम ढूँढ़ना चाहिए। उससे आज के चुनाव में जो कटुता पैदा होती है वह कम होगी। यह काम बहुत जरूरी है। इसीलिए मैं चाहता हूँ कि विचार मंथन चले पर आचार-संघर्ष नहीं।

उचित मूल्यमापन हो

म्युनिसिपैलिटी लोकल-बोर्ड और विद्यापीठों में राजनैतिक पक्ष नहीं आना चाहिए। वहाँ राजनीति की चर्चा शुरू करने पर उनका आयोजन सर्वमान्य विचार से हो उसमें राजनैतिक पक्ष न हो। इसी तरह म्युनिसिपैलिटी आदि के चुनाव भी राजनैतिक पक्ष की तरफ से न हों। यदि लोगों को यह विचार मान्य हो जायगा तो फिर ऐसा कानून बनाया जा सकता है। उनके चुनावों के लिए जो भी खड़ा होगा वह सेवक के नाते ही खड़ा होगा और लोग भी जिसे चुनेंगे, अच्छा सेवक मानकर ही चुनेंगे। फिर आज चुनाव में जो कटुता और झगड़े होते हैं, उनमें लोगों को जो दिलचस्पी मालूम होती तथा स्वार्थसाधकों को उसमें जो अवसर मिलता है इन बुराइयों से हम बरी हो जायेंगे।

हमें थोड़ा तारतम्य और विवेक सीखना चाहिए। किस चीज को कितना महत्त्व दिया जाय, इसका लोगों को भान होना चाहिए। फिर चुनाव में आजकी

दिलचस्पी नहीं रहेगी और सामाजिक एवं लोक-शक्ति के कार्यों में लोगों को अधिक दिलचस्पी मालूम होगी। आज तो हिन्दुस्तान में मूल्यांकन के बिना ही काम चल रहा है। किस चीज को कितना महत्त्व दिया जाय, यह हम जानते ही नहीं। लेकिन यदि इसका भान हो जाय, तो भूदान का महत्त्व सबको मालूम हो जायगा और सब उसमें जुट जायेंगे, जिससे ताकत पैदा होगा।

सब लोग संकल्प करेंगे तो दो-चार साल में यह काम खतम हो जायगा। किन्तु यह संकल्प तब होगा, जब आज का गलत मूल्यमापन खतम हो जायगा और लोगों को इसका ख्याल हो जायगा कि किस चीज को कितना महत्त्व देना है।

गया
१३-१-५७

वेदांत और अहिंसा का समन्वय : ४१ :

[बोधगया में 'समन्वयाश्रम' की स्थापना के समय दिया गया भाषण]

वेदान्त और अहिंसा दोनों परस्पर अविरुद्ध हैं। दोनों एक-दूसरे के कार्य-कारण हैं। वेदान्त में से सीधी अहिंसा प्रतिष्ठित होती है और अहिंसा के लिए बिना वेदान्त के कोई पक्की मजबूत बुनियाद नहीं हासिल होती। वेदान्त का आधार छोड़ अहिंसा का कितना ही बखान क्यों न करें, वह मामला ढीला ही रह जायगा। वह पक्का तभी बनेगा, जब उसे वेदान्त का आधार मिलेगा। यह सारी प्रक्रिया गीता के एक श्लोक में बहुत ही संक्षेप में कही गयी है।

'समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्॥

अर्थात् जो मनुष्य सर्वत्र परमेश्वर के अस्तित्व को समान रूप में देखता है, यह हुआ वेदान्त। इसके परिणामस्वरूप वह हिंसा ही नहीं कर

उसका क्योंकि हिंसा के लिए जो भी हथियार उठाया जायगा वह अपने खुद के विनाश करनेवाला ही होगा। इसलिए जो आत्महिंसा नहीं करेगा वह परम गति पायेगा। यहाँ मूल बुनियाद समान परमेश्वर के दर्शन की अर्थात् वेदान्त की है, उस पर से अहिंसा की जीवन-निष्ठा और उसका अन्तिम परिणाम परम गति—इस तरह एक श्लोक में सारे विचार के लिए आदि से अंत तक (बुनियाद से शिखर तक) सबकी समन्वय गीता के इस अद्भुत श्लोक में बता दिया गया है।

सत्य और वेदांत

बापू वेदान्त के बजाय 'सत्य' का नाम लेते थे और उसके साथ अहिंसा जोड़ देते थे। वे कहते थे कि 'सत्य और अहिंसा ये एक ही दिव्य तत्त्व हैं। दोनों मिलकर एक ही तत्त्व होता है।' इस तरह 'सत्य' शब्द को वे पसन्द करते थे। मैंने सोचा कि सत्य का उद्बोधन जितनी प्रखरता से वेदान्त में होता है, उतनी प्रखरता से और किसी ग्रन्थ में नहीं होता। इसलिए 'सत्य' शब्द का अर्थ 'वेदान्त' ही हो जाता है। वेदान्त याने वेद-सार, तत्त्वज्ञान का सर्वसार, जो कि सत्य है। यह भी वेदान्त में ही बताया गया है कि वह अन्तिम तत्त्व सत्य ही है और उसके अन्दर सभी का सारा जीवन-विचार निहित है। इसलिए जिसे बापू 'सत्य' कहते थे वही हिन्दुस्तान और आम समाज की भाषा में 'वेदान्त' होता है।

'सत्य' शब्द परम तत्त्व का सूचक है और 'वेदान्त' समन्वय का। याने सत्य के दर्शन के अनेक पहलू होते हैं। वे सारे अनेक पहलू जहाँ इकट्ठा होते हैं, वहाँ किसी एक विचार के अंश का आग्रह मिट जाता है। उसीको 'वेदान्त' कहते हैं। आचार्य गौडपाद ने स्पष्ट कह ही दिया है:

स्वसिद्धान्तव्यवस्थासु द्वैतिनो निश्चिता दृढम्।
परस्परं विरुध्यन्ते तैरयं न विरुध्यते॥

अर्थात् "सारे आप आपस आपस में लड़ते हैं लेकिन आप हमसे नहीं लड़ सकते। आप सारे हमारे पेट में हैं।"

समन्वय का काम

हम तो नम्रतापूर्वक तमाम सत्य-दर्शन और उसके साथ अहिंसा—इस दर्शन का ऐलान करते हैं। हमें अपने जीवन और दर्शन में इन्हीं दो बातों का समन्वय

करना होगा। अभी तक समन्वय करने की जो कोशिश की गयी उसमें हमें एक दिशा मिल गयी। फिर भी उसमें परिपूर्णता नहीं होती और शायद कभी होगी भी नहीं। आज हमारे लिए भी भगवान् ने समन्वय करने का बड़ा भारी कार्यक्रम रखा है और भूदान यज्ञ न मालूम हमें किस तरह कहाँ ले जायगा, दूसरा भी अभी कोई अन्दाज नहीं लग रहा है। लेकिन एक-एक कदम हमें उठाना पड़ रहा है। इस सिलसिले में सांस्कृतिक केन्द्र की जो कल्पना जिसे 'समन्वय-आश्रम' या 'समन्वय-मन्दिर' जो भी नाम दिया जाय, पसन्द होती है।

हम शून्य बनें

इस काम के लिए हम आप सब लोगों का हृदय से सहयोग चाहते हैं। सहयोग का जैसा अर्थ दुनिया में किया जाता है, साधारणतः वैसा अर्थ हमारे मन में नहीं है। हम चाहते हैं कि अपने हृदय में हम यही मान रखें कि एक परमेश्वर की हस्ती है और बाकी हम सब जो भी हैं, वह शून्य है। उसीके अन्दर, उसीकी लीला से हमें ये सारे रूप मिले हैं। शून्य को भी एक रूप होता है। उसका भी एक आकार दिखाया जाता है। वह भी निराकार नहीं होता। इसी तरह हमें भी आकार मिला है। फिर भी हमें शून्य बनना चाहिए।

बोधगया
१८-४-५४

एक भाई ने कहा था कि जमीन उत्पादन का बड़ा भारी साधन है। इस-लिए यह साधन किसीकी मालकियत का नहीं हो सकता यह बात कुछ समझ में आ जाती है। इस पर मैंने कहा कि यह सिर्फ उत्पादन का साधन नहीं परमेश्वर की भक्ति का भी साधन है। यह बात मैंने अपने अनुभव से कही। इसका अनुभव मैंने स्वयं किया है। ईश्वर की भक्ति के विभिन्न साधन जप, तप ध्यान आदि का थोड़ा-बहुत अनुभव मुझे भी है। लेकिन उन सबसे जितनी ईश्वर भक्ति होती है अर्थात् मनुष्यों के विकार-शमन के लिए जितनी मदद उन उन तरीकों से मिलती है, उससे ज्यादा मदद जमीन पर परिश्रम करने और खुली हवा में कुदाली लेकर काम करने से होती है।

इसीलिए काशी विश्वनाथ के मन्दिर में हरिजनों को न आने देना मुझे जितना गुनाह मालूम होता है, उससे ज्यादा गुनाह यह मालूम होता है कि किसी व्यक्ति को—जो जमीन की काश्त कर सकता हो और उसे करना चाहता हो—हम यह कहकर जमीन देने से इनकार कर दें कि इस जमीन का कोई दूसरा मालिक है। और वे मालिक भी ऐसे जो बिना नोटिस के इस दुनिया से चल बसेंगे और जमीनें कायम ही रहेंगी। अब यह चल नहीं सकता।

एक बार हरिजनों का मन्दिर प्रवेश न हो तो चल सकता है, क्योंकि ईश्वर की भक्ति और उसके दर्शन के उससे भी बेहतर दूसरे तरीके मौजूद हैं। लेकिन बेजमीनों को जमीन की सेवा ईश्वर भक्ति का सबसे उत्तम साधन है। उस साधन से किसीको भी वंचित नहीं कर सकते।

बोधगया
१८-९-५४

गोकुल-वृन्दावन में भगवान् श्रीकृष्ण ने जब गोवर्धन पर्वत उठाने की योजना प्रस्तुत की तो सब ग्वाल बालों से कहा था कि इस पहाड़ के उठाने में आप सब लोगों के हाथ और आप सब लोगों की लकड़ियाँ लगनी चाहिए। फिर गोकुल-वृन्दावन के सभी ग्वाल-गोपालों ने अपनी अपनी लकड़ियाँ लगायीं। कहीं पहाड़ लकड़ी से उठता है ? लेकिन सब लोगों ने लकड़ियाँ लगायीं और अपने अपने हाथ लगाये। कवि लिखता है कि जब भगवान् श्रीकृष्ण ने यह देखा तो अन्त में उन्होंने अपनी अंगुली का स्पर्श उस पहाड़ को करा दिया। फिर क्या था ! वह गोवर्धन-पर्वत उठ खड़ा हुआ। तभी से भगवान् का गोवर्धनधारी नाम पड़ा।

नारायण-शक्ति का आविष्कार

आखिर काम तो भगवान् के नाम से ही होता है। उन्हींकी उँगली का स्पर्श होने पर गोवर्धन-पर्वत उठता है। किन्तु जब सभी लोगों के हाथों का नर-समुदाय का बल मिलता है तभी उसमें नारायण शक्ति दाखिल होती है। नरों के समुदाय में जो नयी शक्ति दाखिल होती है उसे 'नारायण-शक्ति' कहते हैं। जब सिर्फ पांच इकट्ठे होते हैं तो हरएक की एक-एक सेर शक्ति मिलकर पाँच सेर नहीं होती बल्कि पचास सेर होती है। यह विज्ञान का नियम है। समूह या समुदाय में एक नयी शक्ति दाखिल होती है। यह नयी शक्ति ईश्वरीय शक्ति है नारायण शक्ति है और काम उसीसे बनता है। लेकिन वह तब दाखिल होती है जब कि सब लोगों का सहयोग हासिल होता है।

भूदान-यज्ञ में भाग न लेना देशद्रोह

जिस काम में सब लोगों का सहयोग प्राप्त होता है उसीको 'यज्ञ' कहते हैं। जब देश पर कोई संकट आता है तो यज्ञ किया जाता है। अपने देश पर आज संकट मौजूद है। कोई बाहर से संकट आता है ऐसी कल्पना मैं नहीं करता। अन्दर ही अन्दर संकट पड़ा है। मजदूर और मालिक का भेद है करोड़ों लोगों के पास

कोई साधन नहीं है, हरिजन और दूसरों में छुआछूत पड़ी है, अनेक धर्म-भेद के झगड़े भी मौजूद हैं। ये सारे संकट आज हमारे देश पर मँडरा रहे हैं। ऐसी हालत में देश को बचाने के लिए जब कोई यज्ञ शुरू होता है, तो अगर उसे कोई अकेला व्यक्ति ही करेगा या पाँच-पचास लोग करेंगे, तो उससे कुछ नहीं बन सकता। यज्ञ में हरएक को अपना हिस्सा अर्पण करना पड़ता है, जैसे गाँव की होली होती है, तो हर घर से लकड़ी जाती है। इस यज्ञ में जो लोग अपना हिस्सा नहीं देंगे, वे देशद्रोही सिद्ध होंगे, यह मैं जाहिर करना चाहता हूँ। देश की इस समय माँग है कि भूमिहीनों का मसला हल करने के लिए, यह यज्ञ उठाने के लिए हर किसीका दान-पत्र मिलना चाहिए।

बोधगया

१८-४-'५४

जीवन-दान । ९४ ।

[श्री जयप्रकाश नारायण ने भूदान-यज्ञ के लिए अपना जीवन-दान देने का संकल्प घोषित किया, जिससे जीवन-दान-यज्ञ का आरम्भ हुआ। उसके बाद विनोबाजी ने जयप्रकाशजी को एक पत्र लिखकर निम्नलिखित शब्दों में अपना भी जीवनदान घोषित किया।]

श्री जयप्रकाशजी

यज्ञ आपने जो आवाहन किया था उसके जवाब में—

भूदान-यज्ञ-मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति के लिए मेरा जीवन समर्पण।

सर्वोदय पुरी

१०-४-'५४ —विनोबा

यह विज्ञान का जमाना है। विज्ञान की रफ्तार तेज होती है। हम मन्द-मन्द गति से समाज-सुधार का काम करें तो जमाना हमारे लिए नहीं रुकेगा। इसलिए काम की गति बढ़े यह जरूरी है। इस बार के बोधगया-सर्वोदय-सम्मेलन में एक नयी घटना घटी जिसने सारे देश को प्रभावित किया। वह था 'जीवनदान' का घोष। भूदान में से सम्पत्तिदान, ग्रामदान, ये सब निकले, किन्तु उन सबकी पूर्ति जीवनदान में होती है। इसका असर सारे देश पर होगा। उससे भूदान के काम की गति बढ़ेगी।

षष्ठांश दान और स्वत्व मिटाने में विरोध नहीं

समाज में परिवर्तन लाने की बात भूदान की नींव में है। भूमि का मसला सारे एशिया का मसला है। वह दूसरे कई देशों में भी है, पर हिन्दुस्तान का यह प्रमुख मसला है। इसी मसले को लेकर हम लोग काम कर रहे हैं। यह भूदान का बाहरी रूप है। किन्तु भूदान का भीतरी रूप ज्यादा महत्त्व का है। जितना लोग इसे समझेंगे, उतना ही उनमें जोश आयेगा। उसका भीतरी रूप यह है कि समाज का सारा ढाँचा बदल दें। पर लोग इसे नहीं समझते। वे समझते हैं कि इससे गरीबों को मदद मिलेगी, अच्छा काम है। इसलिए जितनी हो सके, उतनी अपनी ओर से मदद पहुँचानी चाहिए। इस दृष्टि से भी लोगों ने भूदान में मदद दी है।

अभी हमने 'ग्रामधर्म' पर व्याख्यान देते हुए कुछ बुनियादी चीजें समझायी थीं। उनमें यह भी एक था कि भूमि पर किसीकी मालकियत नहीं है। लोग कहते हैं कि यह तो नयी बात है। हम तो समझते थे कि राजा मालकियत को पहचानता था, तभी तो वह भूमि का छठा हिस्सा माँगता है। अगर ऐसा नहीं होता तो वह सारी-की-सारी जमीन माँगता। आज तीन साल से मैं बार बार

कहता आ रहा हूँ कि हवा, पानी, सूरज की रोशनी और जमीन परमेश्वर की देन हैं। इसलिए वे सबकी चीजें हैं और सबके उपभोग के लिए हैं। जैसे हवा पानी का कोई मालिक नहीं, वैसे ही जमीन का भी कोई मालिक नहीं है। उसका मालिक तो एक भगवान् ही है। इसलिए हम सबको मिल और बाँटकर उसका उपयोग करना चाहिए। मैंने भूमि का छठा हिस्सा दान भी माँगा है। जमीन पर किसीकी भी मालकियत नहीं है। इसमें कोई विरोधाभास नहीं है।

उपनिषद् के आधार पर नयी रचना

हम लोग इस विचार पर समाज की रचना करना चाहते हैं। 'भगवान् ने हमें जो बुद्धि, शक्ति और सौन्दर्य दी है, वह समाज की सेवा के लिए है। उसका स्वतन्त्र भोग करना उचित नहीं। समाज को समर्पण करने के बाद ही हम उसे भोग सकते हैं।' इसी बुनियादी भावना को हमें फैलाना और उस पर समाज-रचना करनी है। यह कोई नया विचार नहीं। अपने उपनिषदों में भी यही बात लिखी गयी है।

"ईशावास्यमिदं सर्व यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथाः ॥"

अर्थात् यह समस्त जगत् ईश्वरमय है और समर्पण करके ही प्रसाद के रूप में उसका भोग करना चाहिए। इससे बढ़कर कोई और सन्देश किसी शास्त्र में नहीं दिया गया है। कम्युनिज्म में भी यह भावना पायी जाती है, पर वह बहुत ही कम है। कारण वे ईश्वर के अस्तित्व को नहीं पहचानते। इसलिए वहाँ दान की बात नहीं है, छीनने की बात है। वे ईश्वर को समर्पण नहीं करते, यही कम्युनिज्म की कमी है। पर कम्युनिज्म का सार यही है, जो ईशावास्य में परिशुद्ध पद्धति और निर्दोष ढंग से बताया गया है। आज तक इस बात को सोचा गया, किन्तु उस पर समाज-रचना करने की बात अब तक नहीं चली। आज के समाज में व्यक्तिगत मालकियत मानी गयी है। हमारी सरकार, कानून और संविधान सभी इसीके आधार पर बने हैं। किन्तु हम लोग इस विचार को आमूल बदल देना चाहते हैं। हम उस राजनीति को ही बदलना चाहते

हैं। यहाँ तक कि उस 'राजनीति' शब्द के बदले हम 'लोकनीति' शब्द उसे ही स्थापित करना चाहते हैं।

नित्य दान की आवश्यकता

भगवान् शंकराचार्य ने 'दान' की व्याख्या की है। उन्होंने कहा है कि "दानं संविभागः" दान याने दूसरों पर उपकार करना नहीं बल्कि अपनी चीज का सम्यक् विभाग करना। यह कोई शंकराचार्य की निकाली हुई चीज नहीं है। यह परिभाषा तो सारे वैदिक दर्शन में है। सर्वत्र दान का अर्थ 'सम-विभाजन' ही माना गया है। फिर भी आज हम तो सारा नहीं माँगते सिर्फ छठा भाग ही माँगते हैं यद्यपि कहीं-कहीं पूरे के पूरे गाँव मिले हैं। जैसे—उड़ीसा में १६ १७ गाँव उत्तर प्रदेश में दो तीन गया जिले में दो-तीन और पलामू जिले में १५ १६ गाँव दान मिले हैं। इतनी बड़ी क्रान्ति लाने के लिए हमें कदम-कदम चलना चाहिए। पहले लोग विचार पसन्द करें और फिर उसे मान्य करें। प्रारम्भ में छठा हिस्सा मिलने पर ही प्रस्तुत मसला हल हो जायगा। पाँच करोड़ एकड़ जमीन मिल जाय, तो आज का काम निभ जाता है। आगे बढ़कर फिर और माँगा जायगा।

किन्तु ध्यान रहे कि एक बार दान दे देने से छुटकारा नहीं। जैसे एक बार खाना खाने से छुटकारा नहीं होता और शरीर चलाने के लिए समय-समय पर फिर खाना पड़ता है वैसे ही समाज में दानक्रिया भी नित्य चलेगी जब तक भोगक्रिया चलती है। दान में धर्म है, पाप का क्षालन करने का कार्य है। धर्म और दान नित्य करने चाहिए। 'परसेंट' में दान देना नित्य का काम नहीं पर भूदान का काम नित्य कर्तव्य है। जब तक आप समस्या की आवश्यकता मान्य न करें तब तक भूदान देना आपका काम है। यह तो आरम्भ मात्र होना चाहिए। छठा भाग आरम्भ का दान है, आखिर में कुल जमीन दे देनी होगी। सारी जमीन गाँव की होगी। यद्यपि सहूलियत के लिए वह अलग-अलग बँटी जायगी, किन्तु वह हमेशा कायम का न रहेगा। पाँच-दस साल बाद फिर बँटवारा होगा। इस तरह लोकनीति व्यवस्था में जो कमी-बेशी होगी बाँटने की क्रिया भी चलती ही रहेगी।

इस प्रकार दान और आत्मचिन्तन में कोई विरोध नहीं है। आत्मा शरीर से भिन्न है और वह अमर है। मैं शरीर नहीं हूँ। शास्त्रकार कहते हैं कि शरीर को परिपुष्ट बनाकर ही खाना चाहिए। देह को उसके आधार से ही मजबूत बना कर खाना है। इस प्रकार दान की प्रवृत्ति जब तक चलेगी, तब तक दान ही बढ़ जायगा। तभी दान सार्थक होगा। तुलसीदासजी ने कहा है कि फिर तो मांगना ही नहीं करनी पड़ती। इस प्रकार छठे भाग का काम हमेशा चलता रहेगा जब तक वह पूरा नहीं होता। यह आमूलाग्र परिवर्तन करने की बात है।

समाजशास्त्र में भारत यूरोप से आगे

पाश्चात्यों की धारणा है कि 'समाज में आमूलाग्र परिवर्तन सत्ता के जरिये ही हो सकता है। राजनीति में एक पक्ष राज करता है, तो दूसरा विरोधी होता है। इस प्रकार एक-दूसरे को परिशुद्ध करते रहते हैं। इसी प्रकार सत्ता से परिवर्तन होगा। हम बीच भी इसीकी नकल करते हैं। किन्तु आप लोगों को यह मालूम नहीं कि पश्चिम का समाजशास्त्र बहुत ही पिछड़ा हुआ है। आज हिन्दुस्तान में मराठी बंगाली गुजराती तमिलनाड मलबार आदि प्रान्त हैं। ऐसे ही यूरोप में भी भिन्न भिन्न भाषाभाषी देश हैं। हमारे देश में यद्यपि भाषावार प्रान्तों की माँग की जाती है पर कोई भी अपना अलग देश स्थापित करना नहीं चाहता। कोई भी दिल्ली से अलग होने का विचार नहीं करता। इसके विपरीत यूरोप में स्विट्ज़रलैंड, जर्मनी, बेल्जियम, फ्रान्स आदि छोटे छोटे देश हैं। आज भी उनके यहाँ भाषाभिमान विद्यमान है। सारे यूरोप का राजनैतिक विभाजन भाषावार पर ही हुआ है। वहाँ कोई प्राकृतिक सीमाएँ उन्हें विभाजित नहीं करतीं। फ्रान्स और जर्मनी के बीच कोई पहाड़ नहीं है। फिर भी मनुष्यों ने ही 'सीगफ्रीड लाइन' 'मैजिनो लाइन' आदि कृत्रिम दीवारें बनाकर अपने अपने देश को अलग कर लिया है। फ्रेंच और जर्मन भाषाएँ इतनी मिलती जुलती हैं कि लोग उन्हें १५ दिनों में ही सीख सकते हैं। फिर भी वे एक नहीं होंगे और न तो एक समूचा ही देश बनायेंगे। किन्तु हमारे यहाँ

ऐसी स्थिति नहीं है। मताधिकार प्राप्त की माँग भी स्त्रियों की ओर से किसी के लिए की गयी है। और अपना राज्य या देना अच्छा नहीं जानते। इस तरह स्पष्ट है कि समाजशास्त्र की रचना में यूरोप हिन्दुस्तान से बहुत पिछड़ा है।

दूसरी मिसाल यह है कि यहाँ किसीको यह शंका नहीं होती कि स्त्रियों को मत देने का अधिकार देना चाहिए या नहीं? मैं मानता हूँ कि हमारे यहाँ की स्त्रियाँ बहुत अधिक पिछड़ी हुई हैं। हमें उन्हें उठाना और सामने लाना होगा। फिर भी हमने उन्हें मत देने का अधिकार बिना किसी संकोच के दे दिया है। इसके विपरीत यूरोप के कुछ देशों में आज भी स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त नहीं है। चालीस साल पहले इंग्लैण्ड में पुरुषों के विरुद्ध स्त्रियों का आन्दोलन हुआ। विधान-सभा में बम फेंके गये, तब कहीं जाकर उन्हें मताधिकार प्राप्त हुआ। हमारे देश में ऐसा कोई झगड़ा नहीं हुआ। इस प्रकार भी स्पष्ट है कि दुनिया के अन्य देशों से हम समाजशास्त्र में आगे बढ़े हुए हैं।

आज का सदोष चुनाव-पद्धति

आश्चर्य है कि फिर भी हम लोग आँख मूँदकर पाश्चात्य-पद्धति स्वीकार कर लेते हैं। यह नहीं सोचते कि उसका परिणाम क्या होगा? जब कि हमारे यहाँ 'पाँच बोले परमेश्वर' और एकमत से काम होता था। परिणाम में चार विरुद्ध एक, तीन विरुद्ध दो प्रस्ताव पास हो जाते हैं। अदालत में न्याय के काम चलते हैं और वहाँ भी तीन विरुद्ध दो का फैसला लेकर कभी अभियुक्त फाँसी पर चढ़ाये जाते हैं। इतना भी नहीं सोचते कि फाँसी के बदले कुछ हल्की सजा क्यों न दी जाय? वस्तुतः बहुमत का यह जो विचित्र विचार हम लोगों ने पश्चिम से स्वीकार किया यह बड़ा ही खतरनाक है।

सर्वोदय-सम्मेलन में नेहरूजी ने साफ कहा कि 'यद्यपि चुनाव-पद्धति को हमने श्रद्धा से अपनाया, फिर भी उसमें काफी दोष हैं। इसे सुधारना जरूरी है।' इस तरह हम पश्चिम से जो भी चीज लेते हैं, उसे सोच-समझकर लेना चाहिए। दुनिया के सब देशों में चुनाव का यह भूत सवार है और उससे बहुत कुछ हानि भी होती है। किन्तु हिन्दुस्तान के लिए तो इसका परिणाम बहुत ही दुःखद

हुआ है। राजा राममोहन राय से लेकर महात्मा गांधी तक ने जिस जाति-भेद पर प्रहार किया और जिसकी कमर टूट चुकी थी, वह इस चुनाव से फिर खड़ा हो उठा है।

क्रांति पक्षातीत ही होती है

सत्ता या 'पार्टी-पॉलिटिक्स' (दलगत राजनीति) के जरिये क्रांति कभी नहीं होती। वह तो जनमानस में ही होती है। इसलिए उसे पक्षातीत ही होना चाहिए। इसके लिए एक-दूसरे के सामने दिल खोलकर रखने चाहिए। लेकिन आजकल के पक्ष तो एक-दूसरे के अखबार तक नहीं पढ़ते। जैसे जैनधर्मवाले शैवपंथियों की कोई भी बात नहीं अपनाते, वैसे ही ये पार्टियाँ एक-दूसरे से भारी नफरत करती हैं। उनके लिए उनकी पार्टी की पुस्तकें ही वेदवाक्य होती हैं। वे दूसरे के साहित्य को पढ़ते ही नहीं। उनके विचार संकुचित होते हैं। इन बातों के कारण दलबन्दी ही नहीं, गिरोहबन्दी फैल रही है जो दलबन्दी से कहीं ज्यादा खतरनाक है। ऐसी स्थिति में क्रान्ति रुक जाती है। लोग समझते ही नहीं कि इसे देखने के लिए अवकाश चाहिए। विचार-प्रचार के लिए खुले दिल होने चाहिए। पार्टी की सभाओं में खास बातें हो जाती हैं और वे क्रांति को आगे बढ़ने नहीं देतीं। किन्तु भूदान के इस काम से लोगों के मन में इस बारे में कुछ सन्देह पैदा कर दिया है। अब लोग इस बात को समझ जायेंगे तो बड़ी बात होगी।

कोई भी बड़ा आन्दोलन जनशक्ति से ही हो सकता है। आप स्मरण से सोचिये कि पार्टी बनाने से विचार के समझने में मन्द होती है या बिना पार्टी के। अगर बाबा ने पार्टी बनायी होती तो उसका आन्दोलन कैसे चलता! किन्तु आज तो यह निःसंकोच घर घर जाता है। हजार हाथवाले भगवान् को जगाने के लिए यह नारद की तरह से गाँव गाँव घर घर घूमता है। इसके विपरीत पार्टीवाले अपने दिल और संकुचित दृष्टि से बन जाते हैं। भूदान एक पक्षातीत आन्दोलन है। इसीलिए सभी इसे अच्छा काम समझते हैं। पक्षातीत पद्धति से ही क्रांति का उद्गम होगा, सत्ता के जरिये नहीं। यदि जनशक्ति से क्रान्ति हो सकती है, यह बात सिद्ध हो जायगी, तो राजनीतिक विचार में मौलिक

परिवर्तन हो जायगा और न केवल हमारे देश बल्कि सारी दुनिया के लिए नयी राह मिल जायगी। यह दण्डशक्ति और सर्वशक्ति समाज में भरी पड़ी है। सौभाग्य की बात है कि अब इसके मरने का मुक्त उपचार होने लगा है।

सचमुच आज के दलभेद से समाज छिन्न-भिन्न हो गया है। सक्रिय राजनीति को माननेवाले जयप्रकाश बाबू भी आज इसी निश्चय पर आ पहुँचे, यह समझने की बात है। उनके इस परिवर्तन के पीछे गहरा विचार और चिन्तन है। प्रत्यक्ष दर्शन से उन्होंने यह निश्चय किया और जीवनदान समर्पित किया है।

शासनमुक्त समाज की ओर

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ ने यह संकल्प किया है कि हम हिन्दुस्तान-भर में दो साल में २५ लाख एकड़ भूमि प्राप्त करेंगे। जनता ने उसके इस संकल्प को अपना लिया। हजारों उसकी पूर्ति में लग गये और यह संकल्प पूर्ण भी हो गया। संघ के पास और सत्ता कानून का जोर अनुशासन नहीं है। लोगों को यह संकल्प सत्य और साधक लगा और उन्होंने उसे पूरा कर लिया। इस घटना से लोगों के दिलों में विश्वास उत्पन्न हो गया कि बिना सत्ता के आधार के एक जनता संकल्प कर सकती है और उसकी पूर्ति भी हो सकती है। लोग उसकी सफलता के लिए जुट पड़ते हैं। इससे यह भी आशा हो चली है कि शासनमुक्त समाज और पक्षातीत राज्य की स्थापना सम्भव है। इसके लिए स्वतंत्र जनशक्ति पैदा करनी होगी और उसीके साधन के तौर पर यह भूदान-आन्दोलन शुरू किया गया है।

मई १९५३

आज वैशाली पूर्णिमा का दिन है। आज सारी दुनिया में, खासकर एशिया-खंड में बुद्ध भगवान् का जन्म-दिवस मनाया जा रहा है। बुद्ध भगवान् ने दुनिया के लिए जो सन्देश दिया, उसे उन्होंने अपने जीवन से निभाया भी था। उन्होंने वह सन्देश उस समय दिया जिस समय हिन्दुस्तान का सारी दुनिया के साथ विशेष सम्बन्ध नहीं था। उस समय दुनिया को उस सन्देश की उतनी आवश्यकता भी नहीं थी। लेकिन आज सारी दुनिया को उसकी आवश्यकता है। उनका वह सन्देश यह है : वैर से वैर नहीं मिटेगा, क्रोध से क्रोध नहीं जायगा, झूठ से झूठ नाश न होगा। वैर से वैर बढ़ेगा और क्रोध से क्रोध बढ़ेगा। इसलिए वैर का मुकाबला प्रेम से, क्रोध का मुकाबला शान्ति से और असत्य का मुकाबला सत्य से ही करना होगा।

आज विश्व को बुद्ध-सन्देश की प्यास

इस समय दुनिया को इस बुद्ध-सन्देश की अत्यन्त आवश्यकता है। आज दुनिया में असमाधान और अशान्ति व्याप्त है। सारी दुनिया शान्ति की तलाश में है, लेकिन वह मिलती नहीं। सारी दुनिया में कशमकश चल रही है, परस्पर भय बढ़ रहा है। शस्त्र-अस्त्र ताकतवाले सारे देश एक-दूसरे से भयभीत हैं। छोटे-छोटे देश तो डर रहे ही हैं, लेकिन अमेरिका और रूस जैसे बड़े बड़े देश भी डरने लगे हैं। दुनिया पहले कभी इतनी भयभीत नहीं हुई। जब विभिन्न देशों को एक-दूसरे का ज्ञान ही न था तो डरने की बात दूर ही रही। लेकिन आज दुनिया के किसी एक कोने में एक छोटी सी हलचल होती है, तो सारी दुनिया पर उसका असर हो जाता है। यह सब विज्ञान से ही हुआ है। अगर विज्ञान का परिणाम यही होगा कि वह तो मानव-जाति हिंसा और वैर बढ़ाकर नाश से सर्व अपना खात्मा कर लेगी या हमें अहिंसा का आसरा और

किन्तु जिस चोरी की कानून के अन्दर गिनती नहीं होती उसे हम नहीं हटाते। अतिरिक्त तनखाह, अतिरिक्त मुनाफा, ब्याज इत्यादि आखिर यह सब चोरी ही तो है। इसलिए हमें इनसे भी मुक्ति पानी ही चाहिए। संग्रह पर काबू रखना चाहिए। संग्रह भी बढ़े और अहिंसा भी चले, यह कभी सम्भव नहीं। लोग पूछेंगे कि [illegible], क्या यह सब संग्रह नहीं है? नहीं अगर सारे समाज का ऐश्वर्य बढ़ता है तो वह हिंसा नहीं है। दूसरों को लूटकर अपने घर में संग्रह करें तो वह हिंसा होती है। समाज लक्ष्मीवान् बने तो हम खुश ही हैं। किन्तु आप 'लक्ष्मीवान्' किसे कहेंगे? मान लीजिये कि सारा समाज बीड़ी पीता है, हर रोज हरएक व्यक्ति एक बण्डल की बीड़ी-सिगरेट पीता है तो यह अच्छा नहीं है। बीड़ी-सिगरेट की ऐसी समृद्धि हो जाय, तो उसे ऐश्वर्य आप ऐसा नहीं कहेंगे। अच्छी चीजें बढ़ने पर ही जीवन समृद्ध होता है। दूसरों को जो चीज नहीं मिलती वह मैं ले लूं यह सबसे बड़ा गुनाह है। आज हम लोग सब बातों में अपनी ही सोचते हैं दूसरों का खयाल ही नहीं करते। इसीलिए अपरिग्रह, अस्तेय, संयम, ये तीन बातें अहिंसा के साथ जोड़ी जायें तभी वह टिक सकती है।

पृथ्वी के रक्षक को छठा हिस्सा

शास्त्रों का कहना है कि जो जमीन का संरक्षण करता है, उसे छठा हिस्सा देना चाहिए। हम कहते हैं कि आज पृथ्वी का रक्षण मजदूर ही करते हैं। सारा भार उन्हीं पर है। वे ही दुनिया के नाथ हैं और जगत् के लाल हैं। यह नाम गांधीजी ने उनको दिया था। इसलिए मजदूरों को छठा हिस्सा मिलना चाहिये है। "इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।" जिन्होंने इसी जिन्दगी में साम्ययोग साधा उन्होंने इसी जिन्दगी में स्वर्ग जीत लिया। तुलसीदासजी ने कहा है :

'को जाने को जैहै जमपुर को सुरपुर परधाम को।
तुलसिहि बहुत भलो लागत जग-जीवन राम-गुलाम को॥'

कौन जानता है कि कौन स्वर्ग में जाता है और कौन नरक में। इसलिए वे इसी जिन्दगी में भगवान् का गुलाम बनकर रहना पसन्द करते हैं।

समाज के लिए भटक रहा है। वह शान्ति में नयी शक्ति की तलाश कर रहा है। इसीलिए हम गाँव-गाँव जाते, लोगों को प्रेम से समझाते और भूमिहीनों के लिए जमीन माँगते हैं। अगर इस तरह भूमिहीनों को जमीन मिल जायगी, तो शान्ति कायम रहेगी। किन्तु हम केवल कहते चले जायँ कि 'शान्ति रखो, निर्वैरता से रहो' तो शान्ति कैसे रहेगी? आज तक तो हम दूसरों से छीनते-झपटते रहे, संकुचित भावना रखते आये। यह संकुचित भावना विज्ञान के लिए शोभास्पद नहीं है। विज्ञान ने यह संकीर्णता कम कर दी है। बुद्धि व्यापक हो गयी, पर हृदय अब भी संकुचित ही है। अतः हरएक व्यक्ति को यह तालीम मिलनी चाहिए कि देने से निर्वैरता आयेगी। उसके बगैर भगवान् बुद्ध का सन्देश कोरा ही रहेगा, अमल में नहीं आयेगा।

तीन आधार : संयम, अस्तेय, असंग्रह

भगवान् बुद्ध, महावीर और अन्य ज्ञानी पुरुषों ने अहिंसा के साथ और भी दूसरी बातें बतायी हैं। उन्होंने कहा है कि अहिंसा के साथ-साथ अस्तेय, अपरिग्रह और संयम भी होना चाहिए। उनके बिना अहिंसा और समता रखना टिक नहीं सकती, यह उनका परम निश्चय था। जैसे-जैसे मैं सोचता हूँ, इसमें मुझे उनकी दीर्घदृष्टि दीखती है। अगर हम संयम का पालन न करें और भोग-विलास में डूब जायँ, तो दुनिया के सामने फिर सवाल खड़ा हो जायगा, मानव मानव को खत्म करने लगेगा। आज तो लड़ाई में केवल हत्या होती ही है, पर कल कोई डाक्टर कहेगा कि मनुष्य का मांस पौष्टिक पुष्टिकारक होता है, तो लोग मनुष्य का मांस भी खाने लगेंगे। भोग-विलास बढ़ेगा, तो संख्यासुर उत्पन्न होगा। पुराणों में अनेक असुर कहे गये हैं। अगर मानव की संख्या बढ़ गयी, तो मानव मानव को खा जायगा। आपने सुना होगा कि जानवरों में कई अपने बच्चों को ही खा जाते हैं। हम कहते हैं कि अगर मनुष्य भोग-विलास न छोड़ेगा, तो यही हालत होगी। इसलिए यदि अहिंसा लानी है, तो संयम आवश्यक है।

दूसरी बात है अस्तेय यानी चोरी न करने की बात। हमने इसे एक हद तक बताया है। जो चोर मामूली चोरी करता है, उसे हम जेल में डाल देते हैं।

किन्तु जिस चोरी की कानून के अन्दर गिनती नहीं होती, उसे हम नहीं हटाते। अतिरिक्त तनख्वाह अतिरिक्त मुनाफा ब्याज दलाली आदि ये सब चोरी ही तो है! इसलिए हमें इनसे भी मुक्ति पानी ही चाहिए। संग्रह पर काबू रखना चाहिए। संग्रह भी बढ़े और अहिंसा भी बढ़े यह कभी सम्भव नहीं। लोग पूछेंगे कि रेफ्रिजरेटर, लाउडस्पीकर, क्या यह सब संग्रह नहीं है? नहीं अगर सारे समाज का ऐश्वर्य बढ़ता है तो वह हिंसा नहीं है। दूसरों का लूटकर अपने घर में संग्रह करें तो वह हिंसा होती है। समाज लक्ष्मीवान् बने, तो हम खुश ही हैं। किन्तु आप 'लक्ष्मीवान्' किसे कहेंगे? मान लीजिये कि सारा समाज बीड़ी पीता है हर रोज हरएक व्यक्ति एक रुपये की बीड़ी-सिगरेट पीता है तो यह अच्छा नहीं है। बीड़ी सिगरेट की ऐसी समृद्धि हो जाय, तो उसे ऐश्वर्य आप ऐसा नहीं कहेंगे। अच्छी बातें बढ़ने पर ही जीवन समृद्ध होता है। दूसरों को जो चीज नहीं मिलती वह मैं ले लूँ यह संग्रह है, गुनाह है। प्रायः हम लोग सब बातों में अपनी ही सोचते हैं दूसरों का खयाल ही नहीं करते। इसीलिए असंग्रह अस्तेय संयम ये तीन बातें अहिंसा के साथ जोड़ी जायें तभी वह टिक सकती है।

पृथ्वी के रक्षक को छठा हिस्सा

शास्त्रों का कहना है कि जो जमीन का संरक्षण करता है, उसे छठा हिस्सा देना चाहिए। हम कहते हैं कि आज पृथ्वी का रक्षण मजदूर ही करते हैं। सारा भार उन्हीं पर है। वे ही दुनिया के नाथ हैं और जगत् के तात हैं। यह नाम गांधीजी ने उनको दिया था। इसलिए मजदूरों को छठा हिस्सा मिलना लाजिमी है। "इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।" जिन्होंने इसी जिन्दगी में साम्ययोग साधा, उन्होंने इसी जिन्दगी में संसार जीत लिया। तुलसीदासजी ने कहा है :

को जाने को जैहै जमपुर को सुरपुर परधाम को।
तुलसिहि बहुत भलो लागत जग जीवन राम गुलाम को॥

कौन जानता है कि कौन स्वर्ग में जाता है और कौन नरक में? इसलिए वे इसी जिन्दगी में भगवान् का गुलाम बनकर रहना पसन्द करते हैं।

जीवन-दान के लिए आह्वान

यह आन्दोलन इस लोक को ही स्वर्ग बना देगा। विज्ञान के साथ अहिंसा को जोड़ दें तो हम इसी दुनिया में स्वर्ग ला सकते हैं। भूदान-यज्ञ उसके लिए है। उसका नाम ही 'सर्वोदय' है। यह सर्वोदय कब होगा? जैसे यति-वर्ग, भिक्षु-वर्ग, भगवान् बुद्ध के अनुयायी निकले वैसे ही जीवन-दानी निकल पड़ने पर यह काम होगा। महावीर और बुद्ध ने समझ लिया था कि हजारों की तादाद में सर्वस्व की बाजी लगाकर जब यह भिक्षु-वर्ग घूमेगा तभी विचार का प्रचार होगा। भगवान् बुद्ध तो कहते भी थे "भमिरवे रमन्ति" के मानी होते हैं, वे घर में आनन्द नहीं मानते। उनको घूमने में ही उत्साह है। वे निरन्तर घूमते हैं, सेवा करते हैं। राग-द्वेष, निन्दा-स्तुति, मान-अपमान सब भगवान् को अर्पण करके काम करते हैं। वैसे ही आज भी जब लोग 'बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय' नहीं 'सर्वजनहिताय सर्वसुखाय' निकल पड़ेंगे, तभी यह काम होगा। अगर समाज की रचना अहिंसात्मक चाहते हैं, तो लाजिमी है कि जीवनदानी निकलें।

इसका भी आरम्भ बोधगया में हो गया है। जहाँ तथागत को बोधिवृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त हुआ था वहीं गांधीजी को माननेवाले उनके भक्तगण इकट्ठे हुए थे। उन्हें एक प्रेरणा हुई और जीवनदान शुरू हुआ। इसका प्रारंभ आपके प्रिय नेता जयप्रकाशजी ने किया था। नया समाज बनाने के लिए यह आन्दोलन हुआ और यह आग फैलने लगी। इसके आगे समाज-रचना अहिंसा पर स्थापित करने का कार्यक्रम जोर से चलेगा। मैं देखता हूँ कि यह भगवान् की स्वयं इच्छा है कि शोषणहीन शासनमुक्त मानव-समाज बने। मेरा यह आवाहन है कि जिनके जीवन में कुछ दम हो, जिनके शरीर में प्राण हो, जिनकी बुद्धि में निष्ठा हो वह इस काम में कूद पड़े और भगवान् का आशीर्वाद लें।

मोहनिया
१६-५-'५४

हमसे एक अहम सवाल पूछा गया कि इन दिनों चोरियाँ लूट डकैतियाँ आदि बढ़ रही हैं तो उनके लिए क्या उपाय किया जाय। यह सुनकर हमें आश्चर्य नहीं होता बल्कि इस बात पर आश्चर्य होता है कि आज की हालत में इतने कम अपराध कैसे होते हैं। कम अपराध होते हैं इसका कारण यह है कि यहाँ के गाँव-गाँव के अपढ़ लोगों के खून में सभ्यता पैठी है। इसीलिए यहाँ के लोगों की सहज प्रकृति शान्तिमय सौम्य और संयमशील है।

अहिंसा की ताकत

इस प्रकार याद करने की घटना है। बंगाल में अकाल के कारण लाखों लोग मर गये। उन दिनों हम जेल में थे। वहाँ कुछ लोग कहते थे कि हमारे देश की हालत इतनी गिरी हुई है कि लाखों लोग ऐसे ही मर गये। दूसरे देशों के लोग ऐसी हालत में चोरियाँ करते या हमला करके अनाज लूटते। यह सुनकर मैं दंग हो गया। मुझे यह बात नहीं भायी। अगर यह कि आज तक हम गिरे हुए हैं। तो अवसर न आता आपो। ऐसी बात नहीं है। हमारे देश के लोगों ने ऋषि-मुनियों ने सिखाया है कि हम खुद मर रहे हैं फिर भी किसी को उन्हें बचाने का ध्यान रखें! यह हमने ऐसा एक बहुत बड़ा गुण है बहुत बड़ी शक्ति है। प्राचीन काल से हमें यह सबक सिखायी गयी है। बंगाल में जो मरे वे देश का नाम लेते हुए मरे होंगे। यह कमजोरी नहीं। इसमें अहिंसा की ताकत भी छिपी है। चाहे हम मर जायें पर दूसरों को पीड़ा न देंगे। इस ढंग से जो मरते हैं उनमें अहिंसात्मक प्रतिकार की शक्ति का दर्शन निःसन्देह हो सकता है।

चोरी की सजा

इन दिनों कुछ लोग काम न मिलने के कारण चोरियाँ करते हैं जिससे अपने भूखे बाल-बच्चों को खिला सकें। लेकिन उन्हें पकड़कर न्यायाधीश के सामने खड़ा किया जाता है और वह उसे दो-तीन साल की सजा देता है। वास्तव में इसमें उसके बेचारे बच्चों को सजा भुगतनी पड़ती है, क्योंकि उसे तो जेल में खाना मिल ही जाता है। अगर हमें न्यायाधीश बनाया जाय, तो हम दूसरे किस्म की सजा देंगे। अच्छी तरह से तहकीकात करने पर अगर यह साबित हो जाय कि फलाने व्यक्ति ने चोरी की है तो हम उससे कहेंगे : 'तूने चोरी की है, इसलिए तुम्हें तीन एकड़ जमीन की सजा दी जाती है, तीन साल के जेल की नहीं। इस जमीन में अच्छी तरह से मेहनत करके अपने बाल-बच्चों का पालन-पोषण कर।' हम मानते हैं कि इस तरह की सजा दी जायगी, तो चोरियाँ न होंगी।

आज के समाज में एक अजीब न्याय चलता है। छिटपुट चोरियाँ करने वाले को 'चोर' कहा जाता है और बड़ी चोरी करनेवाले को—संग्रह करनेवाले को—प्रतिष्ठा दी जाती है। समझने की बात है कि जहाँ कोठे-कुठियाँ बढ़ती हैं, वहाँ चोरियाँ बढ़ती हैं। अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वॉशिंगटन ने बचपन की अपनी डायरी में एक वाक्य लिखा है : 'एम्प्टी हैण्ड ए डेविल्स वर्क' याने जो बेकार बैठा रहता है, उसे कूदने के लिए प्रलोभन ही है। अगर हम चाहते हैं कि समाज में चोरियाँ न हों तो समाज की शुद्धि होनी चाहिए। उसके लिए जमीन का बँटवारा करना और उनको काम देना होगा। ग्रामोद्योगों के बिना उनको काम देना असम्भव है। इसीलिए हम सिर्फ राम का नाम नहीं लेते, बल्कि 'सीताराम' का लेते हैं। सीता है जमीन का बँटवारा और राम है, ग्रामोद्योग।

इसके अलावा हमारे चिन्तन में शुद्धि भी होनी चाहिए। संग्रह करना पाप है, शरीर-श्रम टालना पाप है, यह विचार स्पष्ट होना चाहिए। जो थोड़ा काम करके ज्यादा लेता है, बिना श्रम के किसीके घर से हजार रुपया उठा लेता है, उसे हम 'चोर' कहते हैं। तो फिर न्यायाधीश प्रोफेसर आदि भी चोर ही गिने जायँगे, क्योंकि वे मुश्किल से ३-४ घण्टा काम करते हैं और बहुत ज्यादा तनख्वाह

रहते हैं। इसलिए समझना चाहिए कि किसान और मजदूरों को छोड़कर जो कि अपने पसीने से रोटी कमाते हैं, हम सबकी गिनती लूटनेवालों में है। इसलिए हरएक को मन लेना चाहिए कि कुछ-न-कुछ उत्पादक परिश्रम किये बगैर नहीं खायेंगे।

पेमीखार
१६-६-५७

क्रान्ति का त्रिकोण : ४८

हम तीन साल से घूम रहे हैं, फिर भी घूमने का हमारा उत्साह बढ़ ही रहा है। यह इसीलिए कि हमें लगता है कि भूदान-यज्ञ की बुनियाद में एक महान् तत्त्वज्ञान भरा है। जिसे इसका दर्शन होता है, उसे इससे रस मिलता रहता है। यहाँ के पेड़ फलों से लदे हैं। उन्हें भीतर से रस मिलता है, इसीलिए गर्मी में भी नहीं सूखते। इतना ही नहीं, बाहर से ज्यों-ज्यों सूर्य की ओर की मार पड़ती है, त्यों-त्यों वे हरे भरे होते जाते हैं। मतलब यह है कि जहाँ अन्दर से रस मिलता है, वहाँ बाहर का ताप तकलीफ नहीं देता। इसी तरह अन्दर से तत्त्वज्ञान का रस मिलता है, तो तपस्या में उत्साह बढ़ता है और तकलीफ नहीं होती।

आचार्य नरेन्द्रदेवजी का आक्षेप

अभी हमने पढ़ा कि आचार्य नरेन्द्रदेव ने, जो कि उत्तर प्रदेशीय भूदान-समिति के सदस्य हैं, कहा कि 'भूदान का काम तो अच्छा है, लेकिन इसके पीछे कोई महान् तत्त्वज्ञान नहीं दीखता।' इसका उत्तर मैं क्या दूँ। इतना ही कहूँगा कि अगर इसके पीछे तत्त्वज्ञान न होता, तो इन पिछले तीन साल में ढीले पड़ जाते। लेकिन इन तीन सालों में ढीले नहीं हुए, बल्कि उनमें जोर ही आ रहा है। जहाँ एक मामूली विचार से मनुष्य काम करता है, वहाँ उसकी शक्ति धीमी पड़ती है। लेकिन जहाँ विचार की गहराई है, वहाँ काम की शक्ति तेज होती है। नित्य नयी स्फूर्ति मिलती है, जोश में नवीन उभार आते हैं। आप देखते हैं, भूदान-यज्ञ ने सम्पत्ति-दान निकाला, श्रमदान निकाला और अब जीवन-दान भी निकाला। ये सब

भूदान का भी ही नयी नयी धाराएँ हैं। इसका विस्तार इतना होगा कि जितने भी रचनात्मक काम हैं वे सभी इसके अन्दर आयेंगे ही। लेकिन समग्र जीवन के अन्य नैतिक अंग भी इसमें आ जायेंगे। अगर इसके मूल में कोई मजबूत समाधान न रहा तो यह सब न होगा।

आचार्य नरेन्द्रदेव ने यह तो नहीं कहा कि हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया निकम्मी है; लेकिन यह अवश्य कहा कि वे वर्ग-संघर्ष को माननेवाले हैं और केवल हृदय-परिवर्तन से यह काम होगा ऐसा नहीं मानते। इसके माने यही कि कोई व्यक्ति अपना एक निश्चय करके बैठ गया है। अगर ऐसा निश्चय हुआ हो, तो किसी विचार या अनुभव से ही हुआ होगा। लेकिन सृष्टि में नित्य नये अनुभव आते रहते हैं। क्रान्ति की नयी-नयी प्रक्रियाएँ होती हैं। आखिर क्रान्ति वही है, जिसकी नयी-नयी प्रक्रियाएँ होती हैं। अगर उसकी प्रक्रिया एकसुरा होगी तो वह क्रान्ति ही नहीं रहेगी।

क्रान्ति का त्रिकोण

हम कहते हैं कि विचार से कितने मान लिया हो कि वर्ग-संघर्ष से ही क्रान्ति हो सकती है, पर अगर अनुभव के लिए गुंजाइश रखे, तो वह भी अनुभव कर सकता है कि हृदय-परिवर्तन और विचार-परिवर्तन से भी क्रान्ति हो सकती है। हृदय-परिवर्तन मोहब्बत का और विचार-परिवर्तन समझाने का करना पड़ता है। दोनों मिलकर क्रान्ति की प्रक्रिया होती है और यही हमारा कार्यक्रम है। एक तरफ हम विचार समझाते हैं और दूसरी तरफ से हमारा तप चलता है। समझाने से विचार-परिवर्तन होता है और तप से हृदय-परिवर्तन। इन दोनों के साथ इसीके परिणामस्वरूप एक बात और भी आ जाती है परिस्थिति-परिवर्तन। इस तरह क्रान्ति का एक त्रिकोण बन जाता है। पूछा जा सकता है कि परिस्थिति-परिवर्तन के लिए क्या करना चाहिए? कुछ लोगों का खयाल है कि कानून से यह परिवर्तन होगा। फिर कानून के लिए क्या करना होगा? सत्ता हाथ में कैसे लेंगे? यही कि हम लोगों को समझाकर उनका विचार-परिवर्तन करेंगे और उसके जरिये सत्ता हाथ में लेंगे। लोकशाही में यही उत्तर हो सकता है। आखिर केवल विचार-परिवर्तन का रास्ता ही रह जाता है।

असहयोग का शस्त्र

किन्तु हमारे पास तो विचार-परिवर्तन के साथ हृदय-परिवर्तन यानी तपस्या का रास्ता भी है। तपस्या के कई प्रकार हो सकते हैं। गाँव-गाँव पैदल घूमना भी तपस्या का एक प्रकार है। इसके जरिये हम जनता को यह समझा सकते हैं कि वह पाप में हिस्सेदार न बने। आज जगह-जगह बेदखलियाँ चल रही हैं। जमींदारों को बेदखली का अन्याय हम बता सकते हैं। पर वे नहीं समझते तो असहयोग आता है। जनता उनके कामों में सहयोग न देगी। हम कहते हैं कि हमारी प्रक्रिया में असहयोग और सत्याग्रह हो ही सकता है, हमारी प्रक्रिया से कानून भी बन सकता है। हम यह भी कबूल करते हैं कि अगर जनसमूह निराश हुआ तो खूनी क्रांति भी हो सकती है। लेकिन चौथी बात भी बन सकती है यानी भूदान से ही समस्या हल हो सकती है—अगर कार्यकर्ता चारों ओर से इसमें लग जायें और ठीक ढंग से लोगों को विचार समझा दें। जनता का हमें जो परिचय हुआ है, उस पर से हम कह सकते हैं कि यह बात बिलकुल नामुमकिन नहीं है। हम तो इसी आशा से काम करते हैं।

हमने कानून को रोका नहीं है

लेकिन मान लीजिये कि यह आशा सफल नहीं होगी, तो तीन मार्ग रह जाते हैं। इनमें से 'खूनी क्रान्ति' का नाम तो कोई मार्ग ही नहीं है और न वह क्रान्ति ही है। तब सोचने के लिए केवल दो ही उपाय रह जाते हैं, एक कानून का और दूसरा असहयोग का। कानून को हमने रोका तो नहीं है। कानून बने, लेकिन कानून का ढोंग न बने। कानून बराबर बने। हम किसी पार्टी को सत्ता हासिल करने या कानून बनाने से रोकते नहीं। हरएक पार्टी कबूल करेगी कि इस आन्दोलन से कानून बनाने को बल ही मिला है।

कानून की बात चलती है तो सीलिंग की बात की जाती है। और भी दूसरे पचड़े निकलते हैं, उन्हीं में समय चला जाता है। तब तक लोग अपनी जमीन बाँट देते हैं। अभी हैदराबाद में कानून बना है। उसके अनुसार सौ या सवा सौ एकड़ तक जमीन लोग रख सकते हैं। तीन साल पहले हम तेलंगाना में थे तभी इस

कानून भी बन्द पड़ रही थी। लोगों ने उसी से आपस में बँटवारा कर लिया है। धनी लोग प्रायः अल्पमति होते हैं। जिनके पास दौलत और जमीन है, उनके पास अक्ल भी होती है। इसलिए कानून बनाइये, लेकिन ऐसा कि जिससे आप बेवकूफ न बनें।

प्रेम कारगर शस्त्र है

अब रहा असहयोग और सत्याग्रह। यह रास्ता न्याय और धर्म का है। इसमें किसी तरह का द्वेष नहीं है। सत्याग्रह और असहयोग की ताकत द्वेष से पैदा होती है। उपर्युक्त असहयोग तो गौणी बात है। कारगर शस्त्र तो प्रेम ही है। सत्याग्रह की ताकत प्रेम में ही है। जितना प्रेम, उतना ही सत्याग्रह का बल। हम तो कहते हैं कि द्वेष जिस चीज से पैदा होता है उसमें सत्याग्रह है ही नहीं। कुछ लोग सत्याग्रह को जबरी समझते हैं। हम कहते हैं कि फिर प्रेम को ही जबरी समझना होगा। इस जमाने में बन्दूक और नोटों से जबरी का काम होता है। जैसे पिस्तौल की सत्ता चलती है वैसे ही पूँजीवादियों ने पैसों का भी जादू चलाया है। वे किसानों के पास जमीन और सौ रुपये का नोट दिखायेंगे और किसान भी ललचाकर जमीन दे देंगे।

किन्तु पिस्तौल और पैसों की एवज में प्रेम की शक्ति साधारणतया सहयोग के रूप में और विशेष प्रसंगों में असहयोग के रूप में प्रकट होती है। माँ कभी बच्चे को प्रेम से खिलाती है, तो कभी उसे सन्मार्ग पर रखने के लिए तमाचा भी लगा देती है। पर बच्चा जानता है कि यह प्रेम का तमाचा है। यह उदाहरण की बात निकली, इसलिए हम कहते हैं कि नाजायज तरीके से जिसका कब्जा किसीके घर में रखा गया हो तो उसे छीनना भी अहिंसा में आ सकता है। शुकदेव ने श्रीकृष्ण की चोरी के भी गीत गाये हैं। गांधी के जमाने में 'हृदयचोर' (न्याय चोर) विशेष गौरव का विषय बन गया था। ये सारी चीजें प्रेम में आती हैं। इतना प्रेम प्रकट करने के लिए घर-घर जाना और समझाना चाहिए। अगर यह सब होगा, तो कुछ लोग जमीन दे ही देंगे, और नहीं ही देंगे, तो दूसरे हजार भी तो अभी हमारे पास पड़े हैं। हाँ, हमारे शस्त्र ऐसे हैं कि सामनेवाले को तकलीफ नहीं देते, वरन् उसकी हृदय शुद्धि करते हैं।

कार्यकर्ता आत्मवादी बनें

भूदान-यज्ञ की प्रक्रिया में क्या-क्या आता है उसका विवरण मैंने किया। लेकिन इतने से हमारी विचार-सफाई पूरी नहीं होती। हमारे कार्यकर्ताओं को आत्मवादी होना चाहिए। अगर हम आत्मवादी नहीं तो हमारा भूदान का तत्त्वज्ञान टूट जाता है। आत्मवादी का अर्थ है इस बात पर विश्वास कि हरएक के हृदय में आत्मा है इसलिए हरएक का हृदय परिवर्तन हो सकता है। मनुष्य के हृदय में एक-दूसरों के लिए सहानुभूति भरी पड़ी है। अगर यहाँ किसीको बिच्छू काटे, तो हम चुप नहीं बैठ सकते। क्योंकि मनुष्य के दिल में एक ऐसी चीज है, जिसका तार दूसरे मनुष्य के हृदय में पहुँचता है। जो यह नहीं मानता, उसके लिए हृदय परिवर्तन और भूदान भी बेकार है। यदि हम मानते हैं कि हरएक में आत्मा है, तो हृदय परिवर्तन विचार-परिवर्तन और दोनों के बल पर परिस्थिति परिवर्तन यह विधेयात्मक प्रक्रिया टिकेगी। भूदान-यज्ञ के मूल में यह सारा विचार भरा है। हम शब्दों के विवाद में खंडन मंडन में न पड़ें लेकिन हमारे खुद के विचारों की सफाई होनी चाहिए।

कृष्णावरम
२६-१-५७

कुछ बहनों ने कुएँ बनाने के लिए गहनों का दान दिया है। इससे हमें खुशी होती है। वास्तव में गहनों ने बहनों को दबाया है। बहनें गहनों के कारण बिलकुल डरपोक बन गयी हैं। पुरुषों ने उन्हें चलता बैंक बना रखा है। वे सारा धन उन पर इकट्ठा करते हैं। जैसे धन को सन्दूक में बन्द किया जाता है, उसी तरह पुरुष भी स्त्रियों को परदे में बन्द करते हैं। यहाँ तक कि उत्तर में स्त्रियों का गौरव करते समय उन्हें 'भीरु' कहा जाता है। यह भीरुता गहनों के कारण ही है। इसलिए स्त्रियाँ जब गहने देती हैं तो हमें न सिर्फ कुएँ बनाने का आनन्द होता है बल्कि बहनें उससे डरपोकपन छोड़ देंगी, इसलिए बहुत आनन्द होता है।

एक बार गहने देने पर आप फिर दुबारा उन्हें न पहनने का निश्चय करें। गहनों को कचरा समझकर दे दो। उसका दान नहीं जमा कर दो क्योंकि दान तो अच्छी चीज का होता है, कचरे का नहीं। कचरे का तो त्याग होता है। ये गहने आपको दबानेवाले हैं इसलिए इन्हें दे दो। हमें गहने न मिलें तो हमारा काम रुकनेवाला नहीं है। किन्तु अगर स्त्रियाँ गहने देती हैं, तो देश का काम होता ही है, अन्दर का काम भी बनता है। इससे बहनें मजबूत बन सकती हैं और डरपोकपन छोड़ सकती हैं। इस तरह इससे दुहरा काम बनता है।

मैं समझता हूँ कि हमारे सर्वोदय कार्यक्रमों में बहनों का कार्यक्रम एक विशेष स्थान रखता है। अगर वह ठीक ढंग से चले तो उससे समाज बहुत बदल दिया जा सकता है। इसलिए हम इसे बहुत महत्त्व देते हैं।

मैंने बार बार कहा है कि स्त्रियों को उतनी ही तालीम की जरूरत है, जितनी पुरुषों को है। आज हिन्दुस्तान में ही नहीं, दुनियाभर में स्त्रियों का क्षेत्र मर्यादित-सा हो गया है। प्राकृतिक और सामाजिक रीति-नीति के कारण कुछ पाबन्दियाँ पैदा हुई हैं। उन बहनों को, जो समाज में जाकर काम करेंगी, उत्तम शिक्षण चाहिए। यह शिक्षण भोग या सुख का शिक्षण नहीं, जीवन-शिक्षण होना चाहिए। मेरा विश्वास है कि जब शंकराचार्य के जैसी या उनसे भी बढ़कर बहनें आत्मज्ञान और वैराग्य-सम्पन्न होकर निकलेंगी, तभी देश में क्रान्ति हो सकेगी। मेरा विश्वास है कि अगर भगवान् हिन्दुस्तान का उद्धार चाहता हो तो ऐसी बहनें जरूर निकलेंगी।

हिंदू-समाज में स्त्रियों के भाग की रुकावटें

हिन्दू-समाज में बहनें बहुत पीछे हैं। उन्हें कानूनी या सामाजिक अड़चनों के अलावा आध्यात्मिक विचारों की भी रुकावटें हैं। एक जमाना था, जब कहा जाता था कि स्त्री को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं। आज तो पुरुष भी यह अधिकार नहीं चाहते। आज उसकी कोई कीमत नहीं। लेकिन जब कीमत थी, तब स्त्री को अधिकार नहीं था। बड़े-बड़े समझदार और शास्त्री तक मानते हैं कि स्त्री का आत्मज्ञान पर अधिकार नहीं है। जब ये इतने सामने आती हैं तब उनके लिए बड़ी भारी आध्यात्मिक रुकावट पैदा होती है। परिणाम यह होता है कि हर कन्या के सामने यह आदर्श रखा और सिखाया जाता है कि पिता के घर से दूसरे के घर जाना है। उसकी तालीम उसी ढंग से दी जाती है। मानसिक

शिक्षण भी इसी प्रकार चलता है। स्वतंत्र पराक्रमी स्त्री की कल्पना हिन्दुस्तान में नहीं की जाती।

माना जाता है कि स्त्री पति या पुत्र के आश्रित सेवा करेगी। यह सेवा कम है, यह मैं कभी नहीं कहता। लेकिन इतना जरूर मानता हूँ कि स्त्रियों को स्वतन्त्र पराक्रम का अधिकार होना चाहिए। हिन्दुओं में एक टीकाकार ने तो यहाँ तक लिखा है कि 'पुरुषार्थ' शब्द ही बताता है कि वह पुरुष के लिए है और स्त्री को तो पुरुष में लीन होना चाहिए। मेरा मन इसे कबूल नहीं करता। इसमें आत्मा के गौरव की हानि होती है। स्त्री के रूप में शक्ति सीमित है और पुरुष के रूप में असीमित, यह आत्मा का भेद कैसा?

स्त्रियों को अध्यात्मज्ञान पहले दिया जाय

जहाँ तक स्त्रियों की शिक्षा का सवाल है, उन्हें अध्यात्मज्ञान पहले दिया जाय। पहले हमारे यहाँ की स्त्रियाँ अध्यात्म परायण होती थीं। महाभारत में जनक सुलभा संवाद आता है। सुलभा ने जनक को ज्ञान दिया है। इस तरह और भी कहानियाँ हैं। हिन्दुस्तान में एक जमाने में स्त्री का इतना गौरव था पर आज वह हालत नहीं है। आज उनकी प्रथम आवश्यकता अध्यात्मज्ञान की ही है। हम देह से अलग हैं, आत्मा अविनाशी है, इन्द्रियों पर संयम रखना चाहिए, परमेश्वर हमारे अन्दर विराजमान है, इसी जन्म में दर्शन सुलभ है, सारे जीव हमारे रूप हैं—ये सारी बातें उन्हें सिखानी चाहिए। इस तरह बहनें अध्यात्म-विचार में प्रवीण हों। तालीम का सारा आधार आत्मा का ज्ञान होना चाहिए। स्त्री शिक्षण में उत्तम विद्या और जीवन व्यवस्था की रचना आवश्यक है, ताकि स्त्री में आज के समाज के विरुद्ध बगावत करने की हिम्मत आये। जिसके अन्दर अध्यात्म विद्या है उसे सारी दुनिया भी दबाना चाहे, तो वह दब नहीं सकता। मेरा विश्वास है कि अध्यात्म-विद्या से हम कर्तव्य निश्चित कर सकते हैं। पुस्तकों से मदद जरूर मिलती है। गीता, उपनिषद् जैसे उत्तम उत्तम ग्रन्थ पड़े हैं आधुनिक जमाने के भी ग्रन्थ हैं। लेकिन पुस्तकों से मेरा मतलब नहीं। मेरा मतलब तो मूल विचार से है। अगर वह मिलता है, तो आगे की बात अच्छी तरह चल सकती है।

स्त्रियों के उद्योग सुरक्षित रहें

जहाँ तक उद्योग की बात है, मेरा खयाल है कि कुछ उद्योग बहनों के ही हों। जैसे शहरवालों ने गाँववालों के उद्योग छीन लिये, उसी तरह पुरुषों ने स्त्रियों के उद्योग ले लिये और उन्हें केवल भोग का साधन मान लिया है। यह मत समझिये कि यह बात केवल देहातों में है। जिसे 'पैशनेबुल सोसाइटी' कहा जाता है वहाँ भी यही हालत है। वहाँ तो स्त्रियों को गाड़ियों की तरह रखते हैं। कोई खास जिम्मेवारी भी उन पर नहीं रहती सारा जीवन भोग विलास का रहता है। किन्तु यह विचार सारे समाज को छिन्न-भिन्न करने और निर्वीर्य बनाने वाला है।

एक जमाने में स्त्रियों का खास काम बुनना समझा जाता था। आज यह स्थिति है कि पुरुष बुनते हैं और स्त्रियाँ नरी भरती हैं। ऐसे ही सिलाई का काम है। सिलाई मशीनें आने के बाद से पुरुष ने उसे भी अपने हाथ में ले लिया। इस तरह एक-एक धन्धा स्त्रियों के हाथ से जाता रहा। आज यह अवस्था हो गयी है कि सब काम पुरुष करते हैं और कहते हैं कि स्त्री हम पर भार है। स्त्री की पराधीनता का प्रधान कारण यही है कि कोई खास उद्योग आज उसके पास नहीं रहा। उत्तम-से उत्तम रसोई बनाने का काम वह कर सकती है। केवल मोक्षदायक पद्धति की रसोई में ही नहीं बल्कि आरोग्यप्रद और बच्चों के लिए पथ्यकर रसोई बनाने में भी वह अवश्य प्रवीण हो सकती है। बहनें तर कारी के बगीचे लगा सकती हैं। इनके अलावा दूध दुहना गाय की सेवा सफाई आदि का काम भी वे कर सकती हैं।

स्वतन्त्र ज्ञान-प्राप्ति की क्षमता

इनके साथ-साथ स्त्रियों को किसी एक भाषा का सर्वोत्तम ज्ञान होना भी जरूरी है फिर वह चाहे मातृभाषा हो, प्रान्तभाषा हो या राष्ट्रभाषा। उनके पास ज्ञान की पूँजी कभी कम न होनी चाहिए। ज्ञान तो उत्तम और परिपूर्ण होना चाहिए। 'परिपूर्ण' का अर्थ है, स्वतन्त्र ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति, ज्ञान-प्राप्ति में स्वावलम्बिता। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि लड़कियाँ सीखती ही रहें और

दान-पत्र-वापसी-आन्दोलन की फल-श्रुति

बीच में हमने एक नया आन्दोलन शुरू किया। वह है, दान-पत्र-वापसी-आन्दोलन। कुछ दानपत्रों के पीछे हमने लिख भी दिया कि 'न्याय-वापसी दान है, इसलिए वापस'। उसके नीचे हमने अपने हस्ताक्षर भी कर दिये। जिसके पास पचास बीघे हैं और उसने आधा बीघा दिया तो हमने वापस कर दिया। लोगों ने उससे कहा कि कुछ दे दो तो उसने दे दिया था। फिर शाम को वह हमारे पास आया। उसकी ऐसी मुख-मुद्रा देखते जैसे घोर पश्चात्ताप हो रहा हो। वह उसकी गुनहगार जैसी नजर देखते। थोड़ी बात करने के बाद वह छठा हिस्सा देता और चला जाता। एक आध अपवाद छोड़कर इस तरह जितने लोग आये, सभी दानपत्र दुरुस्त करके ही गये। यह आन्दोलन हमने मुजफ्फरपुर में शुरू किया और जारी रखा। मुझे डर क्या था दानपत्र वापस करने का? माने यही होगा कि लोग मेरा प्रेम का हक मान ही लेंगे। बाबा छठा हिस्सा माँगता है, तो लोग उसे मान लेंगे। पर इन लोगों पर इसका अच्छा असर हुआ, यह कोई छोटी बात नहीं है।

कलियुग में सत्ययुग

एक जगह तो यहाँ तक हुआ कि एक आदमी ने छठा हिस्सा जमीन दी। मैंने कहा 'पर अच्छी ही दीजियेगा।' इस पर वह कहने लगा 'मैंने आपको भाई मानकर हिस्सा दिया है। केवल अच्छी जमीन किसके माँगते हैं।' मानो भाई-भाई बात करते हों। मैंने कहा 'ठीक है, दोनों में से हम हिस्सा ले लेंगे। लेकिन एक बात करनी होगी। जिस भाई को आप दे रहे हैं, उसके पास कोई साधन नहीं है। इसलिए उसके खड़े होने का इन्तजाम भी आपको करना होगा। जो बंजर जमीन होगी उसे छोड़कर दें। उसने तत्काल मंजूर कर लिया। यह वाकया जो हम आपको सुना रहे हैं, कलियुग में हुआ वाकया है, सत्ययुग का नहीं है। अपने प्रति इतने अधिक सद्भाव से अगर हम काम न ले सके, तो हतभागी ही कहलायेंगे।

ईश्वर इसके पीछे है

किसी भाई ने एक अखबार में देखा कि बाबा को कितनी जमीन सब जगह पड़ाव पर मिली तो लिखा कि 'कहीं कुछ !' लेकिन जिस हालत में यह है। वास्तव में यही देखकर आश्चर्य होता है कि यहाँ लोगों ने दिया ही कैसे। कुछ दान के पात्र थे दाता की स्थिति में नहीं थे। हमने उन्हें यही समझाया कि ऐसे संकट के समय पर धर्म भावना दृढ़ होनी चाहिए। दानपत्र की कोई कीमत नहीं, पर यहाँ जो सद्भावना देखी, उससे निश्चय हो गया कि ईश्वर हमारे पीछे है। हम अक्सर यही कहते भी हैं। एक भाई ने लिखा है कि विनोबा ईश्वर को चार हाथ दूर ही रखे और धार्मिक बातें करे तो बेहतर हो। हम कहते हैं कि जो ईश्वर को वैकुण्ठवासी मानते हैं, उन्होंने तो उसे चार हाथ दूर नहीं दुनिया के बाहर रख छोड़ा है। लेकिन जो घट घट व्यापी है, उसे दूर कैसे रखा जा सकता है। मुझे तो दृढ़ निश्चय होता जा रहा है कि इसके पीछे ईश्वर है और अगर है, तो मुझे कोई चिंता न होनी चाहिए। वास्तव में वह होती भी नहीं, रात को गाढ़ निद्रा आती है, मुश्किल से कभी स्वप्न आते हैं। यह भी सबूत है कि इसके पीछे ईश्वर है, इसलिए आपको केवल ईश्वर के हाथ का औजार बन जाना है। भगवान् का नाम लेकर उठ खड़ा हो जाना है। निमित्तमात्र बनना और कुछ नहीं करना है। कुछ लोग कहते हैं कि आन्दोलन में गति कैसे आवे, आदि आदि। हम भी मनुष्य हैं, सोचना ही पड़ता है। हम मानते हैं कि अगर हम न कर सके, तो नालायक साबित होंगे। लेकिन आन्दोलन सफल जरूर होगा। ईश्वर हमसे नहीं, तो दूसरों से यह काम जरूर करायेगा। केवल हमें निमित्त होना है। वैद्यनाथ बाबू की मिसाल सामने है कि सारा समय वे इसीमें दे रहे हैं। हमें आशा है कि हमारा संकल्प पूरा होगा और पूर्णियाँ का नाम पूर्ण सिद्ध होगा।

इस्लामपुर (पूर्णियाँ)
१-११-'५४

सेवा-कार्य कभी न करें। उन्हें सेवा करने के लिए अनुभवी बहनों के पास भेजा जाय और साथ-साथ जिसे मैं परिपूर्ण शिक्षा कहता हूँ, वह भी सिखायी जाय। जब पूरा अनुभव हो जाय, तभी उन्हें अकेले किसी क्षेत्र में भेजा जाय।

लोकशक्ति बढ़ाने में स्त्रियों का सहयोग

स्वराज्य के बाद कुछ काम तो सरकार को करना है। लेकिन सरकार बहुत से काम नहीं कर सकती, उन्हें हमें करना है। स्त्रियों को परदे से बाहर लाना है। आखिर कौन लायेगा? शिक्षा भी प्रथा बन्द करती है। पर वह कैसे बन्द होगी? स्त्रियों के विवाह की उम्र बढ़ानी है, तो वह कैसे बढ़ेगी? इसी तरह बीमारों की सेवा और तालीम का काम करना है। वह कौन करेगा? यह सरकार कभी नहीं कर सकती। इन्हें तो हमें ही करना होगा। लोग भक्ति के आधार पर धर्मनिष्ठा द्वारा हमें ही ये काम करने हैं। हम आशा करते हैं कि हमारे देश में ऐसी सेविकाएँ बहनें निकलेंगी, जो सूर्य की तरह प्रतापी होंगी। उनकी किरणों से प्रकाश फैलेगा और देश का अन्धकार दूर होगा।

आज जो तालीम दी जाती है, वह गुलाम बनानेवाली है, आरामतलबी की और भोग की तालीम है। ज्यादा स्वतन्त्र तो हमने देहात की बहनों को ही पाया है। शहर की भी पढ़ी-लिखी स्त्रियों को देखा है, जो आरामतलबी में पूरी तरह से पति के वश में हैं, जिससे न तो उनकी उन्नति होती है और न पति की ही। हमें समाज की रूढ़ियों को तोड़ना है। इसकी अपेक्षा आपके ग्राम-सेविका विद्यालयों से है। अगर आदर्श ऊँचा रहे और उस ओर लगातार प्रयत्न किया जाय, तो चाहे नीचे रहने पर भी कुछ न बिगड़ेगा। हमें अपना काम लगातार प्रयत्न से जारी रखना चाहिए।

पुसारोड
२६-८-'५१

आप सबको मालूम है कि हम किस काम के लिए घूम रहे हैं। यह बात अब बिहार की हवा में फैल गयी है कि जमीन जल्दी ही बँटकर रहेगी। कोई ऐसा व्यक्ति न रहेगा जो जमीन की काश्त करना चाहे और जमीन माँगे पर उसे वह न मिले। हम बाढ़ पीड़ित प्रदेश की बात कर रहे हैं जहाँ हमारे ढाई महीने बीते। वहाँ कार्यकर्ताओं ने कोई खास काम नहीं किया था। वहाँ ऐसे भी मौके आये कि हम लोगों के भोजन का कोई भी इन्तजाम नहीं था। हम बिहार में साढ़े तीन साल से घूम रहे हैं पर ऐसे मौके बाढ़ पीड़ित प्रदेश में ही आये और कहीं नहीं। बावजूद इसके जहाँ हम जा पहुँचे, तो सैकड़ों लोग आ जुटे।

बाढ़-पीड़ितों का यह उत्साह !

एक जगह तो लोगों ने हमें बताया कि करीब दो सौ नौकाएँ आ पहुँची थीं। सैकड़ों स्त्री पुरुष आये थे। बच्चों को बहनों ने गोद में उठा लिया था। गीली जमीन और ऊपर से बारिश हो रही थी लेकिन सब उत्साहपूर्वक खड़े-खड़े शान्ति के साथ प्रार्थना में सम्मिलित हुए। उन्हें जमीन तो नहीं मिली पर यह संदेश जरूर मिला कि 'गरीब का जमीन पर हक है। जिस तरह हवा पानी और सूरज की रोशनी परमेश्वर ने हमें दी है और उनका कोई मालिक नहीं हो सकता उसी तरह जमीन भी परमेश्वर की दी हुई चीज है और इसका भी कोई मालिक नहीं हो सकता। जो जमीन की सेवा करना चाहे, उसे जमीन मिलेगी। और हमें वहाँ भी दानपत्र मिले। इतना उत्साह हमने वहाँ देखा।

इस तरह सारे बिहार की हवा उत्साह से भरी है और हरएक को समाधान है। हमें बिहार में दो साल से ज्यादा हो चुके अब हम दो महीने यहाँ और हैं। कोई वजह नहीं कि जितनी जमीन हमने माँगी है, वह इन दो महीने में पूरी न हो जाय। अगर कार्यकर्ता इसमें जी जान से लगें, तो मुँहमाँगी जमीन मिलेगी।

दान-पत्र-वापस-आन्दोलन की फल-श्रुति

बीच में हमने एक नया आन्दोलन शुरू किया। वह है, दान-पत्र-वापसी-आन्दोलन। कुछ दानपत्रों के पीछे हमने लिख भी दिया कि 'नाकाफी दान है इसलिए वापस'। उसके नीचे हमने अपने हस्ताक्षर भी कर दिये। जिसके पास पचास बीघे हैं और उसने आधा बीघा दिया तो हमने वापस कर दिया। लोगों ने उससे कहा कि कुछ दे दो तो उसने दे दिया था। फिर वापस वह हमारे पास आया। उसकी पत्नी कुछ खुश दिखती थी और पश्चात्ताप हो रहा है। पर उसकी गुनहगार जैसी नजर दिखती। थोड़ी बात करने के बाद वह सवा हिस्सा देकर और चला गया। एक गाँव लगभग छोड़कर इस तरह जितने लोग आये, सभी दानपत्र दुरुस्त करके ही गये। यह आन्दोलन हमने मुजफ्फरपुर में शुरू किया और जारी रखा। मुझे एक भय था दानपत्र वापस करने का! मैंने सोचा कि लोग मेरा प्रेम का एक मान ही लेंगे। बाप छठा हिस्सा माँगता है, तो लोग उसे मान लेंगे। पर उन लोगों पर इसका अद्भुत असर हुआ, यह कोई थोड़ी बात नहीं है।

कलियुग में सत्ययुग

एक जगह तो यहाँ तक हुआ कि एक आदमी ने छठा हिस्सा जमीन दी। मैंने कहा, 'जरा अच्छी ही दीजियेगा।' इस पर वह कहने लगा, 'मैंने आपको बाप मानकर हिस्सा दिया है। केवल अच्छी जमीन किसके माँगते हैं?' मानो भाई-भाई बात करते हों! मैंने कहा, 'ठीक है, दोनों में से हम हिस्सा ले लेंगे। लेकिन एक बात करनी होगी। जिस भाई को आप दे रहे हैं, उसके पास कोई साधन नहीं है। इसलिए उसके खड़े होने का इन्तजाम भी आपको करना होगा। जो उत्तम जमीन होगी उसे छोड़कर दें।' उसने सहर्ष मंजूर कर लिया। यह बताकर, जो हम आपको सुना रहे हैं कलियुग में हुआ व्यापार है, सत्ययुग का नहीं है। अपने प्रति इतने अधिक सद्भाव से अगर हम काम न करा सके, तो हमारी ही अक्षमता।

पहला पूँजीवादी, अपना शरीर

एक बार हमारे एक साथी ने कहा कि [illegible] काम पूँजीवाद से लड़ने का मोर्चा है, पूँजीवाद से हमारी दुश्मनी है। बात ठीक है। लेकिन पहला पूँजीवादी दुश्मन तो अपना शरीर ही है, जो पूँजीवादी व्यवस्था में पला है। शरीर को कुछ कामों पर पलते हैं, उसे छोड़ना और उससे [illegible] काम करना होगा। पहला मोर्चा अपने घर में ही है। उसे फतह करके ही पूँजीवाद खतम किया जा सकता है। पूँजीवाद अनेक तरह का होता है। पूँजीवाद का अर्थ है, पूँजी बनाना। यह काम विकेन्द्रित रूप से नहीं, केन्द्रित रूप से किया जाता है।

आजकल अपने को 'कम्युनिस्ट' कहलानेवाले भी [illegible] पूँजीवादी हैं। वे शासन में पूँजीवाद और [illegible] में श्रद्धा रखते हैं। ऐसे लोग मानते हैं कि शासन केन्द्रित हो और [illegible] करे। [illegible] ने वे पूँजीवाद के [illegible] हैं, क्योंकि प्रतिक्रियास्वरूप हैं। वे सच्चे विचार के नहीं हैं। [illegible] हो रहा है। पूँजीवाद के [illegible] ने जो दुष्कर्म हुए, उनकी प्रतिक्रियास्वरूप ही कम्युनिज्म पैदा हुआ। यह 'एन्टीथेसिस' रही, पूँजीवाद के 'थीसिस' के खिलाफ एन्टीथेसिस है। एन्टीथेसिस से न होगा जिसमें दोनों [illegible] हों। [illegible] लेकिन हमारा काम तो [illegible] न पहुँचेगा। [illegible] दुनिया भर [illegible]।

[illegible]

आज का दिन बड़ा ही पवित्र दिन है। आज सारी दुनिया में महात्मा ईसा का स्मरण-दिन मनाया जाता है। यों तो ईश्वरीय सृष्टि के सभी दिन शुभ होते हैं। शुभाशुभ लगते हैं तो शुभ दिन ही लगते हैं। मानव के व्यक्तिगत जीवन में देखा जाय, तो वह दिन शुभ माना जाता है जिस दिन उसे कोई शुभ संकल्प सूझे, जिस दिन वह कोई शुभ आचरण या शुभ चिन्तन करे। पर समाज जीवन में इन व्यक्तिगत शुभ वस्तुओं और परमेश्वर के नित्य मंगलमय दिनों के अलावा और भी कुछ दिन विशेष शुभ और पवित्र माने जाते हैं जब मानव को उसकी उन्नति का कुछ दर्शन हुआ हो। इसलिए महापुरुषों की स्मृति में दुनियाभर के लोग चाहे समय के लिए ही क्यों न हो अपने साधारण स्तर से ऊँचा उठने की कोशिश करते हैं, कुछ आत्मचिन्तन और कुछ पूजा-पाठ आदि भी करते हैं। इस तरह का रिवाज सभी देशों सभी धर्मों और सभी समाजों में मौजूद है।

ईसा का पवित्र स्मृति-दिन

इन दिनों हमने धर्मों में भी भेद-भाव पैदा कर दिया है। मजहब मजहब एक-दूसरे से लड़ते हैं। देश-देश के बीच दुश्मनी चलती है। लेकिन इन सबसे [illegible] निराभिमान कुछ महात्मा ऐसे सारी दुनिया में हो गए हैं जो किसी देश पंथ सम्प्रदाय या समाज-विशेष के नहीं कहलाते। ऐसे सत्पुरुषों में महात्मा ईसा भी गिने जाते हैं। वे अपने को 'मनुष्य-पुत्र' कहते थे। मानव पुत्र या मानव का बेटा। और वे दुनिया के उद्धार के लिए [illegible] नहीं, बल्कि अपने को सारे मानव समाज का प्रतिनिधि समझते थे। वे मानव के दुःख और उसकी दुर्बलता के प्रतिनिधि थे। इसलिए महात्मा ईसा ने सारी मानव-जाति की शुद्धि के लिए अपना सारा जीवन अर्पण कर दिया। उनका स्मरण यों तो ईसाई धर्म प्रवर्तक के नाते करते ही हैं पर दुनिया के दूसरे लोगों में भी यह स्मरण-दिवस माना जाता है।

इस्लाम सारे भारत को कबूल

भारत भूमि के लिए तो यह विशेष पवित्र दिन माना जाता है। सब लोग नहीं जानते कि इस्लाम धर्म के कुछ ही दिनों बाद मलबार के किनारे इस्लाम-मिशन आया था। तभी से इस्लाम धर्म के अनुयायी इस भूमि पर हैं। दुःख की बात है कि इस्लाम-धर्म के साथ अंग्रेजी, फ्रांसीसी, पुर्तगाली आदि राज्यों की राजनीति जुड़ गयी। इस कारण कई गलत काम भी यहाँ हुए और उसके परिणामस्वरूप यहाँ जितनी प्रतिष्ठा इस्लाम-धर्म की होनी चाहिए, नहीं हुई। सच तो यह है कि एक प्रकार की प्रतिक्रिया ही हुई। इसके बाद अंग्रेजी शासन के शुरू होने से इस्लाम धर्म के लिए जितनी भावना हो सकती, पूरी नहीं बनी; यह बड़े दुःख की बात है। किन्तु यह बात अब मिट रही है और कुछ-कुछ मिटी भी है। अब यह तैयारी हो रही है कि हिन्दुस्तान यह महसूस करे कि इस्लाम धर्म भी हिन्दुस्तान का एक धर्म है।

मेरे इस्लाम मित्र कहते हैं कि आप हिंदुस्तान इस्लाम को कबूल करें। मैं सारे देश की तरफ से जाहिर करना चाहता हूँ कि इस्लाम सारे भारत को कबूल है। हम उसके तत्त्व को शिरोधार्य मानते हैं। उसे हम पूरी तरह से अमल करने के लिए उत्सुक हैं। उन्हें हम अपने ही परिवार का समझते हैं। हमारा दावा है जिसमें कोई अभिमान की नहीं, नम्रता की ही बात है कि इस्लाम की तालीम का जितने व्यापक प्रमाण में सामूहिक प्रयोग महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारत ने किया उतना और कहीं हुआ हो, यह हम नहीं जानते। इस बात का हमें अभिमान नहीं, बल्कि नम्रता से कहते हैं कि मजहब इस्लाम का संदेश शिरोधार्य करने की बुद्धि परमेश्वर ने हमें दी, जिससे हमारा भला ही हुआ। हम चाहते हैं कि आज का पवित्र दिन हिन्दुस्तान और दुनिया के लिए अन्तःपरीक्षण का दिन बनना चाहिए।

विज्ञान से मानव ईसा की तालीम मानेगा

आज सारी दुनिया में कत्लेआम चल रहा है। दुःख के साथ कहना पड़ता है कि जिन देशों ने ज्यादा-से-ज्यादा पैमाने पर एक-दूसरे के खिलाफ हिंसा का

आयोजन किया वे भगवान् ईसा के अनुयायी ही कहलाये। हम समझते हैं कि यह बहुत ज्यादा दिन न चलेगा और ईसा की यह भविष्यवाणी कि 'आसमान में आबाद प्रभु का राज्य जमीन पर भी आबाद होगा' शीघ्र ही सफल होगी। शस्त्रास्त्र बढ़ाने में ही अपनी और दुनिया की रक्षा समझनेवाले देश ईसा की तालीम से नहीं, बल्कि विज्ञान के कारण यह बात समझ जायेंगे।

विज्ञान के इस जमाने में यह बात ज्यादा दिन चल नहीं सकती कि हम शस्त्रास्त्र बढ़ाते चले जायें और बैलेंस ऑफ पावर (शक्ति का संतुलन) कायम रखकर शान्ति की कोशिश करें। शान्ति का यह अशान्त उपाय ज्यादा दिन न चलेगा। विज्ञान औजारों को सीमित न रहने देगा। वह मनुष्य के लिए सोचने का मौका ला देगा। बाइबिल पढ़कर जो काम नहीं हुआ अनेक धर्मोपदेशकों के रविवार के व्याख्यान सुनकर जो काम न हुआ वह विज्ञान पूरा कर ही देगा। मनुष्य की बुद्धि जानेगी कि आखिर हिंसक शस्त्र के परित्याग में ही मानवता और मानव-समाज का विकास है। ये दोनों बातें विज्ञान कर दिखायेगा। शरीर की रक्षा और आत्मा का विकास दोनों बातें एक ही बात से सधेंगी। जब मानव शस्त्रास्त्रों का परित्याग कर परस्पर प्रेम और सहयोग से दूसरों के लिए जीना सीखेगा देने में ही सुख अनुभव करेगा, तब उसका बेड़ा पार हो जायगा—यह विज्ञान से प्रत्यक्ष सिद्ध होकर रहेगा।

अभिक्रम दूसरों के हाथ में न दिया जाय

ईसामसीह ने कहा है कि अपने से प्यार करनेवाले पर अगर हम प्यार करें तो कौन बड़ी बात है! यह तो जानवर भी करते हैं, इसमें कौन सी मानवता है? जो हमसे प्यार करेगा उससे हम प्यार करेंगे और जो हमसे द्वेष करेगा उससे द्वेष करेंगे, तो इसके माने यह हुए कि हम क्या करेंगे, यह हमने सामने वाले के हाथ में रख दिया। इसे 'अभिक्रम' कहते हैं। यह अभिक्रम शब्द, जिसे अंग्रेजी में 'इनीशियेटिव' कहते हैं मैंने गीता से लिया है। अमेरिका से मदद लेकर पाकिस्तान फौजी ताकत बढ़ा रहा है। पर शक्ति, अहिंसा और धर्म-त्याग

चाहनेवाले हमें (भारत को) भी शस्त्र शक्ति बढ़ाने की सूझे, तो वह ठीक नहीं। परमेश्वर की कृपा है कि पंडित नेहरू के नेतृत्व में हमें ऐसी कुबुद्धि नहीं हो रही है। पर मान लीजिये कि वह दूर हुई और लाचार होकर हमने भी सेना ही किया, तो इसका मतलब यह होगा कि हिंदुस्तान को बेच दिया जाय, या हमने पाकिस्तान के हाथ में सौंप दिया। यह मिसाल मैंने यों ही दी। आज हर देश दूसरे का उदाहरण देकर अपने शस्त्रास्त्र बढ़ाने की कोशिश कर रहा है। जितना डर हम रखते हैं वह हमसे भी डर रख रहा है। इस तरह हम एक दूसरे से डरते हैं। लाचारी महसूस कर उल्टी दिशा में जा रहे हैं और मन यह कि उस ओर जाना उचित नहीं, यह कबूल भी करते हैं।

अहिंसा परम ही नहीं, निकट धर्म

महात्मा गांधी जब परलोक सिधारे, तो दुनियाभर के लोगों ने—बड़ों ने और साधारण मनुष्यों ने भी—समवेदना प्रकट की। उनमें एक प्रसिद्ध सेनापति मैकआर्थर भी था, जिसने दुनिया पर जुल्म गुजारा था, अधिक-से-अधिक हिंसा-शक्ति को बढ़ावा दिया था। उसने कहा कि अगर हम लोगों को मानवता की रक्षा करनी है, तो कभी-न-कभी प्रेम और प्यार से मानवता की रक्षा करने की बात सोचनी ही होगी। यह कबूल करने पर भी बहुत-से लोग ऐसा महसूस करते हैं कि यह चीज अमल करने की नहीं है। 'अहिंसा परमो धर्मः' यह सभी महसूस करते हैं। पर यह निकट धर्म है, यह महसूस नहीं करते।

आज हिंसा से बचाव करनेवाले भी कहते हैं कि 'हम हिंसा के लिए हिंसा नहीं चाहते। हिंसा के लिए हिंसा करना शैतान का ही काम है। मानव-समाज में ऐसा कोई नहीं जिसे हिंसा के लिए हिंसा प्यारी हो। पर लाचारी से वह करनी पड़ती है क्योंकि सामनेवाला जब हिंसा-बल बढ़ाता है तो हम क्या करें।' किन्तु इस लाचारी और पुरुषार्थहीनता को मैं 'निर्वीर्यता' ही कहूँगा। यह महात्मा इसको सहन नहीं कर सकते। वे महावीर पुरुष थे, उन्हें डर मालूम ही नहीं था। वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे और प्राणिमात्र पर उनका प्रेम था। उन्होंने जाहिर कर दिया था कि 'जो हमसे द्वेष करेगा उसे भी हम प्यार से जीत लेंगे।' जितनी

श्रम करने की प्रवृत्ति ईसाई-धर्म की विशेषता है यह भी सभी मानते हैं। ये दोनों चीजें हम ग्रहण करना चाहते हैं। भारत के हिन्दू के नाते मैं कहना चाहता हूँ कि इस्लाम और ईसाई धर्म मुझे कबूल हैं। लेकिन उन्हें कबूल करने से मेरा हिंदुत्व नहीं मिटता, बल्कि वह विकसित और प्रकाशित होता है। भारत इस्लाम-धर्म के भाईचारे और ईसाई धर्म की सेवा वृत्ति से यहाँ पर निर्मित भारतीयता बहुत मजबूत चीज बन सकती है, यहाँ का एक विशेष ईसाई धर्म होगा, एक विशेष इस्लाम धर्म होगा। भारत भूमि के रस से उसमें एक विशेष स्वाद मिलेगा, उसकी अपनी विशेष आकर्षकता होगी।

सब धर्म शाकाहार मानें

मेरा यह भी मानना है कि अब समाज को इस ओर बढ़ना होगा कि हम अपने जीवन के लिए किसी पशु की हत्या न करेंगे, पशु को अपना भक्ष्य न समझेंगे। अगर हम उनकी रक्षा नहीं कर सकते, तो कम-से-कम उन्हें भक्ष्य तो नहीं ही बनायेंगे। यह भारत का विशेष संदेश है, जो यहाँ की तपस्या से निकला है। इसी लिए यहाँ के जितने धर्म हैं, सब इस बात पर पहुँचे कि मानव के लिए सबसे उत्तम आहार फलाहार, शाकाहार है। मैं मानता हूँ कि आज दुनिया में इतना अन्न नहीं है, अन्न की काफी कमी है, पर मानवता के विकास, मानव की परिपूर्णता और स्वधर्म की एकरसता के लिए यह जरूरी है कि मानव मांसाहारी न रहे। इस पर आज ज्यादा नहीं कहूँगा। आज यह बात इसलिए कह रहा हूँ कि ईसा-धर्म भारत को मान्य है, तो ईसाई धर्म भी भारतत्व मान्य करे। दोनों मिलकर ऐसी परिपूर्णता आयेगी जिसमें मानवता का व्यापक दर्शन होगा।

मानवनिष्ठा मानना नास्तिकता

मैंने एक बार कहा कि ईसाई धर्म पर अमल करने का भाग्य हिन्दुस्तान को हासिल है। दूसरा मत कहता यह है। मेरी भावना कहती है कि इस भूदान-यज्ञ में मुझे सदा ईसामसीह का आशीर्वाद प्राप्त है। बुद्ध भूमि गया में भी मैंने कहा था कि बुद्ध भगवान् का आशीर्वाद मुझे प्राप्त है। आखिर ईसामसीह ने भी यही सिखाया कि हमें पड़ोसी के जीवन से अपने जीवन को अलग मानना

और उसकी चिंता को अपनी चिंता न समझना भी कोई मजहब नहीं। इसीलिए हम आज भूमि और सम्पत्ति पर चलनेवाली मालकियत को मिटाना चाहते हैं। इस तरह की मालकियत का दावा करना अधर्म है, अश्रद्धा और नास्तिकता का लक्षण है। 'रब्बर' शब्द का अर्थ ही है प्रभु, मालिक या स्वामी। इस्लाम में उसे 'मालिक' कहा गया है, ईसाई धर्म ने 'गॉड' कहा है और हम 'प्रभु' कहते हैं। तीनों का एक ही अर्थ है कि वही स्वामी है। फिर अगर हम मालकियत का दावा करते हैं, तो 'कुफ्र' करते हैं, नास्तिक बन जाते हैं।

अब यह बात न चलेगी। मालकियत हाथ में रखकर दूसरों पर थोड़ी दया करने या थोड़ा प्यार करने भर से विज्ञान के इस युग में काम न चलेगा। अब तो पूरा ही प्रेम करना होगा। नानक कहता है :

पूरा प्रभु आराधिआ पूरा जाका नाउ।
नानक पूरा पाइआ पूरे के गुन गाउ॥

अधूरा प्रेम कबूल न होगा यह कबीर ने भी कहा है :

कहे कबीर मैं पूरा पाया सब घट साहिब दीठा।

यहाँ कबीर ने साहिब शब्द का प्रयोग किया है। उसने 'रब्बर', प्रभु, गॉड या मालिक को याद किया है। उसे पूरा दर्शन हो गया था। हमें भी अगर पूरा दर्शन होगा तो हम पूरा प्रेम कर सकेंगे। विज्ञान के युग में अधूरा दर्शन न चलेगा। कुछ लोग कहते हैं कि 'विज्ञान का युग अश्रद्धा लायेगा'। किन्तु मेरा इससे उलटा मानना है। विज्ञान से तो सच्ची श्रद्धा पूरी होगी, अधूरा भक्ति-भाव पूरा होगा। यह तभी होगा जब हम अपनी मालकियत मिटाकर सामूहिक मालकियत मान लेंगे। आज का 'कम्युनिस्ट' शब्द ईसा के अनुयायियों से ही आया है। वे अपना 'कम्यून' बनाते थे, याने मिलकर एक साथ रहते थे। व्यक्तिगत मालकियत न रखते थे। यह बात न सिर्फ ईसा के अनुयायियों में ही नहीं हिन्दुस्तान में भी मानी जाती है। भारत भूमि का भी यही दावा है।

एक तमिल भक्त की कहानी है। वह छोटी-सी कोठरी में रहता था, जो बहुत ही तंग थी। बाहर बारिश हो रही थी। कोई आया और दरवाजा खटखटाने लगा। पूछा : 'क्या जगह है अन्दर?' उसने कहा : 'अरे, यहाँ एक आदमी

सो सकता है पर दो बैठ सकते हैं। दोनों बैठ गये। थोड़ी देर में तीसरा आया। बारिश हो ही रही थी। भक्त ने कहा। 'आइये, यहाँ एक सो सकता है, दो बैठ सकते हैं और तीन खड़े रह सकते हैं।' उसने उसे भी अन्दर ले लिया और तीनों खड़े रह गये। ऐसी हजारों कहानियाँ हिन्दुस्तान में सुनी जाती हैं।

भाग्यवान् भरत-भूमि

परमेश्वर का महान् उपकार है कि इस भरत-भूमि पर सत्पुरुषों की परम्परा जारी हुई है। उससे यह भूमि पवित्र हुई है। जिस जमाने में हिन्दुस्तान बिलकुल नीचे गिरा हुआ था—पराधीनता के कारण जो निकृष्ट काल माना जायगा और जब यहाँ अंग्रेजी राज्य था—उस निकृष्ट-काल में भी सत्पुरुष इस पुण्यभूमि ने पैदा किये। ऐसे सत्पुरुषों को पैदा किया, जिनका लोहा सारी दुनिया को कबूल करना पड़ा। परमेश्वर की यह भी बड़ी कृपा है कि हिन्दुस्तान में इस्लाम, ईसाई और पारसी-धर्म भी आया। इसी तरह यहाँ के बुद्ध धर्म का विचार दूसरे देशों में फैला। बुद्ध-धर्म के प्रचारक हाथ में तलवार लेकर नहीं निकले। राज्य सत्ता चलाने की बात उन्होंने नहीं की। केवल ज्ञान की ही बात की। बड़े भाग्य की बात है कि हिन्दुस्तान के कुल इतिहास में—जो थोड़ा नहीं, पाँच हजार साल का तो ज्ञात इतिहास है—उसने बाहर के किसी देश पर आक्रमण किया ऐसा कहीं नहीं मिलता। ऐसे देश के लिए ईसामसीह का संदेश जल्दी पचेगी मानी जायगी।

हम यह कोई आश्चर्य की बात नहीं मानते कि ईसा का अहिंसा का यह विचार यहाँ रुचना चाहिए। यहाँ के लोग ईश्वर की भक्ति में रमे हों—हिन्दुस्तान में कहीं भी जाइये, ईश्वर के नाम पर लोग झुक जायेंगे—वहाँ ईसामसीह का स्वीकार होना कोई नयी बात नहीं। यह सच है कि हमारे आचरण में गलती हुई। हम उस प्रभु से क्षमा माँगते हैं। (बाबा कुछ देर तक के लिए शान्त रहे)। पर हमें भगवान् क्षमा करेगा जब कि ईसामसीह ने भी जब क्रॉस पर क्षमा कर दी जिन्होंने उसे सूली पर चढ़ाया. प्रभु अत्यन्त क्षमाशील है.... (बाबा का गला भर आया और वे एक मिनट शान्त रहे).... अब हमें क्षमा क्यों न करेगा? हम नहीं कहते कि हम पुण्यवान् हैं, हम अत्यन्त पापी हैं। फिर भी यह

इस विचार, ईसा का यह सन्देश हमें सहज प्राप्य है। ईसा का जन्म गोशाला में हुआ था। हमारी भाषा में 'ह्यूमिलिटी' का वर्णन करना मुश्किल होता है। इसलिए नहीं कि कोई शब्द नहीं मिलता, बल्कि इसलिए कि 'ह्यूमिलिटी' शब्द में गंभीर विचार है। यहाँ इसके बदले 'नम्रता' शब्द चलता है। नम्रता में मानव-दया आ ही जाती है। इसलिए हमारा हृदय ईसामसीह के सन्देश के लिए खुला है — (बाबा का गला रुँध गया और वे शान्त रहे) और आज के पवित्र दिन हम उनका पुण्य-स्मरण करते हैं।

मानव-पुत्र ईसा की राह पर

मुझे इस बात की खुशी है कि मलबार के ईसाई-बन्धुओं में अपने जाहिर कर दिया है कि 'भूदान-यज्ञ' का काम ईसामसीह की राह पर चल रहा है। इसलिए उनको इस पर चलना चाहिए। उन्होंने यह बात ठीक ही कही। हमारा दावा है कि इस यज्ञ के जरिये ईसामसीह का पैगाम घर-घर फैलेगा। ईसामसीह का कहना था कि नाम में सार नहीं। कोई हिन्दू कहलाये, कोई मुसलमान और ईसाई, इससे क्या रखा है? इस्लाम के मानी हैं, शान्ति। इस्लाम ने शांति का आदर्श माना है। जिस मनुष्य के आचरण में दया न हो, शान्ति न हो उसे मुसलमान कैसे कहा जायगा? जिसके आचरण में दया हो, पर वह मुसलमान न हो उसे मुसलमान कैसे न कहा जायगा? इसीलिए ईसामसीह ने कहा था : 'जो किसी भूखे को खिलाता है, वह ईश्वर को खिलाता है, जो किसी प्यासे को पानी पिलाता है, ईश्वर को पिलाता है, जो किसी ठण्ड में ठिठुरनेवाले को कपड़ा पहनाता है वह प्रभु को पहनाता है।' वे धर्म पन्थ सम्प्रदाय आदि जानते ही नहीं थे। जैसा मैंने शुरू में कहा कि वे मानव-पुत्र थे हमने भी मानव-पुत्र के नाते ही यह काम शुरू किया है। इसमें सारी मानवता प्रतिबिम्बित होगी। आज सब जमात बनाने की जरूरत नहीं और न हमारी मान्यता ही है। प्रभु से यही प्रार्थना है कि हमारे दिलों में करुणा, दया और प्रेम भर दे ताकि उसके यह काम सम्पन्न हो जाय।

रामगंज
२५-१२-'५२

हमारा यह देश बहुत बड़ा है। यहाँ के किसी भी लड़के से पूछा जाय कि तुम कितने भाई हो, तुम्हारे देशवासी कितने हैं, तो वह छत्तीस करोड़ का आँकड़ा सुनायेगा। सिवा चीन के किसी भी देश के नागरिक की जबान पर इतना बड़ा आँकड़ा न होगा। यूरोप के लोगों से पूछा जाय, तो कोई कहेगा एक करोड़, कोई कहेगा दो करोड़, तो कोई कहेगा चार करोड़। इस तरह छोटे-छोटे आँकड़े वहाँ सुनने आयेंगे। पर हम तो इतने भाई हैं, इतना विशाल हमारा वैभव है। यह सब क्या है? हमें इस पर सोचना चाहिए। यह इसलिए है कि जिस तरह भरसक नदियाँ समुद्र में जातीं और समुद्र सब नदियों को उदार आश्रय देता है, किसीको भी इनकार नहीं करता, उसी तरह भारत-भूमि ने दुनिया की सब जातियों का प्रेम से स्वागत किया और उनको आश्रय दिया।

मैं एक मिसाल देता हूँ। पारसी लोग ईरान से आश्रय के लिए यहाँ आये। यहाँ के उदार लोगों ने उन्हें आश्रय दिया। उनके जो रीति-रिवाज थे, उनके अनुसार वे अपनी उपासना करते थे, अपना भक्ति-मार्ग चलाते थे। उसमें हमने कोई बाधा नहीं पहुँचायी। आज भी पारसी जाति इस देश को अपना देश समझती और यहाँ अपने को सुरक्षित पाती है।

मैं एक मजेदार बात सुनाऊँगा। यहाँ जो पारसी आये, वे देवों की निंदा और असुरों की प्रशंसा करते हुए आये। फिर भी यहाँ के लोगों ने कोई नाराजगी नहीं रखी थी। यहाँ तो देवों की स्तुति और असुरों की निंदा की जाती है। पर पारसियों में असुरों की स्तुति और देवों की निंदा की जाती है। उनकी भाषा में 'असुर' का अर्थ ही 'भगवान्' है। शब्द उलटा पड़ता है, पर अर्थ यही है। भगवान् को वे बड़ा मानकर 'अहुर-मज्द' कहते हैं और देवों को कहते हैं, भूत या पिशाच', जो भोले मनुष्यों को तकलीफ दिया करते हैं। ऐसे देवों की उन्होंने निंदा की है। किन्तु यहाँ के लोगों ने अर्थ ग्रहण कर शब्दों की बात

लिए यह बहुत बड़ी बात है। पारसी जाति यहाँ आक्रमणकारी बनकर नहीं आयी। वे जब यहाँ आये, तो उनके पास कोई ताकत नहीं थी, जिसके बल पर वे आश्रय माँग सकते। फिर भी वे आश्रय के लिए यहाँ आये और यहाँ के लोगों ने उन्हें आश्रय दिया। भारत ने उनके भरण-पोषण का जिम्मा उठा लिया। दरअसल, यहाँ की जनता तो यहाँ के ज्ञानियों के विचारों पर ही चलती थी इसीलिए इसका विकास हुआ।

महामानवों का समुद्र भारत

आजकल यहाँ कई वाद चलते हैं। वाद तो कई प्रकार के हो सकते हैं। 'बिहार-बंगाल' का वाद चल रहा है। फिर भी बिहारवाले यह माँग नहीं करते कि हम अपना राष्ट्र बनाना और भारत से अलग होना चाहते हैं और न बंगालवाले ही यह माँग करते हैं कि हम अपना अलग राष्ट्र बनाना चाहते हैं। हम सब भारतीय हैं, भारतवासी हैं और एक राज्य में रहना चाहते हैं। ये जो दूसरे झगड़े चलते हैं, वे मामूली झगड़ा वाद हैं। उनके पीछे अभिमान की वृत्ति नहीं है। यद्यपि आजकल कुछ अभिमान और कटुता भी पैदा की गयी है, फिर भी यहाँ इनमें अभिमान की वह वृत्ति नहीं है, जो यूरोप के देशों में पायी जाती है। फ्रांस और जर्मनी के बीच कोई ऐसा पहाड़ नहीं जो दोनों को अलग करे। फिर भी उनमें वैसे पहाड़ की आवश्यकता महसूस होती है। दोनों देश बिल्कुल नजदीक रहनेवाले हैं। उनकी लिपि और धर्म एक हैं, भाषाएँ भी काफी मिलती-जुलती हैं। उनके बीच शादियाँ भी हो सकती हैं। किन्तु फ्रांसीसियों ने तय किया कि हमारा एक छोटा-सा अलग देश है और जर्मनों ने तय किया कि हमारा जर्मनी एक अलग छोटा सा देश है। फ्रांस जर्मनी और इंग्लैण्ड के बीच जो लड़ाइयाँ हुईं वे राष्ट्रीय लड़ाइयाँ मानी जाती हैं, 'सिविल-वार' या आपसी लड़ाइयाँ नहीं। लेकिन हिन्दुस्तान में जो लड़ाइयाँ हुईं—मराठों की बादशाहों के साथ या राजपूतों के साथ—वे 'सिविल-वार' (आपसी लड़ाइयाँ) मानी जाती हैं। यह कुछ अभिमान की ही चीज है कि यहाँ जो लड़ाइयाँ हुईं वे आपसी लड़ाइयाँ मानी गयीं। बाहरवालों ने इन्हें आपसी लड़ाइयाँ ही माना और यहाँवालों ने भी।

से हल किये जायें वैसे ही विज्ञान के लिए भी अनिवार्य है कि दुनिया अपने मसलों को हल करने के लिए शांति और प्रेम का तरीका ढूँढे। आज के शस्त्र मानव के हाथ में नहीं है। शस्त्र शक्ति में चाहे कितनी ही बुराइयाँ हों, पर अगर वे मानव के नियंत्रण में रहें तो कुछ लाभप्रद भी सिद्ध हो सकते हैं। किन्तु आज विज्ञान का इतना विकास हुआ है कि शस्त्र शक्ति मानव के हाथ में रह ही नहीं गयी। मान लीजिये कि यहाँ कोई बीड़ी पीकर बिना बुझाये फेंक दे और उससे घर को आग लग जाय तो उसे बुझाने की शक्ति उसमें नहीं रहती। उसने जान-बूझ कर तो नहीं फिर भी आग तो लगायी ही। उसके हाथ में आग लगाने की शक्ति है और वह आसानी से घर को आग लगा सकता है, किन्तु आग बुझाने की शक्ति उसके हाथ में नहीं है। विज्ञान के जमाने में आनेवाली आग की लपटें न सिर्फ गुट पर, बल्कि देश-के-देश खा जाते हैं। मानवता का और मानव जाति का समूल उच्छेद करने की शक्ति विज्ञान ने निर्माण की है। इसलिए दुनिया के लिए यह जरूरी है कि वह अपने मसले शांति और प्रेम के तरीके से हल करे। यह आग्रह कभी न किया जाय कि एक देश में जो रीति या तरीका चला वही सभी देशों में चले। हमारी वृत्ति आग्रह की नहीं है। हरएक देश के अपने भिन्न-भिन्न गुण होते हैं। इसलिए हर देश में एक ही प्रकार की समाज-व्यवस्था और समाज रचना चलनी चाहिए, ऐसा आग्रह हम न रखें। हरएक देश अपनी विशेष परिस्थिति के अनुसार अलग-अलग समाज-रचना कर सकता है, ऐसी अनाग्रही वृत्ति हम रखें तो दुनिया में शांति रहेगी। नहीं तो सारी दुनिया के लिए अशांति की नौबत आयेगी। आज हिन्दुस्तान का जो भौगोलिक रूप बना है, हिन्दुस्तान का जो स्वभाव है और हिन्दुस्तान की जो परिस्थितिक जिम्मेवारी है, इन सबके कारण हमारे लिए शांति का तरीका अनिवार्य है, और सारी दुनिया के लिए भी विज्ञान के कारण शान्ति का तरीका अनिवार्य है। हमारे लिए यहाँ वह अपनी परिस्थितियों के कारण अनिवार्य है वहीं विज्ञान के कारण सारी दुनिया के लिए भी अनिवार्य हो गया है। अब सबको अपने मसले हल करने के लिए शांति का ही तरीका अख्तियार करना पड़ेगा। हमें यह ध्यान रखना होगा कि आग न लगने पाये और लगे तो बुझ सके।

लोहिया के भारतीय परंपरा के उद्गार

जब इन्दौर में गोली चली तब मुझसे नहीं रहा गया। मैंने कहा कि स्वराज्य में इस तरह गोली नहीं चलनी चाहिए। स्वराज्य में आंदोलन चलानेवालों पर भी जिम्मेदारी है कि वे अपने पर अंकुश रखें और हिंसा न होने दें। सरकारों को भी यह वृत्ति रखनी चाहिए कि गोली न चले। इसलिए हमें खुशी है कि जब त्रिवाङ्कुर-कोचीन में गोली चली, तब राममनोहर लोहिया की आत्मा पुकार उठी। यद्यपि वहाँ सोशलिस्ट पार्टी की ही सरकार थी, फिर भी उनकी आत्मा की पुकार प्रकट हुई। उस पर फिर चर्चा हुई। उसके पक्ष और विरोध में जो बातें की गयीं उन सबमें मैं नहीं पड़ना चाहता। किन्तु उनके हृदय से स्वयंस्फूर्ति से जो उद्गार निकले, यद्यपि वहाँ उन्हींकी सरकार थी, उन उद्गारों को हम भारतीय उद्गार कहते हैं और उनके साथ हमारी पूर्ण सहानुभूति है।

हिंसा के बारे में एक गलत ख्याल

आजकल यह एक ख्याल हुआ है कि हिंसा से सारे मसले हल हो सकते हैं और जल्द हल हो सकते हैं, यह गलत है। हिंसा से सारे मसले न तो हल हो सकते हैं और न जल्द ही हल हो सकते हैं। मसले हल हुए, ऐसा आभास होता है। अगर उस आभास से ही हम मान लें कि मसले हल हो गये, तो यह गलत होगा। मान लीजिये कि कहीं गंदगी पड़ी है और देर सबेरे इस सभास्थल से झाड़ू नहीं लगायी गयी। उस पर कालीन बिछा दिया और मान लिया कि स्वच्छता हो गयी। लोग बैठ गये और सभा आरंभ हुई। फिर नीचे से एक बिच्छू निकला और उसने किसीको काटा और सभा खतम! मतलब, झाड़ू लगाने के बदले यह ढाँपकर गंदगी को ऊपर से ढँक देने से स्वच्छता नहीं हो जाती। स्वच्छता के लिए कुछ करना ही पड़ता है। बचपन में एक कहानी है कि बच्चे ने बीज बोया और उसमें पानी सींचा। एक दिन पेड़ नहीं आया। दूसरे दिन, तीसरे दिन, पाँच दिन तक देखा, फिर भी नहीं आया। आखिर खोदकर देखा। न पहला अंकुर ... मधुर स्वाद, तो सबने कहा कि

हिन्दुस्तान रूस को छोड़कर यूरोप के बराबर बड़ा देश है। यहाँ यूरोप से कुछ कम विविधता नहीं। कई भाषाएँ हैं, जैसे कि यूरोप में हैं। इतना ही नहीं, वहाँ तो एक ही लिपि है पर यहाँ अनेक लिपियाँ हैं और वहाँ एक ही धर्म है पर यहाँ अनेक धर्म। इतना अधिक अन्तर होते हुए भी हम अपने को एक देश के निवासी मानते हैं और वहाँ के लोग अपने को एक-एक देश के निवासी। वहाँ के कुछ देश तो हमारे प्रांतों के एक हिस्से के जितने छोटे हैं, फिर भी वे अपने को अलग राष्ट्र मानते हैं, क्योंकि हरएक की अपनी एक अलग भाषा है। हिंदुस्तान में वैसी बात नहीं सुनी जाती। यहाँ के समाज-शास्त्र में एक व्यापक बुद्धि है। इसीलिए रवीन्द्रनाथ ने कहा है कि यह 'महामानवों का समुद्र' है। इसमें अनेक लोग आये और अब भी आयेंगे। हमारे देश में विविधता होते हुए भी एकता है।

एकता अंग्रेजों की बदौलत नहीं

यह एकता अंग्रेजों ने नहीं बनायी है, जैसा कि कुछ लोग सोचते हैं। अंग्रेज तो चाहते थे कि देश के अधिक-से-अधिक टुकड़े हो जायें और उन्होंने वैसी कोशिश भी की। वे लंका को अलग कर सके, तो कर ही दिया। ब्रह्मदेश को अलग कर सके, तो अलग कर ही दिया। हमने भी इसका कोई विरोध नहीं किया, क्योंकि हम मानते थे कि अपने निकट के देश अगर अलग रहना चाहते हैं, तो रहने दो। वास्तव में अंग्रेजों ने तो और भी भेद बढ़ाये। जैसे हिन्दू-मुसलमानों के। पहले से कुछ भेद तो था ही, पर इन्होंने इसे बढ़ाया और उसके परिणाम स्वरूप हिन्दुस्तान के दो हिस्से बने। यह तो यहाँ की सभ्यता है, जिसके कारण हमने इसे एक देश माना है। पर अंग्रेजों ने तो हिंदुस्तान और पाकिस्तान दो बना दिये।

कुछ लोगों का यह भी खयाल है कि अंग्रेजों के कारण यहाँ अंग्रेजी भाषा चली और हिंदुस्तान के सभी प्रान्तों के लोगों ने उसे सीख लिया, जिससे वे एक दूसरे के साथ बातचीत कर सके और इसीसे एकता पैदा हुई। किन्तु यह विचार भी गलत है। हम तो वेदों के जमाने से ही एकता की भावना पाते हैं, जब कि यातायात के कोई साधन नहीं थे। उस समय के ऋषियों के अनुसार सिंधु से लेकर हिमालय की

शुरू तक एक अनूठा देश माना गया। यहाँ एक सभ्यता पली। असंख्य यात्री देश के इस सिरे से उस सिरे तक यात्रा करते रहे। असंख्य सत्पुरुष हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक सद्विचार का प्रचार करते रहे। इसीलिए हमारा एक देश बना है। हमें यह विरासत मिली, इसलिए हम भाग्यवान् हैं।

इतिहास-प्रदत्त ज़िम्मेवारी

पर यही विरासत सँभालने के लिए ताकत भी चाहिए। यदि यह ताकत न हो, तो हमारी यह ताकत—देश की अखंडता और विस्तार—हमारी कमजोरी ही साबित होगी। इसलिए देश के इतिहास ने हम पर बड़ी भारी जिम्मेवारी डाली है कि यहाँ जो मसले पैदा होंगे, उनका हल हम प्रेम और शान्ति के तरीके से करें। अगर हम यह जिम्मेवारी सँभाल न पाये, तो देश की विशालता हमारी कमजोरी साबित होगी और परिणामस्वरूप हमारी आजादी भी न टिकेगी। इतिहास हमें सिखाता है कि इस देश पर दूसरों के जो आक्रमण हो सके, उसका कारण यहाँ के लोगों को यहाँ की विविधता का आन्तरिक भान न होना ही है। इसके कारण भेद बढ़े, सिर-फुटौवल हुए, एक-दूसरे के साथ विरोध शुरू हुआ और हिन्दुस्तान को वर्षों तक गुलाम रहना पड़ा।

शान्ति और प्रेम का तरीका अनिवार्य

इसलिए हमारे देश के लिए शान्ति और प्रेम का तरीका अनिवार्य हो जाता है। मैं तो यह कहूँगा कि यह हमारा सद्भाग्य है कि परमेश्वर ने ऐसी रचना कर रखी है कि हम शान्ति और प्रेम से ही अपने मसले हल करें। मैंने इसे 'सद्भाग्य' कहा है, क्योंकि अगर हम अपने मसले शान्ति और प्रेम से हल न कर सकें, तो हमारी ताकत और टिकाव न रहे, ऐसी योजना परमेश्वर ने की है। अगर हिन्दुस्तान फौजी ताकत बढ़ाने की कोशिश करे, तो वह [illegible] हो कमजोर हो जायगा, गुलाम हो जायगा। अब अमेरिका या रूस किसी न किसी के शरण जाना ही पड़ेगा। फिर हम आजाद न रह सकेंगे। इसलिए मैं इसे बड़ा भाग्य मानता हूँ कि इस देश के लिए यह अनिवार्य है कि सारे देश के मसले शान्ति और प्रेम के तरीके से हल किये जायँ।

जैसे इस देश के लिए यह अनिवार्य है कि यहाँ के मसले शान्ति के तरीके

से हल किये जायें वैसे ही विज्ञान के लिए भी अनिवार्य है कि दुनिया अपने मसलों को हल करने के लिए शांति और प्रेम का तरीका ढूंढ़े। आज के शस्त्र मानव के हाथ में नहीं हैं। शस्त्र शक्ति में चाहे कितनी ही बुराइयाँ हों, पर यदि वे मानव के नियंत्रण में रहें, तो कुछ मात्रा में भी ठीक हो सकते हैं। किन्तु आज विज्ञान का इतना विकास हुआ है कि शस्त्र शक्ति मानव के हाथ में रह ही नहीं गयी। ध्यान दीजिये कि यहाँ कोई बीड़ी पीकर बिना बुझाये फेंक दे और उससे घर को आग लग जाय तो उसे बुझाने की शक्ति उसमें नहीं रहती। उसने जान-बूझ-कर तो नहीं फिर भी आग तो लगायी ही। उसके हाथ में आग लगाने की शक्ति है और वह जानता है पर वो आग लगा सकता है, किन्तु आग बुझाने की शक्ति उसके हाथ में नहीं है। विज्ञान के जमाने में लगनेवाली आग की लपटें देश न सिर्फ कुछ पर, बल्कि देश-के-देश जला सकते हैं। मानवता का और मानव जाति का समूल उच्छेद करने की शक्ति विज्ञान ने निर्माण की है। इसलिए दुनिया के लिए यह जरूरी है कि वह अपने मसले शांति और प्रेम के तरीके से हल करे। यह आग्रह कभी न किया जाय कि एक देश में जो रीति या तरीका चला वही सभी देशों में चले। हमारी वृत्ति आग्रह की नहीं है। हरएक देश के अपने भिन्न-भिन्न गुण होते हैं। इसलिए हर देश में एक ही प्रकार की राज्य-व्यवस्था और समाज रचना चलनी चाहिए, ऐसा आग्रह हम न रखें। हरएक देश अपनी विशेष परिस्थिति के अनुसार अलग-अलग समाज-रचना कर सकता है, ऐसी अनाग्रही वृत्ति हम रखें तो दुनिया में शांति रहेगी। नहीं तो सारी दुनिया के लिए अशांति की नौबत आयेगी। आज हिन्दुस्तान का जो अंतरराष्ट्रीय स्थान है हिन्दुस्तान का जो स्थान है और हिन्दुस्तान की जो ऐतिहासिक जिम्मेवारी है, इन सबके कारण हमारे लिए शांति का तरीका अनिवार्य है, और सारी दुनिया के लिए भी विज्ञान के कारण शान्ति का तरीका अनिवार्य है। हमारे लिए यहाँ की अपनी परिस्थितियों के कारण अनिवार्य है, वहाँ विज्ञान के कारण सारी दुनिया के लिए भी अनिवार्य हो गया है। अब सबको अपने मसले हल करने के लिए शांति का ही तरीका अख्तियार करना पड़ेगा। हमें यह देखना होगा कि आग न लगने पाये और लगे, तो बुझ सके।

लोहिया के भारतीय परंपरा के उद्‌गार

जब इंदौर मे गोली चली तब मुझसे नहीं रहा गया। मैंने कहा कि स्वराज्य में इस तरह गोली नहीं चलनी चाहिए। स्वराज्य मे आंदोलन चलानेवालों पर भी जिम्मेदारी है कि वे अपने पर अंकुश रखें और हिंसा न होने दें। सरकारवालों को भी यह वृत्ति रखनी चाहिए कि गोली न चले। इसलिए हमें खुशी है कि जब त्रिवांकुर-कोचीन में गोली चली तब राममनोहर लोहिया की आत्मा पुकार उठी। यद्यपि वहाँ सोशलिस्ट पार्टी की ही सरकार थी फिर भी उनकी आत्मा की पुकार प्रकट हुई। उस पर फिर चर्चा हुई। उसके पक्ष और विपक्ष में जो बातें की गयीं उन सबमें मैं नहीं पड़ना चाहता। किन्तु उनके हृदय से स्वयंस्फूर्ति से जो उद्‌गार निकले, यद्यपि वहाँ उन्हींकी सरकार थी उन उद्‌गारों को हम भारतीय उद्‌गार कहते हैं और उनके साथ हमारी पूर्ण सहानुभूति है।

हिंसा के बारे में एक गलत खयाल

आजकल यह भ्रम उत्पन्न हुआ है कि हिंसा से सारे मसले हल हो सकते हैं और जल्द हल हो सकते हैं, यह गलत है। हिंसा से सारे मसले न तो हल हो सकते हैं और न जल्द ही हल हो सकते हैं। मसले हल हुए, ऐसा आभास होता है। अगर उस आभास से ही हम मान लें कि मसले हल हो गये, तो यह गलत होगा। मान लीजिये कि यहाँ गंदगी पड़ी है और देर लगेगी, इस ख्याल से झाड़ू नहीं लगायी गयी। उस पर कालीन बिछा दिया और मान लिया कि स्वच्छता हो गयी। लोग बैठ गये और सभा आरंभ हुई। फिर नीचे से एक बिच्छू निकला और उसने किसीको काटा और सभा समाप्त। आखिर झाड़ू लगाने में देर होगी, यह सोचकर गंदगी को ऊपर से ढँक देने से स्वच्छता नहीं हो जाती। स्वच्छता के लिए कुछ करना ही पड़ता है। मराठी में एक कहावत है कि बच्चा गेहूँ बोने गया और उसने एक दाना बोया। एक दिन राह देखी, नहीं उगा। दूसरे दिन तीसरे दिन चौथे दिन राह देखी फिर भी नहीं उगा। आखिर पाँचवें दिन बाहर बाल-सा अंकुर उठा तो बच्चे को लगा कि

क्या वह अंकुर फूटने में इतनी देर क्यों हुई ? उसने उसे बढ़ाने के लिए ऊपर से खींच लिया। पर जब दूसरे दिन देखा तो वह अंकुर क्षीण हो गया था। ऊपर से खींचने से अंकुर बढ़ नहीं सकता। उसके लिए तो समय लगता है और वह लगना भी चाहिए। उसमें कम समय लगने की कोशिश चलती है, तो वह टेढ़ी कोशिश होती है। उससे सारा मामला ही ठप्पा हो जाता है। इसलिए हिंसा से मसले जल्द हल होते हैं यह कथन गलत ही है।

देह-प्रधान तालीम के नतीजे

आजकल लोगों का हिंसा पर इतना विश्वास है कि वे मानते हैं कि हिंसा से ही सारे मसले हल हो सकते हैं। यह ख्याल गलत है। घर में भी माँ-बाप बच्चे को तमाचा लगाते हैं। इसका मतलब यह है कि उनका प्रेम पर, अपनी समझाने की शक्ति पर उतना विश्वास नहीं, जितना तमाचे पर है। स्कूल में भी यही होता है। बच्चा देर से आता है, तो उसे नियमितता सिखाने के लिए गुरु छड़ी लगाता है। फिर बच्चा नियमित स्कूल में आने लगता है। तब वे कहते हैं कि देखो असर हो गया। यहाँ उसकी देह को छड़ी का स्पर्श हुआ, वहीं उसे सद्गुण की प्रेरणा हो गयी। मानो सद्गुण की प्रेरणा के लिए छड़ी का स्पर्श उसके मन का स्पर्श, जितना लाभदायी है ऐसा माना जाता है। किंतु यह ब्याज के कारण मूल पूँजी गँवाने जैसा ही हुआ। छड़ी मारने से बच्चा स्कूल में नियमित तो आने लगा पर उसके साथ उसने डर भी सीखा। उसे यह तालीम मिली कि तुम्हें कोई मारे, तो उससे डरो। इस तरह उसने निर्भयता खोकर नियमितता हासिल की।

आप ही बतायें कि निर्भयता की कीमत ज्यादा है या नियमितता की ? आपने एक पैसा कमाया और रुपया गँवाया इससे क्या होता है ? बच्चा बाद किसी के लिए नियमित स्कूल जाने लगता है। किंतु बाद में दबाव न रहा तो वह नियमितता भी भूल जायगा, यही संभव है। इसलिए नियमितता भी टिकनेवाली नहीं और साथ-साथ डर भी पैदा हो गया। इस तरह की तालीम खतरनाक है। आज तो यह बच्चा डर के मारे शिक्षक या माता-पिता के वश में है, लेकिन, कल किसी जालिम के भी वश हो जायगा। यह तालीम बच्चे को देह-प्रधान बनानेवाली

है। उसे सिखाया जाता है कि देह पर खतरा हो तो फौरन सामनेवाले की हत्या करना चाहिए। इस तालीम के माने यह है कि हम अपने सद्गुणों को खतरे में डालते हैं। आखिर जुल्मी लोगों के पास भी कौन सी सत्ता है? यही कि वे मार सकते, पीट सकते और धमका सकते हैं। फिर इस तालीम से सारा-का सारा नागरिक शास्त्र खतम हो जाता है।

इसलिए जब हम देखते हैं कि हमारे मसलों के हल होने में देर है और सोचते हैं कि हिंसा करने से मसले जल्द हल हो जायेंगे तो यह एक निरा भ्रम ही है। इस भ्रम में लोग अनादिकाल से पड़े हैं। दस हजार साल से हिंसा के प्रयोग हुए हैं। एक हिंसा से दूसरी हिंसा की तैयारी हिंसा की प्रक्रिया है, ऐसा ही अनुभव आया है। फिर भी मनुष्य मान लेता है कि हिंसा की लड़ाई में हम इसलिए नहीं हारे कि हिंसा के तरीके में दोष है, बल्कि इसलिए कि हममें हिंसा शक्ति कम थी। शस्त्रास्त्र की लड़ाई में हारनेवाले यह नहीं समझते कि हिंसा में कोई शक्ति नहीं है, बल्कि वे यही समझते हैं कि हम काफी हिंसक नहीं थे; इसलिए ज्यादा शक्ति बढ़ाने की कोशिश करनी चाहिए। फिर वह हारा हुआ शस्त्रास्त्र बढ़ाने की कोशिश करता और फिर लड़ता है। इसके बाद जो हारता है, वह भी शस्त्रास्त्र बढ़ाता है।

युद्ध की गंगोत्री हमारे ही घर में

इस तरह एक-दूसरे को देखकर हिंसा बढ़ाते-बढ़ाते हम आज 'टोटलवार (सकल युद्ध) तक आये हैं। आज एक व्यक्ति या एक जमात की दूसरे व्यक्ति या जमात के साथ लड़ाई नहीं चलती। अब तो एक राष्ट्र-समूह की दूसरे राष्ट्र-समूह के साथ लड़ाई चलती है। लेकिन इस युद्ध का उद्गम स्थान इस युद्ध की गंगोत्री कौन-सी है, कहाँ से यह गंगा बह निकली है? एटम बम या हाइड्रोजन बम तक जो मामला बढ़ा है, उसका आरम्भ कहाँ से हुआ? स्पष्ट है कि उसका आरम्भ परमप्रिय माता पिता और गुरु से ही हुआ है। जिन्होंने अपने बच्चे को सद्गुण सिखाने के लिए मारने-पीटने का तरीका अख्तियार किया। एटम और हाइड्रोजन बम की गंगोत्री वे ही हैं। अगर माता पिता और गुरु बच्चों को ऐसी तालीम दें कि

हमारी बात तुम्हें जँच जाय, तो उसे मानो और न जँचे तो न मानो। तभी देश बचेगा। इसी तालीम से हम विचार प्रधान बनेंगे। जो बात जँचती है, वही माननी चाहिए और जो नहीं जँचती उसे नहीं मानना चाहिए।

लेकिन आजकल तो उलटा चलता है। बच्चों को हरदम पीटा जाता है। बच्चों को सिखाना चाहिए कि जो बात तुम्हें नहीं जँचती उस पर अमल मत करो। चाहे कोई तुम्हें मारे या पीटे, फिर भी उसकी बात कबूल मत करो और मार खाते रहो। शांति से मार खाने की यह शक्ति, यह तितिक्षा ही 'निर्भयता' है। शस्त्रों पर विश्वास रखना निर्भयता का नहीं डरपोकपन का लक्षण है। इसीलिए यह जरूरी है कि हम शिक्षण में यह तत्त्व दाखिल करें कि कभी भय के वश में न होना चाहिए। हम बच्चों को दो बातें सिखायें : (१) हम किसीसे डरेंगे नहीं और न किसीको डरायेंगे ही और (२) हम किसीसे दबेंगे नहीं और न किसीको दबायेंगे ही। यही बात गीता ने कही है: 'नायं हन्ति न हन्यते'—यह न मारता है और न मरता है।

अभय की सबसे पहले आवश्यकता

इसलिए हम ऐसा तरीका अख्तियार करना चाहते हैं कि जिससे मसले हल हो जायँ और अशान्ति या असन्तोष पैदा न हो, चित्त में भय न रहे। हमारे इतिहासवेत्ताओं को यह बात मालूम थी। इसीलिए हमारे समाज-शास्त्र में एक शब्द लिखा है: "अभय"। लेकिन आज उसके बदले "लॉ एण्ड आर्डर" (कानून में व्यवस्था) आया है। आज माना जाता है कि लोग भयभीत होकर ही क्यों न हों, पर 'ला एण्ड ऑर्डर' मानते हैं। इस तरह हमने व्यवस्था-देवी को परमदेवी मान लिया है। हम उससे कहते हैं कि 'ऐ देवी, तू परमदेवी है। तू ही हमारा रक्षण करती है। तू ही हमारा आधार है।' इस देवी पर इतना विश्वास हो गया कि नास्तिक लोग भी इसे मानते हैं। कम्युनिस्ट कहते हैं कि 'हम ईश्वर नहीं मानते।' तो हम उनसे पूछते हैं कि अगर ईश्वर को वे नहीं मानते, वे उसके बाप को मानते ही हैं—प्रत्यक्ष-देवता को तो मानते ही हैं।

कुछ लोग तो यह भी कहते हैं कि व्यवस्था करते-करते कुछ लोगों को

करना होगा। फिर इस तरह का समझौता करते-करते ऐसी व्यवस्था बनेगी, जिसमें संघर्ष ही मिट जायगा। संघर्ष तो उनका परम सत्य है। जब हम पूछते हैं कि 'संघर्ष मिटेगा तो क्या होगा?' तो वे कहते हैं: फिर तो प्रकृति के साथ संघर्ष आरम्भ होगा। वास्तव में यह सारा विचार ही गलत है। हम भी व्यवस्था की कीमत मानते हैं। अभी हमने आप लोगों को समझाया कि शान्त रहिये। परन्तु अगर हम समझाने के बदले मार पीट शुरू कर देते, तो आप शान्त तो रहते, लेकिन सुन नहीं पाते ज्ञान हासिल नहीं कर पाते। क्योंकि वह तो बाहर की शान्ति हो जाती पर अन्दर भय बना ही रहता। इसलिए वह शान्ति नहीं कहलाती। क्योंकि अन्दर जो उबलता रहता है, वह क्षोभ है। अगर क्षोभ प्रकट न हो और अन्दर ही रहे तो वह ज्यादा खतरनाक होता है। प्रकट हो जाय, तो कोई हर्ज नहीं। पानी की भाप अन्दर दबी रहती है तो उसकी शक्ति से ट्रेनें भग भक चलती हैं। इसी तरह क्षोभ बाहर प्रकट हो जाय, तो उसमें उतनी ताकत नहीं रह जाती। लेकिन हम उसे अन्दर दबाये रखें तो ज्यादा अनर्थ हो जाता है। आज आपने यहाँ इसलिए शान्ति रखी कि हमने समझाया धमकाया नहीं। लेकिन हम डर पैदा करके शान्ति स्थापित करें तो व्यवस्थादेवी 'देवी' नहीं रह जाती 'व्यवस्था-राक्षसी' बन जाती है। इस राक्षसी के पेट में इतनी अव्यवस्था होगी कि उसकी अपेक्षा बाहर की अव्यवस्था हमें मंजूर करनी पड़ेगी। इसलिए व्यवस्था से भी ज्यादा आवश्यक है, अभय'।

एक होने की अक्ल

आज हमने सुना कि झरिया एक बड़ा कुरुक्षेत्र है। यहाँ लड़ाइयाँ चलती हैं। यहाँ कितने दुर्योधन दुःशासन और कितने कौरव पुत्र हैं, हम नहीं जानते। लेकिन यहाँ मजदूर अवश्य रहते हैं। उनसे काम लेना है और हर हालत में लेना है ऐसा सोचा जाता है। उनसे कोयला निकलवाना है। अगर जमीन से कोयला न निकला तो देश का मुँह काला हो जायगा। इसलिए उनसे काम करवाना है ऐसा सोचा जाता है। लेकिन मजदूर का मतलब है, श्रमशील। जहाँ श्रमशील होते हैं, वहाँ तो शान्ति होनी ही चाहिए। जहाँ आलसी लोग रहते हैं

वहाँ शान्ति होनी चाहिए। जहाँ श्रम करनेवाले हैं वहाँ तो सम्पत्ति पैदा होती है। किन्तु आज तो इससे उल्टी बात हो रही है। जहाँ श्रम करनेवाले हैं, वहाँ दो पक्ष खड़े हो जाते और माना जाता है कि दोनों के हित भिन्न भिन्न हैं। एक के दो और दो के चार, इस तरह टुकड़े टुकड़े करने की अक्ल तो दुनिया में सबको हासिल है। पर चार के दो और दो का एक बनाने की अक्ल किसीको हासिल नहीं है। टुकड़े करने की यह अक्ल, जिसे गीता ने राजसी-बुद्धि कहा है और जिसके कारण कई समस्याएँ खड़ी हैं—इसका उसके साथ नहीं मिलता और उसका इसके साथ नहीं मिलता—तो सबको हासिल है। किन्तु सबमें जो समान भाग है, उसे प्रकट कर सबको उस पर एक करने की अक्ल सूझनी चाहिए।

गुण्डों का राज्य

मुझे बताया गया कि यहाँ गुण्डों का राज्य चलता है। लेकिन जहाँ गुण्डों का राज्य न हो, ऐसी जगह ढूँढ़ने पर भी कहीं न मिलेगी। एक गुण्डे वे होते हैं, जो 'गुण्डे' कहलाते हैं और दूसरे गुण्डे वे हैं, जो 'सेनापति' या 'धर्मवीर' कहलाते हैं। सोचने की बात है कि हम सारे शिक्षित लोग अपनी रक्षा का आधार पुलिस और सेना पर रखते हैं। इससे अधिक अनर्थ क्या हो सकता है? इससे अधिक पराधीन दशा कौन सी हो सकती है? और ये सिपाही भी कौन होते हैं? इनमें कई गुण्डे होते हैं। जिसकी छाती बत्तीस इंच की हो, वह सिपाही बनता है। यह भी है अनेक गुण्डे और पेशों पर हम अपने देश का आधार रखते हैं। फिर उनके लिए क्या क्या करना पड़ता है, यह सब भी सोचना चाहिए। इधर जंग में लड़ाइयाँ हुईं, तो वहाँ पर माँग की गयी कि सेना को मुफ्त शराब मिलनी चाहिए। सेना को शराब की सहूलियत होनी चाहिए। तब हमने सोचा कि रावण की सेना में तो सब लोग शराब पीते थे, परन्तु रामजी की सेना के बंदरों को शराब की जरूरत महसूस न होती थी। हनुमान् को शराब की जरूरत नहीं थी। इसलिए राष्ट्र की रक्षा करनेवाली यह सेना राक्षसी है या सात्त्विक, इस पर हमें सोचना चाहिए। तुलसीदासजी ने 'हनुमान्-चालीसा' लिखा। रावण भी तो ताकतवर था पर

उसने 'रावण-चालीसा' नहीं लिखा। क्योंकि हनुमान् की ताकत हमें बचानेवाली है, रावण की ताकत वैसी नहीं। हनुमान् की ताकत से ही देश बचेगा, रावण की नहीं।

लेकिन आज तो हम गुंडों को हनुमान् की पदवी देना चाहते हैं। हम उस सेना को अपनी रक्षा का आधार मानते हैं, जिसके सिपाहियों को शराब पिलानी पड़ती है, भोग के साधन देने पड़ते हैं और रणक्षेत्र में भेजने पर जिनके भोग-विलास के लिए कन्याएँ भेजनी पड़ती हैं। उनकी अनीति को भी नीति मानना पड़ता है। जब हमने सुना कि 'वॉर बेबीज' यानी युद्ध में पैदा हुए बच्चों का सवाल है, तो हम ताज्जुब में रह गये कि युद्ध से बच्चे कैसे पैदा होते हैं! वहाँ तो लोग मरते हैं। लेकिन नहीं, आधुनिक युद्ध में बच्चे भी पैदा होते हैं। और ये ही चीजें हमारा आधार बनी जाती हैं! इस तरह जब तक हमारे देश की रक्षा गुंडों पर निर्भर है, तब तक गुंडों का ही राज्य चलेगा। भले ही उसे आप चाहे जो नाम दें, कोई नाम देने से असलियत नहीं मिटेगी। इसीलिए हम चाहते हैं कि हमारे मसले शांति के तरीके से हल हों।

कत्ल से, कानून से या हृदय से ?

कुछ लोग कहते हैं कि आपका जो भूदान-यज्ञ का कार्य चल रहा है, उसमें देर लगेगी। इसलिए कानून से जल्द काम क्यों नहीं करवा लेते? वे सोचते हैं कि कानून से काम जल्द हो जाता है, कत्ल से और भी जल्द हो जाता है। मैं मानता हूँ कि कत्ल से काम जल्द होता है। मान लीजिये कि हमारे सारे मजदूर उठ खड़े हो जायँ, एक तारीख मुकर्रर करें (जैसे कि २१ जनवरी) और उस दिन सब मालिकों को खत्म कर दें, तो विनोबा जो काम दस साल में करता वह एक दिन में हो जायगा। मैं मानता हूँ कि यह हो सकता है। लेकिन क्या यह भी कोई हल है? लोग सोचते हैं कि कानून से क्या नहीं हो सकता? लेकिन क्या कानून से आप दयालु बन सकते हैं, धार्मिक बन सकते हैं? सवाल है कि भूमि का मसला कानून से हल नहीं हो सकता। कानून से जमीन बँट सकती है, पर वह टूटे दिलों को जोड़ नहीं सकता। यह काम केवल हृदय से ही हो सकता है।

सौ प्रतिशत दान-पत्र चाहिए

हम गणित के प्रेमी हैं, इसलिए गणित करते हैं। अब तक साढ़े तीन लाख लोगों ने दान दिया। अगर एक मनुष्य दान देता है, तो कम-से-कम दस मनुष्य हमारा विचार सुनते हैं। जितने भारतभर हैं, उतने दान पत्र हमें मिलने चाहिए। हमें तो सौ प्रतिशत दान पत्र चाहिए। अगर देश में छह करोड़ मनुष्य संपत्ति रखनेवाले हैं—फिर वे चाहे चार कौड़ी रखें चाहे चार करोड़—तो हमें छह करोड़ संपत्ति-दान पत्र चाहिए। लोग हमसे पूछते हैं कि क्या किसी आन्दोलन में इस तरह सौ प्रतिशत काम हो सकता है? अभी वैद्यनाथ बाबू ने भी कहा कि सौ प्रतिशत दान पत्र कैसे हासिल कर सकते हैं? कुछ 'परसेंटेज' (प्रतिशत) लगाइये। तो हमने उनसे कहा कि हाँ आप गद कर सकते हैं, पर हमारी माँग तो १००% दानपत्रों की रहेगी।

यहाँ जितने बैठे हैं, वे सब-के-सब मरनेवाले हैं। मरने में सौ-प्रतिशत की बात है, तो फिर जीवन में कम प्रतिशत क्यों? यह आन्दोलन तो जीवन निर्माण का आन्दोलन है। सारे लोग मरनेवाले हैं। उस चुनाव में सभी वोट देंगे। यम-राज की पेटी में सबके वोट गिरेंगे। फिर जब मृत्यु के लिए इतना वोटिंग हो तो जीवन के लिए कम क्यों हो? जो विचार हमें घुमा रहा है, हमारे पाँवों को प्रेरणा दे रहा है, वह विचार अगर आपको जँच जाय तो आपसे भी रहा न जायगा। विचार पर हमारी इतनी श्रद्धा है कि हम मानते हैं कि दुनिया में विचार से बढ़कर कोई ताकत नहीं है।

आत्म शक्ति का महत्त्व

एक बार एक भाई ने हमसे कहा कि 'मैं आपकी कुण्डली देखना चाहता हूँ। मंगल और शनि का आप पर क्या असर पड़ता है, यह देखना चाहता हूँ।' मैंने कहा कि मैं क्या मंगल की कुण्डली देखना चाहता हूँ कि उस पर मेरा क्या असर पड़ता है? क्योंकि वह तो आखिर जड़ है और हम चेतन हैं।' हम ब्रह्म हैं। हमसे बढ़कर दुनिया में कोई ताकत नहीं है। हम ब्रह्म हैं और सारी सृष्टि दृश्य है। हम इसे रूप देनेवाले हैं। जैसे कुम्हार मिट्टी को रूप दे सकता

है, वैसे ही हम इस शक्ति को चाहे जो रूप दे सकते हैं। अगर यह विचार आपको जँच जाय तो आपमें ऐसी ताकत पैदा होगी जो ऐटम बम में भी नहीं है। जब लोगों ने मुझे सुनाया कि ऐटम बम कितना बड़ा शक्तिशाली है, तो हमने कहा 'हमारे पास 'आत्म बम' है, आत्मा की शक्ति। आखिर ऐटम बम मनुष्य ने ही तो बनाया। जो उसे बना सकते हैं वे उसे खतम भी कर सकते हैं। हम आपको समझाना चाहते हैं कि आप कमजोर नहीं हैं। आप अत्यन्त बलवान् हैं। आपसे बढ़कर बलवान् दुनिया में कोई नहीं है। किंतु यह शक्ति शस्त्रों में नहीं आत्मा में है, प्रेम में है। उसी शक्ति को प्रकट करने के लिए यह आन्दोलन चल रहा है।

'सर्वोदय' का यही नियम है कि पहले हमारे भाई को मिले और बाद में हमें। लेकिन अब लोग कहते हैं कि पहले मुझे मिले, तो यह सर्वनाश का तरीका है। इसलिए हम चाहते हैं कि सब लोग कहें कि पहले दूसरों को मिले। हम ऐसी सहज व्यवस्था चाहते हैं राक्षसी-व्यवस्था हम नहीं चाहते। आप 'गीता प्रवचन' का पठन करेंगे तो आपको आत्मा की शक्ति का भान होगा।

मझीया
२७-१२-५४

हरएक देश के निवासियों को अपने-अपने देश के प्रति प्रेम और अभिमान होता है। प्रेम होना तो उचित ही है, पर अभिमान भी उचित है। अगर वह देश के किसी गुण के लिए हो और उस रूप में हो जिसमें किसी दूसरे देश की निन्दा का आशय न हो। इस मर्यादा में अपने देश का अभिमान रखना योग्य ही है। किन्तु हिंदुस्तान में हम लोगों में अपने देश के प्रति जो विशेष भावना है वैसी भावना हम दूसरे देशों में नहीं देखते।

'दुर्लभं भारते जन्म' क्यों ?

हिंदुस्तान में कहा गया कि "दुर्लभं भारते जन्म मानुष्यं तत्र दुर्लभम्" भारत-भूमि में जन्म पाना यह एक दुर्लभ वस्तु है पर उसमें भी मनुष्य का जन्म पाना और भी दुर्लभ है। इसका मतलब यह होता है कि हिंदुस्तान में कीड़े मकोड़े का जन्म लेना भी सौभाग्य है खुशकिस्मती है क्योंकि दूसरा वचन कहता है कि हिन्दुस्तान में मनुष्य का जन्म पाना और भी दुर्लभ है। दुनिया के किसी भी अन्य देश में इस किस्म का उद्‌गार नहीं निकला कि अपने देश में कीड़े मकोड़े का जन्म पाना भी सौभाग्य है। यह उद्‌गार अतिशयोक्तिपूर्ण है ही फिर भी अतिशयोक्ति के तौर पर यहाँ तक भावना रही यहां कि "इस मिट्टी में वस्तु बनकर पड़ना भी सौभाग्य है" इस विचित्र भावना का कारण कुछ असाधारण होना चाहिए। इसका कारण मैंने यही समझा कि इस देश में सर्वप्रथम मनुष्य ने मानव धर्म सीखा और उसे अहिंसा के तरीके से जीने का पता चला। मानव पहले शिकार करता था और जैसे दूसरे प्राणी रहते हैं, वैसे ही रहता था। उसके लिए हिंसा अनिवार्य थी जैसे जंगल के दूसरे प्राणियों के लिए वह अनिवार्य रहती है। उससे छुटकारा पाने की तरकीब मानव को हिन्दुस्तान में ही सबसे पहले सूझी। यहाँ से मानव दूसरे देश गया और वह तरकीब लेता गया। इसीलिए

का उद्गार निकला है कि 'इस भूमि में जन्तु बनकर पड़े रहना भी सौभाग्य की बात है।

सर्वप्रथम भारत में ही खेती की खोज

पूछा जा सकता है कि आखिर वह तरकीब कौन सी थी जिसके कारण हमारा जीवन हिंसा से बच गया और हमने मानवता का जीना सीखा ? वह तरकीब थी, खेती करना। आज हमें यह मालूम नहीं कि खेती में इतना बड़ा आध्यात्मिक रहस्य छिपा है। किन्तु दो-चार दाने बोकर उसमें से सौ दाने पैदा करना और फिर बैठ खायें, ऐसा जीवन निर्वाह करना यह एक विशेष ही वस्तु उस समय मानव को सूझी। तभी से हिन्दुस्तान में लोगों को अहिंसक जीवन का मार्ग-दर्शन मिला। फिर मांसाहार के त्याग का आन्दोलन चला और जैनियों ने उसमें पूर्णता भर दी। बुद्ध भगवान् ने उसके साथ अहिंसा और करुणा जोड़ दी और वैष्णवों ने खेती की उपासना। इस तरह एक एक कदम आगे बढ़ते-बढ़ते हिन्दुस्तान का समग्र समाज अहिंसा की खोज में आगे बढ़ता गया। लेकिन अहिंसा की सब प्रथम खोज हिन्दुस्तान में ही हुई।

मेरा वेदों का जो अभ्यास है, उस पर से कह सकता हूँ कि वेदों में इतना बहुत आदर के साथ वर्णन आता है कि 'देव आये, उन्होंने हाथ में परशु लिया और जंगल काटकर जमीन बनायी। वेदों में कृषि के लिए और गायों बैलों के लिए इतना निस्सीम आदर दिखाई देता है कि उसकी तुलना में दुनिया की किसी भी दूसरी भाषा में वैसा वर्णन नहीं मिलता। हमारे सर्वोत्तम ऋषि (जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर) का नाम ऋषभ रखा गया है जिसके मानी हैं उत्तम बैल। हमारे यहाँ महान् बुद्ध भगवान् का नाम था गौतम याने उत्तम बैल। इस तरह अपने नेताओं को बैल की उपाधि देने में यहाँ के लोगों को इज्जत मालूम होती थी क्योंकि उसी बैल की मदद से हमें अहिंसक जीवन का दर्शन हुआ था। हमारी सभ्यता में गाय बैल के लिए बहुत आदर है। हिन्दुस्तान की भाषा में 'गो' के सौ अर्थ हैं : वाणी पृथ्वी बुद्धि वगैरह। इसलिए स्पष्ट है कि यहाँ भारत भूमि का इतना जो आदर दीखता है उसका कारण यही है कि शिकारी जीवन या दूसरे प्राणियों को खाकर जीने से

मुक्ति पाने में सहायक ऐसी की खोज यहीं हिन्दुस्तान में हुई। इसीलिए इस भूमि को पुण्यभूमि और इसकी मिट्टी में जन्तु का भी जन्म पाना पवित्र माना गया है।

सत्याग्रह से विज्ञान-युग के व्यापक मसलों का हल

जैसे यह बात हुई, वैसे ही दूसरी भी एक बात और हुई जो हमारे लिए सौभाग्य की बात है। दुनिया में जो हिंसक तरीके चलते थे उनकी अपेक्षा कोई कम तरीका अहिंसक माना जाता जो हमें हासिल हुआ था। मैंने 'अपेक्षा' इसलिए कहा कि उसी में भी कुछ हिंसा हो ही सकती है, पर पहले की अपेक्षा उसमें अहिंसा के लिए बहुत अवकाश मिला। जैसे उन दिनों यह एक खोज हुई और उससे जीवन के तौर-तरीके में फर्क हुआ, वैसे ही इस जमाने में भी एक और खोज हुई। आज विज्ञान के कारण परस्पर के सम्बन्ध, व्यापार, व्यवहार आदि सीमित और संकुचित नहीं रहे, व्यापक बन गये। आमदरफ्त के साधन वेग से गये और बन सकना बढ़ गयी। इन सबके परिणामस्वरूप जो मसले और झगड़े पैदा हुए, वे सीमित नहीं रहे, देशव्यापी हो गये। नई प्रकार के अन्यायों के प्रतिकार की जरूरत महसूस हुई। नई प्रकार के सवाल पैदा हुए। अन्याय के प्रतिकार के साधन, समाज में निर्माण होनेवाले मसले कैसे हल हों, इसका उपाय ढूँढ़ने की आवश्यकता पैदा हुई। पहले तो मसले छोटे थे। टोलियों या जमातों में वे पैदा होते और वहीं खतम भी हो जाते। लेकिन आज जो मसले पैदा होते हैं, वे छोटे नहीं रहते। आज के मसले ऐसे नहीं होते कि इस किसान की हद उस किसान की हद में गयी, इसका उस पर आक्रमण हुआ।

आज तो ऐसा चल चलता है कि आस्ट्रेलिया में इंग्लैंड के निवासी गये और वहाँ बस गये। वे समुद्र के किनारे किनारे ही रहते हैं, अन्दर नहीं जाते, क्योंकि अन्दर जंगल और काफी गर्मी है। समुद्र इसके किनारे पर ठण्ड है। फिर भी वे वहाँ किसीको आने नहीं देते और कहते हैं कि यह भूमि हमारी है। आज आस्ट्रेलिया में जितने लोग रह रहे हैं, उससे दसगुना लोग और बस सकते हैं। किन्तु वहाँवाले दूसरों को आने ही नहीं देते और खुद भी अन्दर जाकर खेती

नहीं करते। अब इस देश का उस देश पर हक है या नहीं, वहाँ के लोगों का और सारी दुनिया का उस पर हक है या नहीं ऐसे मसले पैदा होते हैं। यदि किसी देश में पेट्रोल पैदा होता हो तो क्या उस पर उसी देश का हक है या सारी दुनिया का? ऐसे सवाल पैदा होते हैं। इस तरह सवालों का क्षेत्र व्यापक बन गया है। जो सवाल छोटे होते हैं, वे समस्या के रूप में खड़े नहीं होते। पर इन दिनों जो सवाल पैदा होते हैं, वे समस्या के रूप में दुनिया के सामने खड़े हो जाते हैं।

नागरिकत्व का ही सवाल लीजिये। अफ्रीका में हिंदुस्तान से जो मजदूर गये, उन्हें वहाँ नागरिकत्व का हक है या नहीं इस पर वाद चला। कुछ कटुता भी पैदा हुई। उस पर जो चर्चा चली वह राष्ट्रीय पैमाने पर चली। एक देश का दूसरे देश के साथ वाद चला। कई समस्यायें ऐसी होती हैं जो बहुत व्यापक होती हैं। उनको हल करने के लिए आज दुनिया को शस्त्रास्त्रों के सिवा दूसरी कोई चीज सूझ नहीं रही है।

ऐसी हालत में हिन्दुस्तान में एक और चीज की खोज हुई और वह है 'सत्याग्रह'। उससे ऐसा समाज और विश्व व्यापक मसले भी हल किये जा सकते हैं। इसकी खोज अर्वाचीन काल में हिन्दुस्तान में हुई। इसलिए हम फिर से कहते हैं कि दुर्लभं भारते जन्म मानुष्यम् तत्र दुर्लभम्।

सत्याग्रह का विकास करना है

जैसे प्राचीन काल में एक खोज हुई और हम अहिंसक जीवन के लिए प्रस्तुत हो गये, वैसे ही अर्वाचीन काल में सामाजिक मसले हल करने के तरीकों की एक व्यापक राय आयी। दुनिया को सूझता न था कि क्या किया जाय। आज खेती में अभी सुधार हो गये हैं लेकिन उस जमाने में खेती मुश्किल से चलानी पड़ती होगी। इसी तरह आज भी हमारा 'सत्याग्रह' मुश्किल से चलेगा कारण अभी हम उसका और आसान और सुव्यवस्थित तरीका नहीं मिला है। जैसे उस जमाने में खेती का आसान और सुव्यवस्थित तरीका नहीं मिला था। पर आज विज्ञान के आधार पर खेती का आसान तरीका प्राप्त हो गया है, वैसे ही सत्याग्रह

का भी आसान तरीका मिल जायगा। आज हम सर्वसाधारण के लिए उसका एक शास्त्र नहीं बना सके हैं। यह कोई आसान बात नहीं है। इसमें कई प्रकार की खोजों, संशोधनों की जरूरत है। हमें उसे विकसित करना होगा। अगर हम संशोधन करेंगे, तो एक बड़ा भारी कदम उठायेंगे और समाज को सामाजिक हिंसा से बचायेंगे।

जीवन के अन्तर्गत हिंसा से मुक्त होने के साधन की खोज तो हुई, लेकिन अभी भी हम मांसाहार से पूरे निवृत्त नहीं हुए। जब खूब बढ़ेगा, खेती के लिए पानी का प्रबन्ध होगा, सिंचाई का प्रबन्ध और हरएक का खेती से संबंध होगा। चाहे कोई मेयर हो या मिनिस्टर, थोड़ी देर के लिए हरएक खेती करेगा ही—जब ऐसी स्थिति निर्माण होगी, तभी मनुष्य को प्राणियों के मांस के आधार पर जीने की जरूरत न रहेगी। लेकिन खेती की खोज से अब एक राह खुल गयी है। वैसे ही सत्याग्रह की राह खुल गयी है। अब उसे परिपूर्ण रूप से विकसित करने की बात सोचनी होगी। वह विकास करना बाकी है। आगे के एक दो हजार साल तक वह होता रहेगा। खेती का पाँच हजार सालों से विकास होता आ रहा है, लेकिन अब भी विकास बाकी है। मांसाहार और मत्स्याहार से मुक्त होकर सारे समाज को अन्नाहारी और शाकाहारी बनाने की बात अभी नहीं आयी है। जैसे उसके विकास के लिए हजारों साल लगे, वैसे ही सत्याग्रह के विकास के लिए भी हजारों साल लगें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। किन्तु यह बीज हाथ आ गया है और उसका उद्गम हिन्दुस्तान में हुआ है।

आज सबेरे एक भाई ने हमसे एक सवाल पूछा। उसमें उनकी जिज्ञासा बुद्धि ही थी। उन्होंने कहा : आप सत्याग्रह की बात करते हैं। किन्तु क्या आप यह कहते हैं कि हमने सत्याग्रह और अहिंसा से ही स्वराज्य हासिल किया? हमने जवाब दिया कि पूरे अर्थ में अहिंसा से स्वराज्य हासिल हुआ, ऐसा हम नहीं कह सकते। हिन्दुस्तान में हमने सत्याग्रह का जो टूटा-फूटा आन्दोलन चलाया, उसमें कई प्रकार की हिंसाएँ हुईं। मानसिक हिंसा तो कितनी हुई, कोई कल्पना ही नहीं। फिर भी हमने एक मर्यादा का पालन किया है। उसीसे स्वराज्य हासिल हुआ, यह बात तो हम नहीं करते। कुछ दुनिया की परिस्थिति

भी इसके लिए अनुकूल थी। किन्तु यहाँ सत्याग्रह का जो आन्दोलन चला वह एक बड़ा भारी है, जिससे हमें स्वराज्य प्राप्त हुआ।

हमारा वह आन्दोलन तो आरम्भ था। वह तो अस्पष्ट और अविकसित शक्ति से चलाया हुआ आन्दोलन था। अब तक हम समझते थे कि सत्याग्रह के मानी 'निगेटिव' (अभावात्मक) ही है। सामनेवाले के अन्याय के प्रतिकार के लिए जब हम शस्त्र से प्रतिकार नहीं कर सकते या करना नहीं चाहते तो शस्त्रों के बिना प्रतिकार किया जाय, ऐसा हम समझते थे। लेकिन सत्याग्रह का यह तो एक अस्पष्ट और एकांगी अर्थ है। यह तो हमें सत्याग्रह की सिर्फ दूर से झाँकी मिली है। अभी उसकी शक्ति विकसित करनी है। सत्याग्रह निगेटिव वस्तु नहीं पॉजिटिव (विधायक) वस्तु है। उसमें सारा जीवन उस पर खड़ा करने की बात है। फिर भी हमारे देश में उसकी एक नयी शक्ति का प्रादुर्भाव तो हुआ ही। हम अपने को धन्य मानते हैं कि हमारे जीते जी हम उसका दर्शन तो मिला।

भूदान-यज्ञ भी सत्याग्रह है

लोग हमसे पूछते हैं कि भूदान-यज्ञ में आप पैदल क्यों चलते हैं? क्या आप इसी तरह पैदल चलते रहेंगे और लोगों में प्रेमभाव जाग्रत करते रहेंगे? क्या सत्याग्रह के इस शस्त्र का उपयोग न करेंगे? इसका अर्थ यह हुआ कि आखिर हम सत्याग्रह का मतलब इतना ही समझें कि बिना शस्त्र के प्रतिकार करना और सामनेवाले पर दबाव लाने की तरकीब हाथ लगना। इससे ज्यादा उसका अर्थ हम नहीं समझ पाते। किन्तु यहाँ से विरोधी सत्ता का दबाव मिट गया। लोगों को जाग्रत करने के लिए अब वैसे दबाव नहीं रहे। फिर यहाँ सत्याग्रह को एक निरर्थक अर्थ में लगाना गलत ही होगा। अब उसके विधायक रूप पर ही सोचना और उसे विकसित करना चाहिए।

हम समझते हैं कि हम जो कर रहे हैं वह एक अर्थ में सत्याग्रह ही है। हम लगातार ठंड में, बारिश और धूप हर हालत में घूमते हैं। निरन्तर लोगों को समझाते रहते हैं। दरिद्र लोगों से भी दान लेते हैं। आखिर यह सब क्या है? गरीबों से दान लेने की यह बात बहुतेरे लोग समझते नहीं। हमारे

कई साथी भी हमसे पूछते हैं कि बाबा आप गरीबों से दान क्यों लेते हैं ? उन्हें तो देना चाहिए। उनसे लेना ही क्या ! हमने समझाया कि भगवान् श्रीकृष्ण ने भी सुदामा से तन्दुल लिये और उसे दिया नहीं। आखिर उस बेचारे से लेना क्या था ! उस को देना था पर भगवान् ने उससे पूछा कि हमारे लिए क्या लाये हो ! एक गरीब ब्राह्मण राजा के घर जाता है तो राजा प्यार से उसे अपने पास बैठाता और उससे पूछता है कि हमारे लिए क्या लाये हो ! सुदामा बेचारा शर्मिन्दा हो गया क्योंकि उसने एक निकम्मी चीज लायी थी। भगवान् ने उसके हाथ से उसे छीन लिया और वे प्रेम से खाने लगे। रुक्मिणी पास ही बैठी थी। वह बड़ी चतुर थी। उसने सोचा कि भगवान् थोड़ा-थोड़ा खिलाया जायेगा, तो न मालूम उसे क्या-क्या दे देंगे। इसलिए उसने भी एक हिस्सा माँगा और प्यार से खाने लगी। उसके बदले सुदामा को जो देना था वह भगवान् ने घर में दे दिया। परन्तु भगवान् ऐसे निठुर हैं कि उन्होंने उससे लिये और उसे नहीं दिया क्योंकि वे उसकी ताकत बढ़ाना चाहते थे। वे चाहते थे कि वह दुनिया में मांगता न फिरे। इसीलिए उन्होंने उससे लेना ही उसे दिया। केवल मूढ़ लोग यही समझ नहीं सकते कि यह क्या बात है।

हम उत्पादन की ताकत पैदा करना चाहते हैं, गरीबों की ताकत बढ़ाना चाहते हैं। अगर गरीब अपनी छोटी सी जमीन की मालकियत पकड़े रखेगा, तो बड़ा मालिक भी अपनी जमीन की मालकियत न छोड़ेगा। यह साफ समझना है, तो मालकियत छोड़नी ही पड़ेगी। जब छोटे लोग देंगे, तभी यह सिद्ध होगा कि मालकियत गलत है। फिर बड़े लोग भी उसे छोड़ेंगे। इससे एक नैतिक दबाव आयेगा और फिर उनके हृदय में यह बात प्रवेश करेगी। नैतिक दबाव उत्पादन का एक भाग है। इसे जो नहीं समझते, उन्हें ही ऐसा लगता कि बाबा सिर्फ हृदय-परिवर्तन की बात करता है, पर ताकत नहीं बढ़ाता। जो उत्पादन करना हो तो कौन सी ताकत काम में आयेगी ? हमारी जो मेहनत चल रही है, हम जो ताकत के काम कर रहे हैं—यह सब क्या है, इस पर जरा सोचिये।

कुछ लोग हमसे पूछते हैं कि आपने कहीं किसी बड़ी संस्था की स्थापना

मैं बुलाया जाय, तो क्या आप जायेंगे या इसी तरह पैदल घूमते रहेंगे? अब बस मोटर पर भी चढ़िये। अब तो दूसरे दिन जाते हैं। लेकिन कोई बड़ी मर्सिडीज़ भी बुलाते हैं, तो भी हम नहीं जाते। यह भी सत्याग्रह का एक अंग ही है। लोग नहीं समझ रहे हैं कि एक नयी शक्ति का आविर्भाव हुआ है और अब उसे विकसित करना है। गांधीजी ने जो किया उसका एक बाह्य रूप ही हमने देखा। उससे आज काम न चलेगा। वे तो दूसरी परिस्थिति में थे। उस समय अंग्रेजों को भगाने का काम करना था। वह सर्वथा 'निगेटिव' ही काम था। फिर भी उसके साथ उन्होंने कितना रचनात्मक काम जोड़ दिया था। लोग उनसे पूछा भी करते कि अंग्रेजों को हटाने के लिए खादी, छुआछूत मिटाने या ग्रामोद्योग की रक्षा की क्या जरूरत है? यह तो समाज सुधार का काम है। किन्तु नहीं, वास्तव में यह भी सत्याग्रह का अंग ही है।

एक बार तो इस सत्याग्रह आन्दोलन में गांधीजी ने छुआछूत के मामले पर उपवास भी आरम्भ कर दिया। इस पर लोग कहने लगे कि आज़ादी की लड़ाई के बीच यह मन्दिर-प्रवेश की बात कहां निकली? राजनैतिक आज़ादी के काम में इससे तो हम पर आघात है। किन्तु गांधीजी इस पर कहते कि 'यह तो उसीका एक अंग है। सारांश, अंग्रेजों को भगाना या यहाँ से उनका राज्य हटाना तो एक पहलू था ही, उसके साथ उन्होंने सारे रचनात्मक काम जोड़ दिये। अब यह बोझ हट भी गया है। इसलिए उन्होंने जो-जो किया, वह देखकर हम आगे बढ़ेंगे तो हमारा विकास होगा।

दो बिटुआ के रस्ता

इसे सत्याग्रह की दृष्टि से प्रत्येक जीवन में लाने की कोशिश करनी चाहिए। हमारे परिवारों के जीवन में अनेक ऐसे प्रसंग आते हैं। [illegible] है कि हमारे साथ हमारी नहीं बनती [illegible]। [illegible] होते हैं तो हम [illegible] हैं कि [illegible]। [illegible] है कि उनके साथ हमारी नहीं बनती तो हम कहते हैं कि तुम हमारे काम के लिए निकल जा। [illegible]

किसीसे बने या न बने, मेरा तो सभी से बनेगा। यह सत्याग्रह की शक्ति है। हममें श्रद्धा और सत्य का आग्रह होना चाहिए। हमें सत्य पर डटे रहना चाहिए। उससे निश्चय ही सामनेवाले का हृदय-परिवर्तन होकर परिस्थिति भी बदल सकती है। हमें ऐसी ही परम श्रद्धा रखनी चाहिए। हम सारी दुनिया को आजादी और शान्ति की राह पर ले जाना चाहते हैं, तो हमें अपने जीवन में सत्याग्रह की शक्ति का विकास अवश्य करना चाहिए।

आज मैंने एक जाति की चीज और दूसरी धर्म की चीज कही। इन दो बिन्दुओं को जोड़कर आप बीच का सारा इतिहास जान सकते हैं। उसे पहचानकर सत्याग्रह की शक्ति का विकास कैसे किया जाय, इस पर सोचें। उस शक्ति को विकसित करने का मौका, जिम्मेवारी या मिशन परमेश्वर ने हम पर सौंपा है। इसलिए हम अपने दिल छोटे न रखें, दिलों को व्यापक और ऊँचा बनायें। हम सत्याग्रह की शक्ति के विकास के लिए निरन्तर सोचते जायँ, नित्य चिन्तन करते जायँ और सेवा करते जायँ।

पुनमपुर
१०-१२-'५७

उपशीर्षकों का अनुक्रम

अत्याचार का प्रभाव पर आक्रमण नहीं हो सकता ८९

अत्याचार की मूर्ति ४२

अद्वैतवादी सर्वोदय १५१

अनशन कब किया जाय? १११

अपनी चीज दूसरे को देने में ही कल्याण १

अभय की सबसे पहले आवश्यकता २८८

अभिक्रम दूसरों के हाथ में न दिया जाय २०१

अमरप्रेम का राज २५९

अहिंसक आत्मा की शक्ति ६४

अहिंसा का सार : विश्वप्रेम ७१

अहिंसा की साधना २५५

अहिंसा धर्म ही नहीं निष्कर्ष धर्म २७४

अहिंसा हारी हिम्मत नहीं हरने की निशा ७

अहिंसा शीघ्र परिणामकारी कब? ६१

आचार्य नरेन्द्रदेव का आदर २५७

आज की दुनिया १ ६

आज की हालत पुकार रही है ८७

आज की शान्ति १ ७

आज के अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न १११

आज के युग की समझ की भूल १५

आज के युद्ध प्राकृतिक नियम के विरुद्ध १४१

आज राष्ट्रीकरण का विचार ही मत करो १५

आज विश्व को युद्ध-समाप्ति की प्यास २५

आज सबको समता की भूख है १९९

आत्मवाद पर आधृत साम्यवाद १८२

आत्म शक्ति का महत्व २६२

आन्तरिक एकता ही १२८

आज मानव तमोगुणी, विविध-कर्म रजोगुणी ७२

आर्थिक क्षेत्र में अहिंसा का प्रवेश आवश्यक २११

आशंका का निराकरण ११

इंग्लैंड ने सबक सीखा ७५

इतिहास बदल दिया २८१

इतिहास में युद्ध कम और प्रेम अधिक १५९

इस युग का धर्ममन्त्र ४१

इस युग के तीन गुण १ ६

इसका इलाज क्या है २९९

ईश्वर और मुसलमान हिन्दुस्तान बहुत को २७८

ईसा का पवित्र स्मृति-दिन २०१
ईश्वरसमीह भारत को कबूल १७२
उचित मूल्यमापन हो २११
उत्तर और दक्षिण का मिलन १८०
उत्पादक और वितरक का महत्त्व-मापन २ ६
उद्योगों का केंद्रीकरण २२६
उपनिषत्कालीन राज्य का दर्शन १६
उपनिषद् के आधार पर नयी रचना २४४
ऊर्ध्वमूलम् अधःशाखम् ८
एकता अंग्रेजों की बदौलत नहीं २८२
एकता की भूमिका १६१
एक होने की कला २८६
एवरेस्ट और ऊँचे व्यक्ति १२७
कत्ल से, कानून से या दया से ! २६१
करेंगा या मरेंगा ११२
कर्तव्य विभाजन १५
कलियुग में सत्ययुग २१८
कहीं एकमत से, तो कहीं बहुमत से निर्णय १ १
कामय मौमेनाम भगवान् ११६
कार्यकर्ता ग्रामसेवी बनें २११
कुछ लोग सर्वस्व त्याग करें १२५
केंद्रित और विकेंद्रित आयोजन २२१
केंद्रीकरण के दोष १
केवल विरोध ही कारगर नहीं १८
कोई भी मानव-समाज शैतान नहीं ७
क्या खाद्य पाप है ! २ ४
क्रांति के दर्शन से पक्षभेद मिटेंगे ११६
क्रांति : नैतिक मूल्यों में परिवर्तन १८५
क्रांति पक्षातीत ही होती है २४८
क्रांतियाँ कुर्सी से नहीं होतीं ७०
क्रांति अहिंसक ही होती है ४६
क्रांति का निरोध २५८
क्रांति के अग्रगामी ग्रामीण २११
क्रांति हिंसा से नहीं हो सकती ७०
खानदानी पूँजीवाद १८१
खतरा बाहरी नहीं भीतरी २२४
गरीब मेरी जबान से बोल रहे हैं ४४
गरीबों के दान का प्रभाव ४१
गलत और सही उपवास ६८
गांधीजी का महान् विचार १०८
गांधीजी का प्रतिकार विचार २१
गाँववाले ग्रामोद्योग का संकल्प करें २२५
गुरुओं का राज्य १६
चीन की मिसाल ८६
चुनाव के कारण जाति-भेद में वृद्धि १११
चुनाव देखो, लड़ो मत : ग्राम-संगठन १८
चुनाव से अनुचित कलह होगी २१०
चुनाव से व्यक्तिगत ठीक नहीं
निम्न अधिक शक्ति जनता ८४
जीवन के लिए अमर आधार १२
चोरी की सजा नहीं है १५०

जनता की परोक्ष और प्रत्यक्ष इच्छा १७३
जन भर भी हमारा विचार सुनेगा ८६
जबरदस्ती से धर्म मिट जाता है १६२
जमाने की माँग है १७८
जमाने के खिलाफ कोई टिक नहीं सकता १७७
जीवन दान के लिए आह्वान २५४
जीवनभर एक हिस्सा देने का विचार १६८
'टॅमरेबोब बनुषः' ९६
'ट्रस्टीशिप' का क्रांतिकारी विचार १८१
तीन आधार : सत्य, अस्तेय अपरिग्रह २५२
तीनों गुणों का विकास करें २ २
तीसरी शक्ति २१
तू ब्रह्म है —
तेलंगाना में कम्युनिस्टों की खोज ८६
दया धर्म का मूल पर समता पूर्णता २१२
...मेद छोड़कर श्रम करें १
...शान्त आन्दोलन की पन्चीकरण ८ फल-श्रुति २६८
...वस्तु भार बाधक। ११५
...समाज धनि १
...साहित्य के भार है बाधक नहीं ६१
...है। २६४
देवासुर-संग्राम हर हृदय में ११५
देह-प्रधान तालीम के नतीजे २८६
दोतरफा आक्षेप ५२
दो बिंदुओं से रेखा १ १
दोहरा काम : हृदय-परिवर्तन और परिस्थिति परिवर्तन ११२
धर्म कार्य का अवसर ४५
धर्म का सामाजीकरण हो ६१
धर्म का सार, अभिमानरहित दया १६४
धर्म की तकसीम ६२
धर्म की बुनियाद आत्मौपम्य १२९
धर्म के दो अंग १ १
धर्म चक्र प्रवर्तन ११२
नगरों का भविष्य १
न मत्सर और न धाय २
नारायण-धर्म की स्थापना
नारायण-शक्ति का आविष्कार २४
निज का जीवन-शोधन ही मूल वस्तु ९४
नित्य दान की आवश्यकता २४५
निभाव राज्याश्रय पर निर्भर नहीं ६७
निर्वैर्य की ओर अभ्यास प्रतिकार की परंपरा २ ८
नीति का अधिष्ठान भक्ति ११६
नैतिक पराभव नहीं, सज्जन पद २५५
नैतिक दबाव और हृदय-परिवर्तन १११
नैतिक प्रभाव ६६
परमेश्वर की इच्छा से भूदान यज्ञ १

परमेश्वर की फजीहत ११४
परमेश्वर की सीख १६२
पहले दिल जुड़ने दो फिर जमीन ५
पहले मुखिया ११७
पाँच बोले परमेश्वर ६६
पुराना नेतृत्व
पूर्व मन में पशुता की ताकत १५५
पृथ्वी के रक्षक को छठा हिस्सा २५१
प्राचीन जमाने में कुल धार्मिक था १२१
प्रेम कारगर शस्त्र है २१
प्रेम पर भरोसा ६
प्रेम व्यापक होना चाहिए १३०
फ्लोरिडा में मूलभूत गलती ११३
बच्चों की समान परवरिश हो १६
बड़े लोग यह काम उठा लें ७४
बल से धर्म का प्रचार नहीं हो सकता १६१
बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक के मसले १८
बाढ़-पीड़ितों का यह उत्साह ! २६०
बिहार की निश्चित प्रकृति ६
बुद्ध और शंकर १७८
बुद्ध भगवान् का महान् धर्म १३१
बुद्ध भगवान् की शुभ छवि की खोज १२१
बुद्धि और हृदय का भेद ४
बुद्धि की परख हो १
बुराई के लिए घृणा चाहिए १४४
बुरों का नाश क्यों ? ६१
भक्ति मार्ग आसान क्यों ? १६
भगवान् भक्त के पूजक २१
भगवान् नहीं चाहता है ३६
भगवान् शंकर का अद्भुत गर्व १७१
भाग्यवान् भारत-भूमि १८८
भारत के असली मजदूर २१
भारतीय साम्यवादी ८७
भिक्षु की वृत्ति चाहिए ११८
भूखे भगवान् को खिलाना ही सच्ची भक्ति २६
भूदान के वाहन पर आरूढ़ हो धर्म-चक्र प्रवर्तन १३१
भूदान-यज्ञ पूरे अर्थ में क्रांतिकारी काम १६
भूदान यज्ञ भी सत्याग्रह है २६६
भूदान-यज्ञ में काम का नया प्रवेश १७६
भूदान-यज्ञ में भाग न लेना देशद्रोह १४१
भू-दान यज्ञ में व्यापक भावना १०
भूदान-यज्ञ : सत्ययुग बाहर लाने की कोशिश ४०
भूदान ग्राम धर्म कार्य १११
भूदान से किसानों का नैतिक संगठन ११८
भू-समस्या हल होकर रहेगी २१०
मैंगल के सामने मम[illegible]िक नहीं सकता ८४
मजदूर युनियन का आधार २२
मन से छोटे बड़े कोई हैं १४०

मन्त्रों के चमत्कार १५२
महा मानवों का समुद्र भारत २८१
महायुद्ध : सृष्टि-शक्ति का परिणाम २२
मानव पुनः दासता की राह पर २७१
मानव शक्ति का आविर्भाव ही अवतार १७
मानव हृदय शुद्ध है २७
मानस शास्त्र और विज्ञान पर आधृत समाज रचना २१७
मार्क्सिज्म मानना नास्तिकता २७६
मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा करें ५०
मनसम्बन्धी विवेक ११५
मन में भी नहीं आसक्ति बसती है १५०
यह अत्यन्त अधर्म विचार ११
यह काम मेरे लिए है ! १ ७
यह करुणा नहीं कर्मविपाक है ८९
यह प्रेम का एक चिह्न ! ६४
यह माँग का समय नहीं है ११
युद्ध की गंगोत्री हमारे ही घर में २८०
यन्त्र विचारों का ही ८
रामराज्य हृदय में पैदा होगा ६२
राष्ट्रीयकरण का प्रश्न ८६
लोकशक्ति उत्थान में स्त्रियों का सहयोग २६६
लोकवादी साम्यवाद १८२
साहित्य व भारतीय परम्परा के उद्गार १८५
वर्ग संघर्षवादी साम्यवाद १८२
वाणिज्य-धर्म और संग्रह २ ४
शासन के तीन अंग २१४
विकेन्द्रीकरण १८५
विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता १ १
विचार का प्रचार आसमान से होता है ८२
विचार का कायरूप : अणु बम या दान पत्र ७८
विचार की सत्ता ७६
विचार की स्वतन्त्रता २२२
विचार धारा सतत बहती रहे ८४
विचार भिन्न हों आचार एक १ ४
विचार भिन्न हों पर कार्यक्रम एक १७
विचार मथन अवश्य हो १ ५
विचार मंथन हो पर आचार संघर्ष नहीं २१६
विचार शासन १२
विज्ञान से पूँजीवाद का अन्त
'विज्ञान' अपूर्ण और 'सर्वोदय' पूर्ण मत १५८
विज्ञान गणित और आत्मज्ञान निश्चयमूलक १२
विज्ञान युग में सामूहिक प्रश्न २१९
विज्ञान से मानव रक्षा की तालीम मानेगा २०२
विज्ञान व विश्वव्यापी विचार प्रचार १८८

विज्ञान ने संस्कृति और विकृति का निर्माण १६
शिक्षा की प्राचीन परम्परा १५६
विरोध बुद्धि १६७
विरक्त वृत्ति समयाधीन धर्म २ ७
वैर के कारण मिथ्या कार्य २८१
व्यापार भी वैरकी का धर्म ही १४
शंकर और विष्णु बैठ संग ११६
शंकराचार्य का संदेश १८६
शक्ति का स्रोत किसी में नहीं हमारे हृदय में २
शक्ति लक्ष्मी और सरस्वती सेवा में करें २५
शब्द से वृत्ति मन्थन् ७१
शहरवाले विदेशी माल रोकें २२६
शांति और प्रेम का तरीका अनिवार्य २८१
शान्तिमय आन्तिमय । सत्याग्रह १ २
शाब्दिक नहीं सक्रिय विरोध करें २१२
शासनमुक्त-समाज की ओर २४२
शुद्धि नहीं शक्ति भी ६१
श्रद्धा निष्ठा और तपस्या का समन्वय १४१
श्रम प्रतिष्ठा २
पदार्थ दान और लक्ष्य मिलाने में विरोध नहीं २४१
संपत्तिदान 'भिक्षा' नहीं १६६
संपत्ति दान यज्ञ १८
संपत्ति समाज की हो यह धर्म विचार १४
सत्ता की मर्यादा ८८
सत्ता के नाते मन की माँग १७५
सत्य भक्ति और धर्म भक्ति १७४
सत्याग्रह के आधार पर समाज रचना १७५
सत्य रहने पर ही झगड़ा न होने का मूल्य २२०
सत्य और वैराग्य ११८
सत्य सर्वश्रेष्ठ धर्म १६४
सत्याग्रह का निर्णय करना है २६७
सत्याग्रह की अमोघ शक्ति ६७
सत्याग्रह कमजोरी नहीं प्रेम का प्रदर्श ११२
सत्याग्रह से विज्ञान युग के व्यापक मसलों का हल २६६
सत्याग्रही सेना का निर्माण ६०
सब धर्म शास्त्राधार मानें २७६
सबसे गरीब की मदद ६५
समन्वय का मार्ग ११८
समय रहते दान दीजिए ७६
समाज परस्पर बनाना है, नीरस नहीं १
समाज निष्ठा जगाने की माँग है २ १
समाजवाद में भारत यूरोप
सम[illegible] बुद्धि की

सर्वप्रथम भारत में ही संतों की खोज २१५
सर्वोदय के दो सिद्धान्त ११
सर्वोदय-रचना के दो सिद्धान्त १२
सहज सम्पन्न ८५
सामाजिक क्रांति होकर रहेगी ८७
सामूहिक अहिंसा का निर्माण १८९
सामूहिक अध्ययन आवश्यक २१५
सामूहिक रचना १६७
साम्ययोग की अर्थनीति १८३
साम्ययोग की राजनीति और समाजनीति १८५
साम्ययोग की व्यापक दृष्टि १८६
साम्ययोगी समाज २१८
स्वावलंबन—सर्वोदय का वोट १९
सूत का नियम २ ५
सर्वोदय की भागीदारी करनेवाले पक्षी ११७
सौ प्रतिशत दान पत्र चाहिए २६२
सौम्य और उग्र सत्याग्रह २१४
स्त्रियों के उद्योग सुरक्षित रहें २१५
स्त्रियों को अध्यात्मज्ञान पढ़ाया दिया जाय २१४
स्थिति स्थापकता और हिंसा १८२
स्वतन्त्र ज्ञान-प्राप्ति की क्षमता २१५
स्वतन्त्र ग्राम शक्ति का निर्माण १
स्वराज्य का मंत्र १५१
स्वराज्य के बाद धार्मिक क्षेत्र में शक्ति का अवतार १७१
स्वराज्य के बाद सर्वोदय का मंत्र १५१
हम अनन्त शक्तिधारी हैं ८०
हम आत्मा हैं १६५
हम जमीन के मालिक नहीं हो सकते ४८
हमने कानून को योग्य नहीं है २१६
हम भगवान् के औजार बनें १११
हम मनुष्य मात्र हैं २१
हम शून्य बनें २१९
हमारा असली काम ८
हमारी कार्य-पद्धति १
हमारी प्राचीन एकता १८८
हमारी प्राचीन ग्राम रचना ५१
हरएक को एक वोट का हक ६०
हरएक से दान चाहिए ७४
हर युग में भिन्न-भिन्न गुणों की प्रधानता १११
हिंदू समाज में स्त्रियों के भाग की समस्याएँ २६१
हिंसा क्रान्ति न हो ११८
हिंसा के बारे में एक गलत बयान ८५
हिंसा पर अहिंसा के असरकारक प्रयोग २२१
हिंसा-विरोधी शक्तियों का मुकाबला सत्याग्रह से २११
हिंसा के दोनों का अन्त ८१
हिन्दू धर्म का सार वेदान्त और भूदान ८८
हिन्दू धर्म की उदारता १६०
हमेशा परमेश्वर पर श्रद्धा १४१

सन् १९५७ के लिए सर्वोदय-स्वाध्याय-योजना

सन् '५७ के लिए सर्वोदय स्वाध्याय योजना नये रूप में शुरू की जा रही है।

सन् '५५ और '५६ की सर्वोदय-स्वाध्याय योजनाओं में रही हुई कमियों से बचने के लिए यह योजना बनायी जा रही है, जिसकी रूपरेखा इस प्रकार है :

१ यह योजना १ जनवरी '५७ से आरम्भ हो रही है। योजना-सदस्यता-शुल्क १) है। एक सदस्य एक से अधिक संख्या में सदस्यता शुल्क जमा करा सकता है। सदस्यता शुल्क या रकम स्थानीय प्रमाणित खादी और साहित्य भण्डारों में ही जमा करना चाहिए। वहीं से साहित्य भी लेना होगा। यथासम्भव, काशी को शुल्क न भेजा जाय।

२ सदस्यों को तीन-चौगुने मूल्य में साहित्य मिलेगा। १) में कुल मिलाकर ३॥-) का साहित्य प्राप्त होगा जो लगभग तीन हजार पृष्ठों का होगा। सदस्यों को किताब देने पर भण्डार अपने पासवाली रसीद पर सदस्यों के हस्ताक्षर लेता रहेगा ताकि सदस्यों को पुस्तकें ठीक से मिलती रहें।

३ इस योजना में क्रम नं० १ और नं० २ से भिन्न, सर्व-सेवा-संघ से प्रकाशित नयी पुस्तकें रहेंगी। पुस्तकें जैसे-जैसे प्रकाशित होती रहेंगी सम्बन्धित भण्डारों से उपलब्ध हो सकेंगी। १॥) मूल्य तक की हर पुस्तक योजना में दी जायगी। १॥) से ऊपर के मूल्य की पुस्तक योजना के अन्तर्गत नहीं रहेंगी। टेक्निकल, ग्रामीण तथा हिन्दी के अलावा अन्य भाषाओं की पुस्तकें भी शामिल नहीं रहेंगी।

४ प्रमाणित खादी-साहित्य भण्डारों के पास सर्व-सेवा-संघ प्रकाशन की ओर से एक तिपन्नी रसीद-बुक रहेगी और उनके पास सदस्य बनाने का अधिकृत प्रमाण पत्र रहेगा। शुल्क जमा करने पर रसीद की एक प्रति सदस्य को दी जायगी और एक प्रति प्रकाशन-दफ्तर, काशी में पहुँचती रहेगी। यह रसीद ही सदस्यता-फार्म समझा जायगा। अलग से कोई फार्म नहीं रहेगा।

५. २५ या अधिक सदस्य एक साथ बनना चाहेंगे, तो उन्हें काशी से सदस्य बनाया जा सकेगा। उनका शुल्क एक साथ काशी आना चाहिए। उन्हें एक साथ ही साहित्य किसी भी रेलवे स्टेशन पहुँचा दिया जा सकेगा। फुटकर सदस्य काशी से नहीं बनाये जायेंगे।

—संचालक